# A STUDY OF THE SYNCRETIC IMAGES OF THE BRAHMANICAL PANTHEON (PANCHA-DEVAS) OF NORTH INDIA (C. 600 A.D. TO 1200 A.D.)

*Thesis submitted to the University of Allahabad*
**for the degree of Doctor of Philosophy**
**(Faculty of Arts)**

*By*
**BHARTI KUMARI**

*Supervisor*
**SRI V. D. MISHRA**
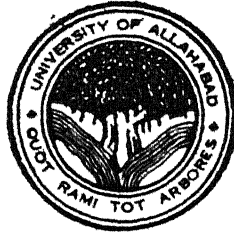
Department of Ancient History, Culture and Archaeology
**University of Allahabad**
**Allahabad (U.P.)**
**1987**

# विषय सूची

## आमुख

भारतीय संस्कृति सदा से ही समन्वयप्रधान रही है । विविध सामग्री को एक में ढाल कर विशाल मापदण्ड पर ऐक्य-सम्पादन का सफल प्रयोग, जैसा अधपर्यन्त भारतवर्ष में हुआ है, उतना सम्भवतः विश्व के किसी भी अन्य देश में नहीं हो सका है । "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद 1, 164, 46) – एक ही मूल तत्त्व की अनेक रूप-रूपों में प्रशंसा, हमारे राष्ट्र के मूल दृष्टिकोण का बीजमंत्र है । विविधता में एकता अथवा भेद में अभेद की स्थापना की ओर भारतीय मनीषा का ध्यान संस्कृति के सूत्रपातकाल में ही आकृष्ट हुआ था । अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में अनेक रूपों में पनपने वाली एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया कि यहाँ अनेक प्रकार के जन रहते हैं जो अनेक भाषाओं को बोलते हैं और नाना धर्मों के मानने वाले हैं । परन्तु हमारी मातृभूमि निश्चय ही एक धेनु है जो अपने अमृततुल्य दुग्ध की सहस्रों धाराओं का पान सबको समान रूप से करा रही है ।[1] स्पष्ट है कि भाषा, धर्म और जन – इन तत्त्वों के भेद को स्वीकार करते हुए भी आन्तरिक एकता का बीजमंत्र अपने देश के समाजनिर्माताओं ने इतिहास के उषःकाल में ही विकसित किया था, जो भारतीय जनों के समन्वयप्रधान दृष्टिकोण एवं सर्वोपरि ऐक्य भाव का परिचायक है ।

---

1. "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
   सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरंती ।।"

   अथर्ववेद, 12, 1, 45.

भारत के चार कोनों में विकीर्ण सात मोक्षदायिका – पुरियों (अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काची, अवन्तिका, पुरी एवं द्वारावती) की अवधारणा, सात नदियों (गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु एवं कावेरी) की पवित्रता की मान्यता तथा शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों (बदरीकेदार में ज्योतिर्मठ, पुरी में गोवर्धनमठ, दक्षिण में श्रृंगेरीमठ और द्वारका में शारदामठ) की स्थापना हमारी मौलिक सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं । समवाय की बलवती विचारपद्धति विरोधों पर सदा विजयशालिनी होती, देशव्यापी संस्कृति के अनेक रूपों में अभेद एवं साम्य स्थापित करने में सफल सिद्ध हुई थी । राजनीतिक 'गणों' की स्थापना एवं सदियों तक उनका इतिहास तथा आर्थिक 'श्रेणियों' के उद्भव एवं सम्पन्नता आदि के मूल में एकता के लक्ष्य निहित हैं । विभिन्नता में समग्रता एवं समन्वयप्रधान-भावना का प्रतिबिम्ब भारतीय धर्म के क्षेत्र में भी देखा जा सकता है ।

वैदिक-पौराणिक पंचदेवों (विष्णु, शिव सूर्य, देवी एवं गणेश) की उपासना का स्थान, भारतीय धर्म एवं कला के इतिहास में, सदैव महत्वपूर्ण रहा है । इनमें से प्रथम चार देवों की अवधारणा का उद्भव वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध होता है । यद्यपि वैदिक काल में गणेश की अवधारणा की प्राचीनता स्पष्टतः नहीं निर्धारित की जा सकती, तथापि पौराणिक धर्म में (विशेषतः गुप्तोत्तरकाल से) इस देवता की उपासना ने एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था । पंचदेवों के विषय में साहित्यिक साक्ष्य प्रचुर एवं विविध रूपों में उपलब्ध होते हैं । दोनों ही प्राचीन महाकाव्यों (रामायण एवं महाभारत), पुराणों तथा गुप्त एवं गुप्तोत्तर-काल के साहित्य में इन पंचदेवों तथा उनके स्वरूपों की उपासना के सम्बन्ध में प्रायशः सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । कई प्राकृत एवं संस्कृत-अभिलेखों में पंचदेवों के ध्यान के सम्बंध में महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध होते हैं । पंचदेवों के पृथक् उल्लेख के अतिरिक्त ऐसे साहित्यिक, आभिलेखिक, मौद्रिक तथा कलात्मक प्रमाण भी प्रायशः उपलब्ध होते हैं,

जो इनमें से दो अथवा तीन या कभी-कभी चार के संयुक्त रूपों की उपासना की लोकप्रियता को अभिव्यक्त करते हैं ।

शिल्पशास्त्रों में इस प्रकार की प्रतिमाओं के लिए 'युग्म' तथा 'संघाट' शब्दों के उल्लेख मिलते हैं, जो क्रमानुसार किन्हीं दो या दो से अधिक देवों की सम्पृक्तता को व्यक्त करते हैं । इस कोटि की संयुक्त प्रतिमाओं में हरिहर, हरिहर-पितामह, हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ तथा अर्द्धनारीश्वर आदि उल्लेखनीय हैं । 600 से लेकर 1200 ई0 की मध्यावधि में उत्तरी भारत के विशिष्ट ऐतिहासिक केन्द्रों में निर्मित शिल्पविधान समन्वयवादी प्रतिमाओं के उद्गम एवं विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं ।

सामंजस्यवादी धर्मों के उद्गम एवं विकास तथा उनके वाचक संयुक्त प्रतिमाएँ पूर्व-मध्यकालीन सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि की देन थी । भारतीय सामाजिक परिवेश, देश के धार्मिक जीवन में प्रविष्ट धाराओं एवं प्रतिधाराओं से प्रभावित हो रहा था । वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सौर धर्मों के उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी प्रभाव एवं उनके पारस्परिक सम्पर्कों के परिणामस्वरूप, विभिन्न धर्मावलम्बियों में पारस्परिक सद्भावना एवं सहिष्णुता की भावनाएँ जागृत होने लगी थीं । इस प्रक्रिया में विभिन्न सामाजिक वर्गों में तांत्रिक साधनाओं के प्रति उद्भूत आस्था का उल्लेखनीय योगदान था । तंत्र का प्रभाव न केवल हिन्दू धर्म के विभिन्न पक्षों पर ही पड़ा, अपितु जैन एवं बौद्ध धर्म उससे अप्रभावित न रह सके । फलतः समान आस्थाएँ, विश्वास, अनुष्ठान, उपचार एवं विधियाँ विभिन्न धर्मावलम्बियों में क्रमशः जड़ पकड़ने लगीं । तंत्रोपासना में देवी-उपासना के प्राधान्य के प्रभाववश विष्णु, शिव, शक्ति, सौर तथा अन्य देवी-देवताओं को अनुष्ठानात्मक विधानों में समाविष्ट किया जाने लगा, जिससे हिन्दू धर्म के साथ तंत्र का सुगमता से तादात्म्य

स्थापित होने लगा । तंत्र-पूजा का अधिकांश भाग व्यवहार-परक होने के कारण समाज के अंतरंग जीवन में दृढ़बद्ध हो गया ।

तंत्रोपासना के प्रचार के कारण लोकविश्वासों को व्यक्त करने वाले नई पद्धति के मंदिर बनने लगे, जिनके उदाहरण खजुराहो, भुवनेश्वर एवं कोणार्क आदि कलाकेन्द्रों के मंदिरों में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं । तंत्रवाद के बढ़ते हुए सामाजिक एवं धार्मिक प्रभावों का प्रतिबिम्ब पूर्व-मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में परिलक्षित होता है । विष्णुधर्मोत्तर के संरचना-काल से लेकर भुवनदेव के अपराजितपृच्छा-काल तक यह प्रवृत्ति अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी थी । इस समय के अन्य शिल्प-शास्त्रों में भी संयुक्त प्रतिमाओं के विविध प्रकारों के विस्तृत वर्णन उपलब्ध होते हैं । उत्तरमध्यकाल के शिल्प-विषयक ग्रंथों में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है, जिसके साक्ष्य रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण, ईशानगुरुदेवपद्धति, मयमतम् , शिल्परत्न, मानसोल्लास, चतुर्वर्ग-चिंतामणि, उत्तरकामिकागम एवं अंशुमद्भेदागम आदि माने जा सकते हैं ।

बंगाल एवं असम में पंचदेवों की संयुक्त उपासना के प्रमाण त्रिपुरा एवं पार्श्व-वर्ती प्रदेशों के शासकों की मुद्राओं के उच्चित्रणों में प्राप्त होते हैं । उत्तरी भारतवर्ष के जिन केन्द्रों में युग्म एवं संघाट प्रतिमाओं की उपासना का विशेष प्रभाव पड़ा था, उनमें अणहिलपाटन, मढेरा, बदोली, झालरापाटन, कोटा, मंदसौर, धार, उदयपुर, खजुराहो, त्रिपुरी, रतनपुर, मल्हार, महोबा, सारनाथ, कुर्किहार, गया, जमसोत, गुर्गी एवं पहाड़पुर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । ये ऐतिहा-सिक स्थल न केवल हिन्दू धर्म के पाँच प्रमुख देवों की उपासना के केन्द्र थे, अपितु उनमें से कतिपय जैन एवं बौद्ध धर्मों के भी केन्द्र थे । उल्लेखनीय है कि इन स्थानों से प्राप्त पुरातत्वीय साक्ष्यों के द्वारा जैन एवं बौद्ध देव-समूह पर हिन्दू देवोपासना

के प्रभाव इंगित होते हैं ।

इस विषय का विस्तृत विवेचनपरक कोई ग्रंथ अभी तक प्रस्तुत न हो सका था । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की संरचना का उद्देश्य इस अभाव की सम्पूर्ति है । इसके निर्माण में अद्यतन प्रकाश में आने वाले साहित्यिक एवं पुरातत्वीय साक्ष्यों का सम्यक् विवेचन हुआ है । निष्कर्षों की सम्पुष्टि के लिए यथोचित फलक एवं रेखा-चित्र तथा मानचित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं । साथ ही भारतीय धर्म, कला एवं प्रतिमाविज्ञान के विकास में सामंजस्यपरक संयुक्त प्रतिमाओं की विशिष्टता के ऐतिहासिक पक्ष का भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में विश्लेषण किया गया है । इस शोध प्रबन्ध को अधिकाधिक प्रामाणिक एवं सर्वांगीण बनाने के हेतु साहित्यिक एवं पुरातत्वीय साक्ष्यों पर गहराई के साथ चिन्तन-मनन और विभिन्न संग्रहालयों की कलानिधियों का सम्यक् परिशीलन किया गया है ।

वक्तव्य की समाप्ति के पूर्व सर्वप्रथम प्रोफेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डेय (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति तथा कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा कर्तव्य हो जाता है, जिसके सौजन्य से इस विश्वविद्यालय में प्रस्तुत विषय पर शोधकार्य करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हो सका है । प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी ( भूतपूर्व टैगोर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व-विभाग, सागर विश्वविद्यालय ) के प्रति भी मैं उतनी ही ऋणी हूँ, जिन्होंने इस विषय पर न केवल कार्य करने का ही मुझे सुझाव प्रदान किया था, अपितु समय-समय पर मुझे बहुमूल्य मार्गदर्शन भी किया है । विभागीय प्राध्यापकों में प्रोफेसर जसवन्त सिंह नेगी ( भूतपूर्व विभागाध्यक्ष ) , प्रोफेसर ब्रजनाथ सिंह यादव ( भूतपूर्व विभागाध्यक्ष ) , प्रोफेसर उदय नारायण राय (वर्तमान विभागाध्यक्ष) , प्रोफेसर सिद्धेश्वरी नारायण राय, प्रोफेसर शिवेश चन्द्र

भट्टाचार्य, डा0 संध्या मुखर्जी, डा0 राधाकान्त वर्मा, श्री राम कृष्ण द्विवेदी, डा0 ओम प्रकाश, श्री धनेश्वर मण्डल, डा0 गीता सिंह, डा0 जय नारायण पाण्डेय एवं डा0 हरि नारायण दूबे आदि मेरे प्राध्यापकों एवं शुभेच्छुओं ने भी अपने बहुमूल्य निर्देशों एवं सुझावों द्वारा मुझे उपकृत किया है ।

उदारता, सरलता एवं विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति अपने पर्यवेक्षक श्री विद्याधर मिश्र ( रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना धर्म समझती हूँ , जिन्होंने अपनी सतत् व्यस्तताओं में भी मुझे अमूल्य मार्गदर्शन एवं सक्रिय सहायता प्रदान की है । इस शोध-प्रबन्ध के सकुशल सम्पादन में अपेक्षित प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हर अवस्था में ही उनसे प्राप्त हुआ है ।

'अम्मा' ( श्रीमती निर्मला राय ) ने गृह-दायित्वों से मुक्त कर, शोध-प्रबन्ध की समाप्ति की दिशा में अनुकूल परिस्थितियों का सृजन किया है । उनकी नैसर्गिक अनुकम्पा एवं सहज स्नेह ग्रन्थ-प्रणयन की विविध अवस्थाओं/में प्रेरणामूलक सिद्ध हुए हैं । अपने पतिदेव ( श्री अतुल नारायण राय ) के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ , जिन्होंने इस रचना के सकुशल सम्पादन में प्रोत्साहन प्रदान किया है । अन्य पारिवारिक सदस्यों में 'चाची' ( श्रीमती उषा राय ) , डा0 विपुल नारायण राय, डा0 मधू राय, श्री संजय कुमार राय, डा0 शिप्रा राय, डा0 अनामिका राय, अनुपमा राय एवं अपर्णा राय के प्रति भी मैं कृतज्ञता-ज्ञापन अपना कर्त्तव्य समझती हूँ ।

अंत में मैं उन सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों एवं लेखकों की भी आभारी हूँ जिनकी रचनाएँ इस प्रबन्ध के प्रणयन में उपयोगी सिद्ध हुई हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

अपने पवित्र उद्देश्य की संपूर्ति में सफल हो - यही मेरी कामना है और यही है ईश्वर से अभ्यर्थना भी ।

सबसे अंत में आचार्य क्षेमीश्वर के शब्दों में ज्ञापना भी है :-

"दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वमतो दोषान् विवृणुध्वं गुणान् बुधाः ।।"

चैत्र शुक्ल पक्ष
रामनवमी, विक्रम संवत् 2044
(7.4.1987)

(भारती कुमारी)
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व
विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

## अध्याय 1

## आरम्भिकी

## अध्याय 1

## आरम्भिकी

आराध्य देवों के पूजन की परम्परा भारतीय संस्कृति की एक सुविदित विशेषता है। जहाँ तक प्रतिमोपासना की प्राचीनता का प्रश्न है, वैदिक काल में मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं था तथा इस समय उपासना मूलतः भावनात्मक एवं काल्पनिक थी। प्रकृति के विभिन्न रूपों से अविभूत मानव भय एवं तन्मयता के कारण विविध स्वरूपों की उपासना करने लगा। इन्हें प्रसन्न करने के निमित्त यज्ञ का आश्रय लेकर उन विशिष्ट देवों के नाम से आहुति डालने की परम्परा इस समय स्थापित हुई। परिणामतः यज्ञ की प्रधानता वैदिक काल में उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। किन्तु महाकाव्य-काल से देवी-देवताओं के मूर्त्त रूपों के पूजन-साक्ष्य मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। महाभारत में तीर्थों के सम्बन्ध में अनेक प्रतिमाओं के विवरण प्राप्त होते हैं। सभी देवों से सम्बद्ध पवित्र तीर्थों का दर्शन कर वहाँ स्थित प्रतिमा की पूजा करने का निर्देश इस महाकाव्य में दिया गया है। प्रतिमोपासना के महत्व को बढ़ाने के निमित्त आराधक को अनेक यज्ञों के फल की प्राप्ति किए जाने का उल्लेख भी महाभारत में प्राप्त होता है। प्रतिमा के दर्शन, स्पर्श एवं उपासना से अश्वमेध आदि महत्वपूर्ण यज्ञों के फल की उपलब्धि इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि वैदिक धर्म के साथ-साथ प्रतिमा की उपासना भी महाभारत की रचना-काल में अति महत्वपूर्ण होती जा रही थी।

साम्प्रदायिकता एवं भक्ति की प्रबलता की वृद्धि और विस्तार के साथ-साथ आराध्य देवों के रूप में नाना प्रतिमाओं की उपासना होने लगी। स्मृतियों एवं पुराणों ने प्रतिमाओं के महत्व के विस्तार में और भी अधिक योगदान किया। मनु ने प्रतिमाओं को नष्ट करने वाले व्यक्ति के लिए कठिन दण्ड की संस्तुति की थी।[1] उनके अनुसार यहाँ तक कि देव-प्रतिमा की छाया को लाँघना भी पाप

---

1. मनुस्मृति, 9, 285.

था ।[1]

पुराण, आगम एवं तंत्र साहित्य ने वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर एवं गाणपत्य सम्प्रदायों के प्रचलन में विशिष्ट योगदान किया । फलतः, पंचदेवों ( विष्णु, शिव, सूर्य, देवी एवं गणेश ) की प्रतिमाओं की उपासना उत्तरोत्तर लोकप्रिय होने लगी । पुराणों में उक्त देवों की प्रतिमा के निर्माण-सम्बन्धी सुनियोजित लक्षण उपलब्ध होते हैं । इनके अतिरिक्त वास्तु एवं शिल्प-विधा से सम्बन्धित स्वतंत्र ग्रंथों की रचना प्रारम्भ हुई, जिनमें उपर्युक्त पाँच प्रमुख हिन्दू देवों से सम्बन्धित प्रतिमा-विज्ञान-विषयक सामग्री का वैज्ञानिक अध्ययन प्राप्त होता है । यह तथ्य विशेष रूप से अधीतकाल (600 से 1200 ई० ) के इतिहास में देखने को मिलता है । इन देवों की स्वतंत्र प्रतिमाओं के निर्माण के अतिरिक्त संयुक्त प्रतिमाओं के भी प्रतिमाविधान-लक्षण उपलब्ध होने लगते हैं जो कि विशेष रूप से विचारणीय हो जाता है । इनके युग्म रूप ( किन्हीं दो के संयुक्त रूप ) अथवा संघाट रूप ( दो से अधिक देवों के संयुक्त रूप ) के प्रमाण विवेच्य काल के मंदिरों, देव-प्रतिमाओं, मुद्राओं एवं अभिलेखों में मिलने लगते हैं । कला, साहित्य एवं अभिलेखों में प्राप्त यह प्रवृत्ति भारतवासियों की पारस्परिक साम्प्रदायिक सद्भावना एवं धर्म-सामंजस्य की अभिरुचि से सम्पृक्त है ।

धर्म-समन्वय की उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ सामयिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों की योगदान थीं । 600 से 1200 ई० तक का काल प्राचीन भारतीय इतिहास का वस्तुतः एक संक्रमण-काल कहा जा सकता

---

1. "देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ।।"
मनुस्मृति, 4, 130.

है । वास्तव में देश राजनीतिक रूप से खण्डित हो चुका था । इस समय बड़ी से बड़ी सत्ताएँ कुछ सीमित क्षेत्रों में ही बँधकर रहने लगी थीं । उनकी राजनीतिक एवं सैनिक महत्वाकांक्षाएँ केवल कुछ युद्धों और एक दूसरे को हराने मात्र से ही संतोष कर लेती थीं, जिसका कोई स्थायी प्रभाव पड़ने से रह जाता था । इस खण्ड दृष्टि का परिणाम यह हुआ कि समस्त भारत में कई राज्य बने और बिगड़े तथा स्थायित्व की संभावनाएँ समाप्त होने लगीं । भारत पर सतत् विदेशी आक्रमणों ( अरब, महमूद गज़नी एवं मुहम्मद गोरी के सैन्य अभियान ) के कारण निरंतर बाधाएँ आती गईं । फलतः इतिहास की गति वक्र होती गई और कई अवसरों पर तो कोई स्पष्टता ही नहीं दिखाई दे रही थी ।

इस अनिश्चय की स्थिति में भारतीय नागरिक व्यापकता, ग्रहणशीलता और सामंजस्य की ओर अग्रसर होने लगे । इस देश की जनता ने साम्प्रदायिक भेद-भाव का परित्याग कर धर्म-समन्वय, सामंजस्य तथा पारस्परिक सद्भावना को राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अनिवार्य माना । इस बात की अनुभूति होने लगी कि ऐसे मन्दिर एवं देव-प्रतिमाएँ बनाई जाएँ जो सभी धर्मावलंबियों को उपासना करने का अवसर प्रदान कर सकें । परिणामस्वरूप हरिहर, हरिहर-पितामह, हरि-हर-हिरण्यगर्भ तथा अन्य विविध कोटि के युग्म एवं संघाट मूर्तियों की स्थापना होने लगी । मढ़ेरा, ओसियाँ, झालरापाटन, खजुराहो एवं भुवनेश्वर आदि की कला इस तथ्य का उदाहरण है । राष्ट्र-संकट का सामूहिक प्रतिरोध करने के अभि-प्राय से धार्मिक कटुता की समाप्ति एवं साम्प्रदायिक सद्भावना का सृजन आदि आवश्यक समझे गए । विशेष रूप से उत्तरी भारत, जहाँ सतत् ध्वंसकारी विदेशी आक्रमण के कारण जनता कराह रही थी, के ऐतिहासिक केन्द्रों की कला में इस विशे-षता का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है ।

विश्व इतिहास में इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं, जिनके अनुसार विदेशी आक्रमणों से उत्पन्न खतरों से बचने के लिए स्थानीय जनों ने पारस्परिक

कटुता और साम्प्रदायिक भेद-भाव का परित्याग कर सद्भावना एवं धर्म-समन्वय राष्ट्रहित में करने का निश्चय लिया । उदाहरणार्थ, क्रीट के निवासी बहुधा पारस्परिक भेद एवं कटुता की भावना तो रखते थे, परन्तु जब कभी भी बाह्य आक्रमण होता था, उस समय वे पारस्परिक समझौता कर एकजुट हो जाते थे । इसको वे 'सिंक्रिटिज़्म' (OVYKPNTLOUO'S) कहते थे ।[1] 'सिंक्रिटिज़्म' वस्तुतः एक जिज्ञासापूर्ण शब्द है जिसका प्रयोग प्लूटार्क ने किया था । कतिपय विचारकों की अवधारणा है कि इस शब्द का निर्माण उसी ने किया था । इस पर मतभेद भले ही हो, परन्तु इतना तो सत्य है कि इस शब्द को प्रचलित करने का श्रेय उसी को था । उसने भ्रातृस्नेह-विषयक एक लेख में कहा है कि यहाँ तक कि भाई एवं मित्र जो परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं, वे सामूहिक खतरे की स्थिति में पारस्परिक विवाद को समाप्त कर संगठित हो जाते हैं, जैसा कि क्रीट के इतिहास में दिखाई देता है । क्रीटवासियों ने सर्वदा ही इस प्रकार की परिस्थितियों में किसी स्थानीय वर्ग-विशेष के विरुद्ध बाह्य शत्रु से मैत्री स्थापित करना अविवेकपूर्ण माना । इसी भावना से प्रेरित होकर वहाँ के लोग आक्रान्ता के विरुद्ध एक सामूहिक मोर्चा बना लेते थे, जो राष्ट्रीय हित में अत्यावश्यक है ।[2]

'सिंक्रिटिज़्म' शब्द राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है । इस शब्द से मानव की आत्मसुरक्षा की निहित प्रवृत्ति अभिव्यंजित होती है । यह मानव दृष्टिकोण, बाह्य शत्रु द्वारा जनित राष्ट्रीय अहित की परिस्थितियों में विवेकपूर्ण चेतावनी पाने के कारण पारस्परिक भेद को समाप्त कर देना आवश्यक समझता है । जेम्स ईस्ट के शब्दों में 'सिंक्रिटिज़्म', उनमें ऊँच-नीच की भावना को समाप्त कर देता है और राष्ट्रीय जनों में यह अवधारणा उत्पन्न करता है कि

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स, जेम्स ईस्ट, जिल्द 12, पृष्ठ 155.

2. पूर्वोक्त, जिल्द 12, पृष्ठ 155.

वे अपने परिसर में परस्पर सुरक्षित एवं जीवित रहना चाहेंगे न कि गृहयुद्ध में संलग्न हो अपने ही विरुद्ध आक्रान्ता को उनके अस्तित्व को समाप्त करने का अवसर प्रदान करेंगे ।[1] दर्शन के इतिहास में 'सिंक्रिटिक' शब्द सद्भावना एवं विचार-सामंजस्य के ही अर्थ में लागू होता है । यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो भारत में भी आलोच्य काल के भीतर समन्वयात्मक प्रवृत्ति ('सिन्क्रिटिज़्म') अंशतः सतत् बाह्य आक्रान्ताओं से जनित राष्ट्र-भय की चेतावनी का योगदान थी । इस युग के भीतर विभिन्न ऐतिहासिक केन्द्रों में निर्मित संयुक्त प्रतिमाएं उपर्युक्त तथ्य के ज्वलंत प्रमाण हैं ।

धर्म-समन्वय की प्रवृत्ति के उद्भव का एक अन्य सशक्त कारण भारत में बसने वाली विदेशी जातियों की मानसिकता थी । वस्तुतः, सिकन्दर के विशाल साम्राज्य की स्थापना के समय से ही विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक सम्पर्क के फलस्वरूप हेलेनिस्टिक धर्म की उत्पत्ति हुई, जिसमें यूनानी धर्म भारतीय धार्मिक विचारों से प्रभावित रूप में सामने आता है । उदाहरणार्थ, जहाँ पहले यूनानियों ने अपने देवताओं की कल्पना मानव स्वरूप में की थी, जिसके अनुसार वे लौकिक दुर्बलताओं से परे नहीं थे और मानव सदृश ही गुणों के कारण उनसे दोष और अपराध हो सकता था । परन्तु भारतीय प्रभाव के कारण यह अवधारणा बदल गई । उन्होंने अपने देवताओं में आधिभौतिक शक्ति की कल्पना की, जिसके अनुसार वे विश्व के पालक, पोषक, नियामक, पवित्रता के साक्षात् प्रतीक एवं अमरत्व के दायक माने गये । भारतीय प्रभाव के कारण यूनानियों का भी विश्वास, ज्योतिष, मानव जीवन पर नक्षत्रों के प्रभाव, सम्राट् की दैवी उत्पत्ति में विश्वास एवं भाग्यवादिता तथा तर्क के स्थान पर रहस्य एवं मान्यता की प्रधानता में होने लगी ।

तदुपरान्त, जब यवन, शक, पह्लव, कुषाण और हूण आदि भारत में बस

---

1. इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स, जेम्स हेस्टिंग्स, जिल्द 12, पृष्ठ 156.

गये तो सांस्कृतिक दृष्टि से वे भारतीय हो गये । विशेष रूप से भारतीय धर्मों के प्रति उनकी आस्था बढ़ने लगी । बेसनगर (विदिशा) का गरूडस्तम्भलेख इस बात का प्रमाण है कि हेलियोडोरस[1] नामक यवन वैष्णव मतावलम्बी (परमभागवत) हो गया तथा उसने उक्त गरूडस्तम्भ (विष्णुध्वज) की स्थापना की थी । इन विदेशियों ने विभिन्न भारतीय देवी-देवताओं की पूजा में आस्था दिखलाई । भारतीय विदेशी शासकों (हिन्द, यवन, शक, कुषाण-नरेशों) की मुद्राएं एवं अभिलेख इस तथ्य के प्रमाण हैं । उनमें से कुछ ने अपने सिक्कों पर हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र भी उच्चित्रित करवाये । यहां तक कि समन्वित देव-आकृतियां भी कतिपय की मुद्राओं के ऊपर उच्चित्रित मिलती हैं ।

मावीज़ (शक-पह्लव)[2] की कुछ ताम्र-मुद्राओं के ऊपर शिव की आकृति अंकित मिलती है । इस वंश के ऐज़ीलाइजेज़ नामक नरेश की एक मुद्रा-विशेष पर, जिसकी ओर ह्वाइट हेड महोदय ने विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है, एक ऐसे

---

1. '(दे) वदेवस वा (सुदे) वस गरूडध्वजे अयं
   कारिते इ (अ) हेलिओदोरेण भागवतेन ।'

   सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, दि०च० सरकार, जिल्द 1, पृष्ठ 90.

2. डे०हि०आ०, जि०ना० बनर्जी,
   पृष्ठ 542.

देव का उच्चित्रण हुआ है जिसमें 'हेलेनिक' ( यवन ) तथा 'पानहेलेनिक' (यवनेतर) विशेषताओं का समन्वय देखने को मिलता है । यह उच्चित्रण धर्म-समन्वय का एक उल्लेखनीय दृष्टांत माना जा सकता है ।[1] हिन्द-पह्लव (पार्थियन) शासक गाांडोफर्नीज़ की कुछ मुद्राओं पर शिव-सदृश आकृति का उच्चित्रण हुआ है । शिव-भक्त होने के कारण कुषाण-नरेश विम कदफिसस की मुद्राओं पर शिव एवं उनके आयुध ( त्रिशूल-परशु ) के उच्चित्रण प्राप्त होते हैं । उसकी मुद्राओं पर प्राप्य विरुद उसे माहेश्वर (शिव-भक्त के रूप में ) अभिव्यंजित करता है ।

कुषाण-सम्राट् कनिष्क एवं हुविष्क की मुद्राओं पर जोरोस्टर, हिन्दू, बौद्ध एवं यवन देव-समूह से सम्बन्धित आकृतियों का उच्चित्रण मिलता है । इन सम्राटों की बौद्ध धर्म में भी आस्था थी, जो कि धर्म-सहिष्णुता का प्रतीक है । हुविष्क की एक मुद्रा में संयुक्त देव हरिहर का उच्चित्रण प्राप्य है । एक श्वेत हूण-नरेश की मुद्रा-विशेष पर डॉ0 बनर्जी ने विष्णु, शिव एवं मिहिर देवों के समन्वित रूप की पहचान की है । इनमें से प्रथम दो हिन्दू धर्म एवं तृतीय जरथुष्ट्र धर्म से सम्बिन्धित हैं । यह उच्चित्रण वैष्णव, शैव एवं सौर धर्मों की पारस्परिक सद्भावना एवं सामंजस्य का परिचायक है ।[2] विदेशी जन-जातियों की इस मानसिकता के कारण भारतीय समाज में एक ऐसे वर्ग विशेष का सम्मिश्रण हुआ जो कि धर्म-सहिष्णुता एवं धर्म-समन्वय की ओर उन्मुख था । इस ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप भी कालांतर में (आलोच्य काल में) संयुक्त प्रतिमाओं के निर्माण उत्तरी-भारत के विभिन्न

---

1. पंजाब म्यूजियम कैटलॉग, जिल्द 1, पृष्ठ 136, फलक 13, आकृति 336; जि0ना0 बनर्जी, डेहि0आ0, पृष्ठ 543.

2. डे0हि0आ0, जि0ना0 बनर्जी, पृष्ठ 544.

ऐतिहासिक केन्द्रों में प्रारम्भ हो गये ।

सामयिक पृष्ठभूमि में भारतीय राजवंशों ने भी धार्मिक सहिष्णुता, ग्रहण-शीलता एवं व्यापकता की नीति का अवलम्बन किया । धर्म के क्षेत्र में यह उदार-वादी दृष्टिकोण गुप्तकाल से ही विशेष रूप से परिलक्षित होने लगता है । उदाहरणार्थ, परमभागवत समुद्रगुप्त ने अपना सान्धिविग्रहिक हरिषेण नामक व्यक्ति को नियुक्त किया, जो शैव मतावलम्बी था । उसकी लेखनी से उद्भूत समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति शिव की आराधना से समाप्त होती है । इसी भाँति चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने, जो कि वैष्णव मतावलम्बी था, वीरसेन ( शाब) नामक शैव मतावलम्बी को अपना सान्धि-विग्रहिक सचिव नियुक्त किया था । इस वैष्णव सम्राट् के ऐतिहासिक शक-विजय के उपलक्ष्य में उसने उदयगिरि में एक शैव गुहा-मंदिर का निर्माण किया, जिसकी भीतरी दीवाल में एक स्थान पर उत्कीर्ण प्रशस्ति में उसे शिव का भक्त कहा गया है । करमदण्डा के लेख (436 ई0) के अनुसार कुमारगुप्त प्रथम 'महेन्द्रादित्य' ने पृथ्वीषेण नामक शैव को अपना महाबलाधिकृत नियुक्त किया था । इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि नियुक्तियों में कोई साम्प्रदा-यिक भेद-भाव नहीं किया गया तथा राज्य की ओर से धार्मिक विषयों में नागरिक को पूर्ण स्वतंत्रता थी ।

समन्वयवादिता की यह प्रवृत्ति वस्तुतः प्रबुद्ध चिंतकों एवं सामान्य जनचेतना का योगदान थी । सम्राटों एवं शासकों ने तो केवल ऐसे मंदिरों का निर्माण कराया, जिसमें उक्त कोटि की संयुक्त प्रतिमाएं उपासना की दृष्टि से उपलब्ध हो सकें । हाँ, यह अवश्य था कि कतिपय राजवंश (उदाहरणार्थ, चन्देल आदि) धर्मसहिष्णुता के सिद्धान्त में विश्वास करने लगे । यही कारण है कि खजुराहो जैसे ऐतिहासिक कला-केन्द्रों में विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्धित देवालय एकत्र उपलब्ध होते हैं । गुर्जर-प्रतीहार महेन्द्रपाल एवं महीपाल के आश्रित कवि राजशेखर ने जो कि उनका आचार्य

भी था, ब्राह्मण होते हुए भी चाह्वाण कुल की सामन्त-कन्या विदुषी अवन्तिसुन्दरी से विवाह किया, जो कि सामयिक सामाजिक गतिशीलता एवं हिन्दू धर्म की व्यापकता, उदारता एवं ग्रहणशीलता का साक्ष्य कहा जा सकता है । 'कर्पूरमंजरी' से ज्ञात होता है कि उक्त कवि को इस सामन्त-कन्या से विवाह एवं उसके पांडित्य का बड़ा गर्व था ('चाह्वाणकुलमौलिना') ।

यही कारण है कि गुप्त-सम्राटों के काल में नागरिकों ने विभिन्न देवी-देवताओं के मंदिरों एवं प्रतिमाओं की स्थापना की । उदाहरणार्थ, कुमारगुप्त-कालीन बिलसद के लेख ( 415 ई० ) के अनुसार ध्रुवशर्मा नामक नागरिक ने स्वामी कार्त्तिकेय के मंदिर की स्थापना की थी । यहाँ उल्लेखनीय है कि परमभागवत कुमारगुप्त 'महेन्द्रादित्य' ने कार्त्तिकेय प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन किया था । बयाना-निधि में इस शासक की 13 ऐसी मुद्राएँ प्राप्त हैं जिनमें राजा मयूर को खिलाता हुआ प्रदर्शित है और पृष्ठ-भाग पर कार्त्तिकेय-मयूर के पीठ पर आरूढ़ हैं । वस्तुतः कुमारगुप्त 'महेन्द्रादित्य' का नाम कार्त्तिकेय से सम्बन्धित है । गुप्त-सम्राटों के काल में शिव-मंदिरों की प्रचुर संख्या में स्थापना हुई । इनके चौखट के सिरदल के दोनों पार्श्वों में गंगा एवं यमुना नदियाँ अपने देवी-रूप में हाथों में व्यजन धारण किए महादेव-परिचारिका की भावना का प्रदर्शन करते उच्चित्रित हैं । शिव-मंदिर में गंगा एवं यमुना नदियों के देवी-रूप का उच्चित्रण कालिदास के कुमारसम्भव के प्रसिद्ध वर्णन का स्मरण दिलाता है जिसके अनुसार गंगा एवं यमुना नदियाँ अपने सरिता-रूप का परित्याग कर शिवजी को चमर डुलाने लगीं, जो हंसों के उड़ते जोड़े की तरह लग रहे थे ।[1] यहाँ उल्लेखनीय है कि वैन्यगुप्त नामक गुप्त-नरेश ने

---

1. "मूर्ते च गंगा-यमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम् ।
   समुद्रगारूपविपर्ययेऽपि सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे ।।"
   
   कुमारसम्भव, सर्ग 7, श्लोक 42.

यदि एक ओर परमभागवत की उपाधि धारण की थी, तो दूसरी ओर "भगवन्महादेव-पादानुद्ध्यात्" की उपाधि को भी अपनाया था । उसकी यह शैव उपाधि गुनइघर-अभिलेख ( गुप्त संवत् 188=507 ई0 ) में उपलब्ध होती है । गुप्त-सम्राटों की उक्त धार्मिक सहिष्णुता का एक कारण शक-कुषाण एवं हूण-आक्रान्ताओं की चुनौती के सामना का भी प्रश्न था ।

आलोच्यकाल में भारतीय राजवंशों में समसामयिक परिपेक्ष्य के फलस्वरूप धर्म-समन्वयवादिता की प्रवृत्ति और भी बढ़ने लगी । पुष्यभूति-वंशी सम्राट् हर्ष शैव, सौर एवं बौद्ध आदि धार्मिक मतों में समान रूप से आस्था रखता था । उत्तरी भारत के विभिन्न ऐतिहासिक केन्द्रों में भारतीय नरेशों ने जिन मंदिरों की स्थापना की, वे उनकी धर्मसमन्वय-प्रवृत्ति के परिचायक हैं । उत्तरी भारत में चन्देल राजवंश के द्वारा खजुराहों में निर्मित मंदिर तथा दक्षिण में होयसल राजवंश के संरक्षण में निर्मित ( त्रिकूट अथवा पंचायतन ) देवालय इस तथ्य के प्रमाण हैं । इनमें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की समन्वित प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं । दाक्षिणात्य शिल्पशास्त्र मयमतम् में हरिहर के मंदिर की स्थापना का विधान मिलता है । यह परम्परा उत्तर मध्य-काल तक चलती रही । बंगाल एवं असम में पंच-देवों की संयुक्त प्रतिमाओं की पूजा के प्रमाण, मौद्रिक साक्ष्य माने जा सकते हैं । त्रिपुरा एवं पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के नरेशों की मुद्राओं पर पंच-देवों के संयुक्त रूप उच्चित्रित हैं ।

---

1. "तस्मात् सममधिकं वा तत्संख्येव प्रयोक्तव्या ।
हरिहरसदनं वास्तुकमन्यत् सर्वं यथेष्टं स्यात् ।।"
मयमतम् , अध्याय 9, श्लोक 82.

2. "साध्यो नारायणश्चैव विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।"
विष्णु पुराण, 23, 95.

पंच-देवों के संयुक्त रूप की पूजा में पुराणों का भी एक उल्लेखनीय योगदान रहा है । प्रारम्भिक पुराणों में पृथक् देवों की आराधना को महत्व दिया गया और इस प्रकार ये पहले से साम्प्रदायिकता की भावना से ही प्रेरित लगते हैं । इस रूप में विष्णु पुराण में विष्णु को ही एक मात्र आराध्य एवं पूज्य कहा गया है । दूसरी ओर शिव को सभी देवों में महान् 'महादेव' के नाम से अभिहित किया गया ।[1] परन्तु समय के परिवर्तन के साथ उन्हीं पुराणों में साम्प्रदायिकता-विरोधी प्रक्षिप्तांश जोड़े गये, जिनमें इन देवताओं में एकता की भावना का प्रतिपादन मिलता है । उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश में त्रिगुणवाद ( सत् , रज और तम ) की अवधारणा प्राप्य है । 'त्रिदेव' की इस परिकल्पना में इन तीनों प्रधान देवताओं में अभेद या साम्य की भावना का प्रतिपादन प्राप्त होता है ।[2]

वायु पुराण में भी इनमें अभेद की भावना का समर्थन करते हुए कहा गया कि त्रिदेव ( ब्रह्मा-विष्णु-महेश ) मूल रूप में एक ही हैं ।[3] विष्णु पुराण में तो

---

1. "देवेषु महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।"
   वायु पुराण, 5, 41.

2. "सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्ता कर्तृपतिर्भवान् ।
   ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वरः ।।"
   विष्णु पुराण 1, 30, 10.

3. "एकात्मा स त्रिधा भूत्वा संमोहयति यः प्रजाः ।"
   वायु पुराण, 3, 66, 117.

एक स्थान पर हरिहराभेद को महत्व देते हुए विष्णु के मुख से कहा गया कि, 'हे शंकर ! आप मुझे सर्वदा अपने से अभिन्न रूप में ही देखा करें । देव, असुर एवं मानवों से युक्त इस जगत् में, जो मैं हूँ वही आप भी हैं । इस विश्व के प्राणी अज्ञान के कारण आपमें एवं मुझमें भिन्नदर्शी हो जाते हैं ।[1] इस पुराण में एक स्थल पर विष्णु एवं शंकर आदि सभी देवताओं को 'नारायणात्मक' ( विष्णुमय) कहा गया है ।[2] एक अन्य स्थल पर विष्णु पुराण में जनार्दन को 'रुद्ररूपी' कहते हुए विष्णु और शिव में तादात्म्य स्थापित किया गया ।[3] मत्स्य पुराण में एक स्थान पर शिव एवं विष्णु में अभेद निर्दिष्ट करते हुए शंकर को विश्वात्मा विष्णु के रूप में देखा गया है ।[4] प्रारम्भिक पुराणों में उपलब्ध ये प्रक्षिप्तांश, जो धार्मिक कटुता एवं साम्प्रदायिक भेद-भाव के विरोधी हैं, सामयिक ढाँचे में ढाले गये हैं । अतएव उक्त पुराणों में बाद में चलकर धर्म-समन्वय की भावना का प्रतिपादन मिलता है ।

---

1. "मत्तो विभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर ।।
   योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
   अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।।"
   
   विष्णु पुराण 5, 33, 47-48.

2. "अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः ।"
   
   विष्णु पुराण, 5, 1, 29.

3. विष्णु पुराण, 6, 3, 30.

4. "यथाभेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् ।
   तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा ।।"
   
   मत्स्य पुराण, 96, 17.

आलोच्य काल के अंतर्गत आने वाले पुराणों का दृष्टिकोण पूर्णतः धर्म-समन्वयवादी हो जाता है, जिसका एकमात्र कारण समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितयाँ थीं। उदाहरणार्थ, बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया कि वास्तविक वैष्णव मतावलम्बी वे ही हैं जो कि परमेश शिव और परमात्मा विष्णु में समबुद्धि रखते हैं।[1] इस पुराण में विष्णु को 'शिवात्मक'[2] तथा शिव को 'हरिरूपधर'[3] कहा गया है। इसमें यह भी कहा गया कि हरि, शंकर एवं ब्रह्मा एक-रूपी हैं। इस प्रकार की अवधारणा को मानने वाला व्यक्ति परमानन्द का भागी होता है।[4] इस पुराण के अनुसार महादेव 'हरि रूपी' और विष्णु 'शिव-रूपी' हैं।[5] ब्रह्म पुराण में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को 'त्रिधा' होते भी एक कहा गया है।[6] बृहन्नारदीय पुराण के अनुसार हरि और हर की प्रकृति एक होती है।[7] स्पष्ट है कि पूर्वमध्यकालीन पुराणों का यह समन्वयवादी दृष्टिकोण तत्कालीन परिस्थितियों की देन थी।

---

1. "शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि।
   समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः।।"
   बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 57.

2. बृहन्नारदीय पुराण, 3, 63.

3. वही, 6, 41.

4. "हरं हरिं विधातारं यः पश्येदकरूपिणम्।
   स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निर्णयः।।"
   वही, 6, 46.

5. बृहन्नारदीय पुराण, 11, 30.

6. 'ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते।'
   ब्रह्म पुराण, अध्याय 130, श्लोक 10.

7. बृहन्नारदीय पुराण, 6, 44.

पौराणिकों के तुल्य स्मार्तों की भी, धर्म-समन्वय के क्षेत्र में, अपनी एक विशेष भूमिका रही है। उन्होंने पंचायतन-पूजा की अवधारणा का उद्गम किया, जिसमें पाँच प्रमुख हिन्दू देवता (पंच देव) पूजा के विषय थे। स्मार्तों की पंचायतन-पूजा-पद्धति की सम्पुष्टि मध्यकालीन मंदिरों के उदाहरणों से होती है, जिनमें एक केन्द्रीय देवालय के अतिरिक्त चार अन्य देवालय इसके चारों कोनों पर विद्यमान होते थे। इस प्रकार एक केन्द्रीय योजना के ही अन्तर्गत देवालयों की संख्या पाँच हो जाती थी। इनमें से प्रत्येक में पंच-देवों की प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा अलग-अलग होती थी। डॉ० बनर्जी ने पंचायतन शिवलिंग की पूजा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है, जो कि उत्तर-पूर्व भारत में प्रचलित थी। मध्यकालीन स्मार्तों में एक ऐसा भी शैव सम्प्रदाय था, जिसके आराध्य देव एक केन्द्रीय शिव-लिंग तथा उसके चार मुखों पर अंकित गणपति, विष्णु, पार्वती एवं सूर्य थे। आपाततः यह चतुर्मुख शिवलिंग-सदृश लगता था, परन्तु वस्तुतः इस शिल्प-विधान के द्वारा उक्त पाँच प्रमुख हिन्दू देवों का प्रतिनिधित्व किया जाता था। डॉ० बनर्जी ने बिहार से प्राप्त एवं भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में प्रदर्शित इस प्रकार के एक मध्यकालीन शिवलिंग की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था।[1] यह पुरातत्वीय उदाहरण मध्यकालीन धर्म-समन्वयवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में संयुक्त प्रतिमाओं की अनिवार्य संस्तुति आलोच्य काल की धर्म-समन्वयवादी प्रवृत्ति की परिचायिका है। इस सन्दर्भ में रूपमण्डन, अपराजितपृच्छा, देवतामूर्त्तिप्रकरण, मयमतम् एवं शिल्परत्न आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तर के तृतीय खण्ड में, जो वस्तुतः कला एवं शिल्प से सम्बन्धित है, संयुक्त प्रतिमाओं के निर्माण के विधान प्राप्य हैं। इस प्रकार का शिल्प, तत्कालीन पूजा-विधान से सम्पृक्त था। इस शिल्पविधान में एक से अधिक देवताओं के लक्षण एवं आयुधों का समन्वय प्राप्त होता है।

---

1. डे०हि०आ०, जि०ना० बनर्जी, पृष्ठ 545.

शिल्परत्न में 'मिश्रमूर्त्तयः' शब्द आता है, जो कि संयुक्त प्रतिमाओं का वाचक है। इसके अतिरिक्त 'युग्म' एवं 'यामल' मूर्तियों का कतिपय अन्य शिल्प-शास्त्रों में उल्लेख मिलता है, जो कि किन्हीं दो देवी-देवताओं के संयुक्त स्वरूप के वाचक हैं। दो से अधिक देवों के संयुक्त रूप को व्यक्त करने वाला संघाट शब्द भी समन्वयपरक प्रवृत्ति का परिचायक है। शिल्पविधान के सम्पृक्त रूप से सम्बन्धित 'एकीभूत वपु', 'कान्तासंयुक्त', 'कान्तासहित', 'देहार्द्धधारी', 'एकीभूतशरीर' तथा 'अर्द्धनारीश्वर' आदि शब्द किसी देव-विशेष तथा उनकी शक्ति के संयुक्त रूप के वाचक हैं। इन शब्दों पर परिच्छेदान्तर में सम्यक् विचार किया गया है। उक्त शिल्पशास्त्रों में हरिहर, हरिहर-पितामह, हरिहर-कार्त्तिकेय, शिव-नारायण, शिव-सूर्य एवं शक्ति-गणपति आदि युग्म संघाट प्रतिमाओं के लक्षण एवं आयुधों के विवरण मिलते हैं, जो कि शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य तथा शाक्त सम्प्रदायों में एकता एवं पारस्परिक सद्भावना के प्रतीक हैं।

समसामयिक परिस्थितियों के कारण बौद्ध एवं जैन मतावलम्बी भी इस क्षेत्र में उन्मुख होने लगे। शिव-लोकेश्वर, विष्णु-लोकेश्वर एवं सूर्य-लोकेश्वर की प्रतिमाएँ बौद्ध, शैव, वैष्णव एवं सौर सम्प्रदायों में एकता एवं सद्भावना के परिचायक हैं। अवतारवाद में बुद्ध को स्थान देकर ग्रहणशीलता, व्यापकता एवं समन्वयवादिता का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया।

मध्यकालीन जैन यक्षिणियों की प्रतिमाएँ भी धर्म-समन्वयवादिता के प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ, तीर्थंकर आदिनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी, वैष्णवी देवी का रूपान्तर है। उन्हें चतुर्भुजी[1] अथवा ------

---

1. "एकेन बीजपूरं तु वरदा कमलासना।
   चतुर्भुजाऽथवा चक्रं द्वयोर्गरुडवाहना ॥"
   
   वसुनन्दी 'प्रतिष्ठासारसंग्रह' द्रष्टव्य; जैन आइकैनोग्रैफी, बी०सी० भट्टाचार्य, पृष्ठ 87.

अष्टभुजी[1] तथा गरुड पर आरूढ़ बनाया जाता था तथा उनके हाथों में चक्र, गदा, धनुष एवं पाश आदि आयुध अंकित होते थे। देखने में चक्रेश्वरी-प्रतिमा वैष्णवी प्रतिमा-सदृश लगती थी। मथुरा-संग्रहालय में प्रदर्शित आदिनाथ की चक्रेश्वरी (सं०सं०, डी० 6, 7वीं शती ई०) गरुड पर खड़ी है। इसके लक्षण एवं आयुध वैष्णवी देवी के तुल्य लगते हैं (आकृति 1)। रूपमण्डन के अनुसार चक्रेश्वरी का एक द्वितीय भेद द्वादशभुजी होता है। इनके आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और शेष दो में मातुलिंग होते हैं।[2] अपराजितपृच्छा में भी द्वादशभुजी चक्रेश्वरी का वर्णन मिलता है, जो कि गरुड के ऊपर अंकित एवं पद्मासन पर विराजमान होती है और उनके आठ भुजाओं में चक्र, दो में वज्र और शेष दो में मातुलिंग होते हैं।[3]

इसी प्रकार तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका, माहेश्वरी का जैन रूपान्तर लगती है। रूपमण्डन के अनुसार अम्बिका को सिंह पर आरूढ़ अंकित किया

---

1. "चक्रेश्वरी हेमवर्णा तार्क्ष्यारूढाऽष्टबाहुका।
   वरं वाणं चक्रं शक्तिशूलामनाकुलम्॥"
   रूपमण्डन, अध्याय 5, श्लोक 18.

2. "द्वादशभुजाष्टचक्राणि वज्रयोर्द्वयमेव च।
   मातुलिंगाभये चैव पद्मस्था गरुडोपरि॥"
   रूपमण्डन, अध्याय 6, श्लोक 24.

3. "षट्पादा द्वादशभुजा चक्राण्यष्टौ द्विवज्रकम्।
   मातुलिंगभये चैव तथा पद्मासनोऽपि च॥
   गरुडोपरिसंस्थिता च चक्रेश्वरी हेमवर्णिका॥"
   अपराजितपृच्छा, 221, 15-26.

जाय । उनके हाथों में आम्रमंजरी, नागपाश, अंकुश और पुत्र प्रदर्शित किए जाएँ ।[1] अपराजितपृच्छा में भी अम्बिका को सिंह पर आरूढ तथा समान लक्षणों एवं आयुधों से युक्त बताया गया है ।[2] अम्बिका का एक बड़ा ही प्रतिनिधि उदाहरण मथुरा संग्रहालय ( सं०सं०डी० 7, ।।हवीं शती ई०) में प्रदर्शित है, जिसमें वे सिंह पर आरूढ़ हैं । चरण-चौकी पर अष्टमातृका, अंक में शिशु तथा पार्श्वों में विष्णु, बल-राम, गणेश एवं कुबेर प्रदर्शित किए गए हैं । इस प्रतिमा को देखने से पार्वती-प्रतिमा की भ्रान्ति होती है । यह उदाहरण जैनों एवं शैवों में पारस्परिक सद्भावना का परिचायक है ( आकृति संख्या 1) ।

विवेच्य काल में तंत्रवाद का प्रभाव विभिन्न हिन्दू धर्म-सम्प्रदायों, जैन एवं बौद्ध धर्मों के ऊपर स्पष्ट रूप से पड़ा, जिसका प्रतिबिम्ब समसामयिक साहित्य एवं कला में परिलक्षित होता है । मध्यकालीन शिल्पशास्त्र, देवता-मूर्त्ति-प्रकरण, प्रासादमण्डन, राज-वल्लभ, वास्तुसार, रूपमण्डन, वास्तुमण्डन, मयमतम् , शिल्परत्न एवं अपराजितपृच्छा आदि भी तांत्रिक प्रभाव से अछूते नहीं थे । शाक्त तंत्र, सौर तंत्र, शैव तंत्र एवं बौद्ध तंत्र आदि के उद्भव एवं विकास के कारण इस समय समान धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों, कृत्यों एवं कर्मकाण्डों के साक्ष्य विभिन्न साम्प्रदा-यिकों के बीच परिलक्षित होते हैं । विविध धर्म-सम्प्रदायों से सम्बन्धित कला-रूपों में भी समान लक्षण और आयुध एवं मुद्रा-प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं, जिसका

---

1. "सिंहारूढाऽम्बिका पीतात्वाम्रकं नागपाशकम् ।
अंकुशंच तथा पुत्रं तथा हस्तेष्वनुक्रमात् ।।"
रूपमण्डन, अध्याय 6, श्लोक 19.

2. "हरिद्वर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम् ।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्संगा तथाऽम्बिका ।।"
अपराजितपृच्छा, 221, 36.

कारण तांत्रिक प्रभाव था । अपने मूल रूप में तंत्र सर्वप्रथम समाज के निम्नतर स्तर में ही प्रचलित था, जिसके सदस्य निम्न व्यवसायों का पालन करते थे । परन्तु कालान्तर में उच्च सामाजिक वर्ग भी तांत्रिक प्रभाव के अंतर्गत आने लगे । मध्य-कालीन शासक एवं सामन्त चामत्कारिक सिद्धियों से युक्त तांत्रिक आचार्यों को, अपनी राजनीतिक एवं लौकिक आकांक्षाओं की सम्पूर्ति के निमित्त, राजगुरू के रूप में नियुक्त करने लगे । राजकीय प्रश्रय में निर्मित खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क, आरंग (म0प्र0, विलासपुर), जमसोत एवं ओसियाँ आदि केन्द्रों की कला इस तथ्य के साक्ष्य माने जा सकते हैं । ।

गुर्जर-प्रतीहार नरेश महेन्द्रपाल एवं महीपाल तथा कलचुरि-नरेश युवराजदेव के संरक्षण में रहने वाले सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' नामक रचना में भैरवाचार्य नामक एक शाक्त तांत्रिक आचार्य का उल्लेख मिलता है, जिसकी चामत्-कारिक सिद्धियों से राजा आविर्भूत हो जाता है । मध्यकालीन तांत्रिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि तंत्र सभी जातियों के पुरूषों एवं स्त्रियों के उपयोग के लिए है; उदाहरणार्थ, गौतमीय तंत्र[1] । उडरोफ[2] ने अपने 'इंट्रोडक्शन टू तंत्रशास्त्र' में यही मत अभिव्यक्त किया है । बढ़ते हुए विकासोन्मुखी तंत्रवाद के परिणामस्वरूप समाज का उच्च, मध्यम एवं निम्न सभी वर्ग तांत्रिक गुणों को महत्त्व प्रदान करने लगे, जिसका कारण व्यक्तिगत धार्मिक एवं लौकिक आकांक्षाओं की सम्पूर्ति थी । बृहद्-धर्मपुराण से ज्ञात होता है कि तांत्रिक बौद्धवाद, तांत्रिक शैववाद एवं तांत्रिक शाक्त-वाद के कारण उत्तर-पूर्व भारत में सामाजिक वर्गों में पार्थक्य समाप्त होने लगा तथा सामाजिक दृष्टि से वर्ग-सामंजस्य की प्रवृत्ति पल्लवित होने लगी । यहाँ तक कि

---

1. बी0एन0एस0 यादव, सोसायटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया, पृष्ठ 380.

2. उडरोफ, 'इन्ट्रोडक्शन टू तंत्रशास्त्र,' पृष्ठ 17.

परम्परित वर्णाश्रम धर्म को संकटग्रस्त परिस्थितियों का सामना करना पड़ा । देवी पुराण में शूद्रों एवं चाण्डालों को भी देवालयों में होम, पूजा एवं धार्मिक कृत्यों के अधिकार प्रदान किए गये हैं । इस प्रकार का दृष्टिकोण ऐसे उच्च वर्ग के द्वारा भी जो कि शाक्त तंत्र से प्रभावित थे, विभिन्न वर्णों के पारस्परिक भेद-भाव की समाप्ति की दिशा में उल्लेखनीय भूमिका निभाई गई थी ।[1] इस प्रकार, तंत्रवाद की भूमिका धर्म-समन्वय एवं समाज-सामंजस्य की दिशा में उल्लेखनीय थी । यहाँ उल्लेखनीय है कि तंत्रदर्शन मूलतः अनुष्ठानात्मक एवं व्यवहारपरक होने के कारण मानव के दैनिक जीवन से सम्बद्ध था । समाज के अंतरंग जीवन में तंत्र-मंत्र का प्रवेश होने लगा । तंत्रोपासना में वर्ण, धर्म, लिंग तथा अन्य विचारों का ध्यान न देकर जन-सामान्य को समान आचरण की स्वतंत्रता उपलब्ध थी । तंत्रोपासना के अंतर्गत शूद्र एवं स्त्रियों को भी उपासना की स्वतंत्रता प्राप्त थी । तंत्रोपासना से सौर धर्म प्रभावित हो रहा था, जिसके प्रमाण बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण, अंशुमद्भेदागम, सुप्रभेदागम् , विश्वकर्मप्रकाश, रूपमण्डन, मानसोल्लास, समरांगणसूत्रधार, पद्मपुराण,साम्बपुराण एवं ब्रह्मपुराण आदि हैं । तांत्रिक चिकित्सक एवं ज्योतिषी जनसामान्य की सेवा करते थे, जिसके फलस्वरूप तंत्रोपासना लोकप्रिय सिद्ध होने लगी।

शंकराचार्य (8वीं शती, अंतिमचरण ) के अद्वैत दर्शन ने द्वैतवाद एवं बहुदेव-वाद को समाप्त कर धार्मिक सद्भावना के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान किया था । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अवधारणा के प्रतिपादन ने एकेश्वरवाद को बढ़ावा दिया था । इसके तात्कालिक प्रभाव का एक स्पष्ट प्रमाण कौमुदीमहोत्सव नामक नाटक है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने पांडि-त्यपूर्ण लेख में आकृष्ट किया था । उनके अनुसार इस ग्रंथ की लेखिका ( विज्जिका ) ने इसके प्रथम श्लोक में ही शंकर के अद्वैत दर्शन का प्रभाव इंगित किया है । इस

---

1. बी०एन०एस० यादव, सोसायटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया, पृष्ठ 380.

श्लोक में 'कृत्तिवासस' ( शिव) का उल्लेख हुआ है । लाक्षणिक रूप में इससे तात्पर्य शंकराचार्य से भी है जो कि परम्परा के अनुसार शिव के अवतार माने जाते हैं । इस ग्रन्थ में शिव के दो विशेषण आते हैं :-

( 1 ) 'ब्रह्मव्याख्याननिष्ठः' - अर्थात् ब्रह्म की व्याख्या में जिसकी विशेष रूप से निष्ठा है (ब्रह्मणः व्याख्यायां निष्ठा = सतताध्यवसायो यस्य सः) ;

( 2 ) 'नानात्वग्रन्थिभेत्रीं धियमिव विकिरन्' - जो द्वैत की गाँठ ( ग्रन्थि ) का भेदन करने वाली बुद्धि को विकीर्ण करने वाले हैं । इन दोनों ही विशेषणों में लेखिका शिव के अतिरिक्त इनके अवतार शंकराचार्य की ओर संकेत करती है । वस्तुतः ये दोनों ही विशेषण शंकराचार्य के विषय में कहीं अधिक चरितार्थ होते हैं । शंकराचार्य का सम्पूर्ण जीवन वेदान्तवाक्य ( ब्रह्मव्याख्या ) के प्रतिपादन में व्यतीत हुआ था ।[1] अद्वैत् दर्शन के तात्कालिक व्यापक प्रभाव का यह साहित्यिक साक्ष्य एक विशिष्ट उदाहरण माना जा सकता है ।

ब्रह्मचेतना के प्रोत्साहकों में वैष्णवाचार्य रामानुज ( 11हवीं-12हवीं शती ) ई0 ) का विशिष्टाद्वैतवाद, निम्बार्कदर्शन (12हवीं शती ई0 ) 'ब्रह्मा ही अंतिम सत्य है' तथा माध्व ( 13हवीं शती ई0 ) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त (वेदान्त ब्रह्म ही विष्णु का एक द्वितीय नाम है तथा वही पूजा का विषय है ) उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त शैवाचार्य श्रीकण्ठ का, जो कि रामानुज के समकालीन थे तथा

---

1. इंडियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली; जिल्द 14, पृष्ठ 584-585.
(क्षेत्रशचन्द्र चट्टोपाध्याय का लेख )

जिन्होंने 'शिवाद्वैत' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उल्लेख किया जा सकता है। उन्होंने वेदान्तसूत्र की व्याख्या करते हुए शिव को ब्रह्मरूप मान कर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया था। एकेश्वरवादियों के सिद्धान्त के गहरे प्रभाव का दृष्टांत पुरी का जगन्नाथ मंदिर है। जगन्नाथ वस्तुतः कर्मधारय समास है ; - 'जगत् एवं नाथः' अर्थात् यह विश्व ( ब्रह्माण्ड) ही नाथ है और नाथ ही समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। यहाँ पर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की ओर संकेत है।

धर्म-समन्वयवाद की प्रवृत्ति विशेष कर उत्तर मध्यकाल ( 1000 ई० से 1200 ई०) से भारत में सर्वव्यापिनी होने लगी। इसका कारण उत्तर-पश्चिम से बाह्य आक्रमणों की सतत् प्रक्रिया थी। आक्रान्ता के रूप में अवतरित इस्लाम शासक के रूप में स्थिर होता दिखाई दिया। फलतः हिन्दू धर्म ने ऊँच-नीच एवं वर्णगत् भेद-भाव को समाप्त करना आत्मसुरक्षा की दृष्टि से अनिवार्य समझा। इस प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब मधुसूदन सरस्वती के प्रस्थान-भेद में परिलक्षित होता है, जिसके अनुसार मोक्ष ही वास्तविक लक्ष्य है तथा सभी दर्शन जो वेद से ही सम्बन्धित हैं, एक समग्र रूप के अंग हैं। इस प्रकार भेद के स्थान पर अभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इस योजना में भिन्नाश्रयी दार्शनिक सिद्धान्तों को स्थान नहीं था। मधुसूदन सरस्वती के अनुसार इस प्रकार के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण भ्रान्तिमूलक हैं तथा उनकी समाप्ति ही मानव कल्याण के लिए उपयोगी है। कालान्तर के एक दूसरे प्रसिद्ध दार्शनिक विज्ञानभिक्षु (16हवीं शती ई० ) ने धर्मसमन्वय की दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया था। उनके अनुसार सांख्य एवं वेदान्त में नाम से ही विभिन्नता है, परन्तु तत्त्व की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि सांख्य वस्तुतः ब्रह्म की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है और ब्रह्म के ही गुण के अंतर्गत् आता है। अतएव उनके अनुसार सांख्यदर्शन अनीश्वरवादी नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार उन्होंने इन दोनों के ही दार्शनिक सिद्धान्तों (सांख्य एवं वेदान्त )में सामंजस्य करने की चेष्टा की थी। उनका यह प्रयास धार्मिक समझौता एवं समन्वयवादिता की परिचायिका है जिसके मूल्य को समसामयिक भारत-

वासियों ने समझा ।[1] मध्यकाल (700 से 1200 ई0) की बहुसंख्यक युग्म एवं संघाट मूर्तियाँ, जो कि धर्म के क्षेत्र में एकत्ववादी दृष्टिकोण के वाचक हैं, उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों की देन निर्धारित की जा सकती हैं ।

## युग्म एवं संघाट-मूर्तियों की अवधारणा

प्राचीन भारतीय कला में धार्मिक समन्वयवादिता के प्रतीकत्व को प्रकट करने वाली देवी-देवताओं के ऐसे स्वरूपों की कल्पना देखने को मिलती है, जिनमें किन्हीं दो या दो से अधिक देवी-देवताओं के प्रतिमा-लक्षण को उनके आयुधों एवं अनुचरों के सहित संयुक्त रूप में प्रदर्शित किया गया है । यह विशेषता भारतीय शिल्प और पूजा-विधान में, विशेष रूप से, अधीत काल (600 से 1200 ई0) के मध्य द्रष्टव्य है । इस प्रक्रिया में दो कोटि की मिश्रित मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं जो कि धार्मिक सद्भाव और विद्वेष के विघटन के काल का प्रतिनिधित्व करती मानी जा सकती हैं । इस शिल्पविधान का एक विशिष्ट प्रकार किन्हीं दो देवों के संयुक्त रूप में देखा जा सकता है, जिनको कि प्रतिमा-शास्त्रीय ग्रंथों में 'युग्म' शब्द से सम्बोधित किया गया । उदाहरणार्थ, सूत्रधार मण्डन-प्रणीत 'रूपमण्डन' शीर्षक ग्रन्थ मे 'युग्म' शब्द का उल्लेख करते हुए कहा गया कि सभी देवताओं की प्रतिमाएँ युग्म-रूप में निर्मित करनी चाहिए । उनकी शक्तियों का पृथक् स्वरूप उनके अस्त्र, वाहन एवं आकृति हैं ।[2] द्वितीय प्रकार की मिश्रित मूर्तियों के लिए

---

1. दी स्ट्रगिल फॉर इम्पायर, पृष्ठ 465-466; (यू0सी0 भट्टाचार्य का लेख)
2. "सर्वेषामेव देवानां युग्मं युग्मं विधीयते ।
   तेषां शक्तिः पृथग्रूपा तदस्त्रावाहनाकृतिः ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 4, श्लोक 36.

'संघाट' शब्द का प्रयोग मिलता है । इस शब्द का उल्लेख, जिसमें कि दो से अधिक देवों के मिश्रित प्रतिमा-लक्षण प्राप्त होते हैं, विश्वकर्मा के अप्रकाशित ग्रंथ 'वास्तु-विद्या' में उपलब्ध होता है ।

युग्म-मूर्तियाँ भी तीन प्रकार से निर्मित होने लगीं । प्रथम कोटि में, वैष्णव एवं शैव धर्मों की एकता को व्यक्त करने-वाली संयुक्त देव-प्रतिमाएँ द्रष्टव्य हैं । इनमें हरिहर, शिव-नारायण, कृष्ण-शंकर, कृष्ण-कार्त्तिकेय, शिव-राम, हरि-ब्रह्मा, सूर्य-ब्रह्मा, मार्त्तण्ड-भैरव एवं शिव-सूर्य उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त वैष्णव तथा बौद्ध धर्म की समन्वयवादिता को व्यक्त करने वाली मिश्रित प्रतिमाएँ भी प्राप्त होने लगीं, उदाहरणार्थ, शिव-लोकेश्वर, विष्णु-लोकेश्वर और सूर्य-लोकेश्वर ।

युग्म-मूर्तियों का दूसरा स्वरूप उन उदाहरणों में देखने को मिलता है, जिनमें देवताओं को अपनी अपनी शक्तियों के साथ या तो मिश्रित रूप में दिखाया गया या आलिंगन मुद्रा में दिखाया गया । मिश्रित रूप में प्रदर्शित उदाहरण अर्द्ध-नारीश्वर, वासुदेव-कमलजा, शक्ति-गणपति, सौरी-चतुरेश्वरी आदि उल्लेखनीय हैं ।

तृतीय कोटि में वैष्णव एवं शैव धर्मों से सम्बन्धित देवी प्रतिमाएँ संयुक्त रूप में दिखाई गईं; उदाहरणार्थ, पार्वती-लक्ष्मी, लक्ष्मी-सरस्वती एवं लक्ष्मी-राधिका। इसी प्रकार वैष्णव एवं जैन धर्म की पारस्परिक समन्वयवादिता को व्यक्त करने-वाली प्रतिमाएँ भी मिलती हैं, जिनमें जैन यक्षिणी चक्रेश्वरी उल्लेखनीय है । इस स्थान पर शैव एवं जैन धर्मों की पारस्परिक समन्वयवादिता को व्यक्त करने वाली प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं ; उदाहरणार्थ, जैन यक्षिणी अम्बिका ।

संघाट-कोटि की मिश्रित मूर्तियों में दो से अधिक देवी-देवताओं की मिश्रित

मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। उदाहरणार्थ, हरिहर-पितामह, हरिहर-हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-सूर्य, पंचायतन लिंग, द्वादश मनवन्तर विष्णु, गुह्येश्वरी-पशु-मोहनी, अष्टलोकपाल विष्णु आदि। संघाट कोटि का शिल्प-विधान एक-दूसरे रूप में देखने को मिलता है, जिसमें एक ही फलक पर मिश्रित रूप के स्थान पर कई देवी-देवताओं को एक साथ दिखाया गया, उदाहरणार्थ-त्रिमूर्त्ति, विराट्रूप अथवा विश्वरूप-प्रदर्शन आदि इसी कोटि के अंतर्गत् आते हैं।

-----::0::-----

# अध्याय 2

## पंच देवों का सामंजस्यवादी स्वरूप

## अध्याय 2

## पंच देवों का सामंजस्यवादी स्वरूप

वस्तुतः, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो पंच देवों में प्रत्येक के प्रतिमा-लक्षण मिश्रित तत्वों के प्रतीक हैं । इस तथ्य की ओर निर्देश, प्राविधिक एवं प्राविधिकेतर — दोनों ही कोटि के प्राचीन ग्रंथों में देखने को मिलता है । इन देवों के मूर्त्तन की लाक्षणिक विशेषताओं में भी संयुक्त रूपों का बोध तत्वदर्शी को आभासित होता है । इसके महत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया कि परमात्मा के दो रूप हैं - (1) प्रकृति एवं (2) विकृति । उनका अलक्ष्य (निराकार) स्वरूप प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है । परमात्मा का साकार रूप विकृति का प्रतीक है, जो सम्पूर्ण जगत् का मूर्तिमान् रूप है । पूजा एवं ध्यान, परमात्मा के साकार रूप का ही, सम्भव हो सकता है ।[1] इस प्रकार प्रतिमा (साकार रूप का बोधक), अप्रतिम (निराकार) के दृष्ट रूप का प्रतिनिधित्व करता है ।[2] अदृष्ट का दृष्ट रूप होने के कारण प्रतिमा अव्यक्त एवं व्यक्त का सामंजस्य करती है एवं जगत् रूप का प्रतिनिधि होने के कारण बहुरूपीय हो जाती है ।

---

1. "प्रकृतिर्विकृतिस्तस्य रूपेण परमात्मनः ।
   अलक्ष्यं तस्य तद्रूपं प्रकृतिस्सा प्रकीर्तिता ।।
   साकारा विकृतिर्ज्ञेया तस्य सर्वं जगत्स्मृतम् ।
   पूजाध्यानादिकं कर्तुं साकारस्यैव शक्यते ।।"

   विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 46, श्लोक 2-3.

2. "एतद्धि तस्याप्रतिमस्य रूपं तवेरितं सर्वजगन्मयस्य ।
   एवं शरीरेण जगत्समग्रं सन्धारयत्येव जगत्प्रधानः ।।"

   पूर्वोक्त, तृतीय खण्ड, अध्याय 46, श्लोक 18.

विष्णु के वैकुण्ठ रूप की अवधारणा मिश्रित प्रकृति का बोधक है। विष्णु-धर्मोत्तर में उन्हें चतुर्मूर्त्ति कहा गया है। उनके चार मुखों का विवरण देते हुए पूर्वी सौम्य मुख को वासुदेव, दक्षिणी मुख को संकर्षण ( सिंहवक्त्राभ ), उत्तरीमुख को प्रद्युम्न ( वराह मुख ) और पश्चिमी रौद्र मुख को अनिरुद्ध रूप का वाचक कहा गया है।[1] इस पुराण में अन्यत्र भी उल्लेख मिलता है कि देवदेव( विष्णु )के चार मुख बनाना चाहिए - वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध। ये क्रमानुसार बल, ज्ञान, ऐश्वर्य एवं शक्ति के वाचक हैं।[2]

मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में बैकुण्ठ प्रतिमा का उल्लेख करते हुए कहा गया कि शान्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को चतुर्मुख एवं अष्टबाहु महाबली वैकुण्ठ की आराधना करनी चाहिए, जो गरुड़ पर आसीन हों। सूत्रधार मण्डन ने इसे

---

1. "चतुर्मुखः स कर्त्तव्यः प्रागुक्तवदनः प्रभुः ।
   चतुर्मूर्तिः स भवति कृते मुखचतुष्टये ।।
   पूर्वं सौम्यमुखं कार्यं यत्तु मुखयतमं विदुः ।
   कर्त्तव्यं सिंहवक्त्राभं ज्ञानवक्त्रं तु दक्षिणम् ।।
   पश्चिमं वदनं रौद्रं यत्तदैश्वर्यमुच्यते ।
   चतुर्वक्त्रस्य कर्त्तव्यं रूपमन्यथेरितम् ।।"

   पूर्वोक्त, तृतीय खण्ड, अध्याय 85, श्लोक 43-45.

2. "बलं ज्ञानं तथैश्वर्यं शक्तिश्च यदुनन्दन ।
   विज्ञेयं देवदेवस्य तस्य वक्त्रचतुष्टयम् ।।
   वासुदेवश्च भगवांस्तथा संकर्षणः प्रभुः ।
   प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च बलाद्याः परिकीर्तिताः ।।"

   पूर्वोक्त, तृतीयखण्ड, अध्याय 47, श्लोक 9-10.

मंगलदायक कहा है ।[1] अपराजितपृच्छा में भी कहा गया है कि शान्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को अष्टबाहु एवं चतुर्वक्त्र वैकुण्ठ की पूजा करनी चाहिए, जो गरुड पर आसीन एवं महाबलयुक्त होते हैं । उनका पूर्वी मुख पुरुषाकार ( वासुदेव का आकार) , दक्षिणी मुख नारसिंह तथा पश्चिमी मुख श्रीमुखाकार तथा उत्तरी मुख वराह के आकार का होना चाहिए । ये चार प्रतीकों ( बल, ज्ञान, ऐश्वर्य एवं शक्ति ) के द्योतक हैं । उनके दाहिने चार बाहों में गदा, खड्ग, बाण एवं चक्र तथा बायें चार हाथों में शंख, खेट, धनुष एवं पद्म होना चाहिए ।[2] इस प्रकार विष्णु के प्रतिमालक्षण सामंजस्य के सिद्धान्त पर आधारित हैं । इस कोटि की विष्णु-प्रतिमाएँ उत्तरी भारत से बहुश: प्राप्य हैं, जो कि एक ही आकार के माध्यम से विविध तथ्यों की अभिव्यंजना करते हैं ।

यहाँ तक कि विष्णु का वाहन गरुड भी एक ऐसा संयुक्त रूप है जिसमें मानव विग्रह, पक्षी विग्रह एवं सपक्षजीव के विग्रह का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है ।

---

1. "वैकुण्ठं च प्रवक्ष्यामि सोऽष्टबाहुर्महाबल: ।
   तार्क्ष्यासनश्चतुर्वक्त्र: कर्त्तव्य: शान्तिमिच्छता ।।"
   रूपमण्डन, तृतीय अध्याय, श्लोक 52.

2. "प्रवचास्यथ वैकुण्ठं सोऽष्टबाहुर्महाबल: ।
   गरुडस्थश्चतुर्वक्त्र: कर्त्तव्य: शान्तिमिच्छिता।।
   गदा खड्गो वाणचक्रे दक्षिणेऽस्त्रचतुष्टयम् ।
   शंखं खेटो धनु: पद्मं वामे चास्त्रचतुष्टयम् ।।
   पुरत: पुरुषाकारो नारसिंहश्च दक्षिणे ।
   अपरे श्रीमुखाकारो वाराहस्यतथोत्तरे ।।"
   अपराजितपृच्छा, 219, 25-27.

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में गरुड के इस प्रकार के रूप का विवरण देते हुए कहा गया कि वे चतुर्भुज ( पुरुषरूप ), किंचित् लंबोदर एवं पक्षद्वयविभूषित होते हैं । उनकी नाक कौशिकाकार (उलूक-भाँति) एवं उनके दोनों हाथों में छत्र एवं कुम्भ सुशोभित होना चाहिए । उनकी जाँघ एवं चरण गिद्ध के तुल्य होना चाहिए । उनके शरीर से स्वर्ण की भाँति आभा प्रस्फुटित होना चाहिए तथा उनके नेत्र एवं मुख मानवतुल्य होना चाहिए । उनकी आँखों से मरकत मणि की कान्ति प्रस्फुटित होनी चाहिए। स्पष्ट है कि गरुड-स्वरूप में मानव एवं पक्षी के विग्रह की विशेषताओं का सामंजस्य प्राप्य है ।[1]

पंच-देव-समूह के शिव देवता के अंग-प्रत्यंग एवं आयुध विविध रूपों एवं तत्वों के सामंजस्य का प्रतिनिधित्व करते हैं । यहाँ पर शिव के पंच मुखों का उल्लेख करना

---

1. "तार्क्ष्यो मारकतप्रख्य: कौशिकाकारनासिक: ।
   चतुर्भुजस्तु कर्त्तव्यो वृत्तने त्रमुखस्तत: ।।

   गृध्रोरुजानुचरण: पक्षद्वयविभूषण: ।
   प्रभासंस्थानसौवर्ण: कलापेनविवर्जित: ।।

   छत्रं च पूर्णकुम्भं च करयोस्तस्य कारयेत् ।
   करद्वये तु कर्त्तव्यं तथास्य रचितांजलि: ।।
   तथास्य भगवान्पृष्ठे छत्रकुम्भधरौ करौ ।।

   न कर्त्तव्यौ तु कर्त्तव्यौ दैवपादधरावुभौ ।
   किंचिल्लम्बोदर: कार्य: सर्वाभरणभूषित: ।।

   विष्णुधर्मोत्तर, तृतीयखण्ड, अध्याय 54, श्लोक 2-6.

आवश्यक है, जिसके कारण उन्हें पंचानन, पंच-वक्त्र अथवा पंच-मुख कहा जाता है। इन पाँच मुखों में महादेव अथवा सद्योजात पूर्वी मुख, वामदेव अथवा उमावक्त्र उत्तरी मुख, भैरव अथवा अघोर दक्षिणीमुख, तत्पुरुष अथवा नन्दिवक्त्र पश्चिमी मुख तथा ईशान अथवा सदाशिव शीर्षस्थ हुआ करता है।[1] ये पाँचो पाँच तत्त्वों के द्योतक हैं। सद्योजात् पृथ्वी, वामदेव जल, अघोर तेज (कान्ति), तत्पुरुष वायु और ईशानमुख आकाश का प्रतिनिधित्व करता है।[2]

पंच-मुख शिव के दस हाथों में से, दो हाथों के प्रत्येक जोड़े मुखविशेष से सम्बन्धित हैं और इनमें आयुधों का प्रदर्शन सम्बन्धित मुख के ही अनुरूप हुआ है। उदाहरणार्थ, सद्योजात मुख से सम्बन्धित युग्म हाथों में अक्षमाल एवं कमण्डलु, अघोर मुख से सम्बन्धित बाहु-युगल में दण्ड एवं मातुलिंग (मातुलुङ्ग), वामदेव-मुख से सम्बन्धित दोनों करों में दर्पण एवं इन्दीवर ( कमल ), तत्पुरुष-मुख से सम्बन्धित बाहु-युगल में चर्म

---

1. "सद्योजातं वामदेवमघोरं च महाभुज।
तथा तं पुरुषं ज्ञेयमीशानं पंचमं मुखम्॥"

विष्णुधर्मोत्तर, तृतीयखण्ड, अध्याय 48, श्लोक 1.

2. "सद्योजातं मही प्रोक्ता वामदेवं तथा जलम्।
तेजस्त्वघोरं विधात्तं वायुस्तत्पुरुषं मतम्॥

ईशाने च तथाकाशमूर्द्धस्थं पंचमं मुखम्।
विभागेनाथ वक्ष्यामि शम्भोर्वदनपंचकम्॥"

विष्णुधर्मोत्तर, तृतीयखण्ड, अध्याय 48, श्लोक 2-3.

एवं शूल और ईशान-मुख से सम्बन्धित दोनों हाथों में पिनाक एवं बाण प्रदर्शित होने चाहिए ।[1]

मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में शिव के पाँच मुखों में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव की प्रतिष्ठा प्राप्य है ; उदाहरणार्थ ईशानुगुरुदेव-पद्धति ।[2] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शिव के तीन नेत्रों को चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि का वाचक कहा गया है ।[3] पंच-मुख शिव के बनाने के प्रमाण मध्यकालीन कला में देखने को मिलते हैं ; उदाहरणार्थ, एलिफैण्टा की महेश-मूर्ति । कालान्तर में पंच-मुख शिव के आधार पर एकादश रुद्र अथवा द्वादश शिव की मूर्तियों का विधान किया गया । अपराजितपृच्छा में एकादश रुद्र की सूची मिलती है ।[4] रूपमण्डन में एकादश

---

1. "दिशो दश भुजास्तस्य विज्ञेयं वदनं प्रति ।
   महादेवकरे ज्ञेया त्वक्षमालाकमण्डलू ।।
   सदाशिवमुखे ज्ञेयौ चापबाणौ महाभुज ।
   माहेश्वरं ततश्चापं पिनाकमिति शब्दितम् ।।
   तेषां तु पूर्वमेवोक्तं व्याख्यानं रिपुसूदन ।
   दण्डश्च मातुर्लुंगश्च करयोर्भैरवस्य तु ।।
   मृत्यु-दण्डौ विनिर्दिष्टौ मातुर्लुंगस्तथा करे ।
   जगद्बीजस्य सर्वस्य ये राजन्परमाणव: ।।"
   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीयखण्ड, अध्याय 48, श्लोक 9-12.

2. "शिवस्यैव प्रतिष्ठायां पंचपक्षे तु मूर्त्तय: ।
   ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिव: ।।"
   ईशागुरुदेवपद्धति, पटल 46, श्लोक 62-63.

3. "नेत्राणि त्रीणि तस्यांगा: सोमसूर्यहुताशना: ।"
   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीयखण्ड, अध्याय 48, श्लोक 4.

4. "सद्योवामोऽघोरतत्पुरुषावीशान एव च ।
   मृत्युंजयश्च विजय: किरणाक्षोऽघोरास्त्रक: ।।
   श्रीकण्ठश्च महादेवो रुद्राश्चैकादश स्मृता: ।।"
   अपराजितपृच्छा, 292, 1-2.

के स्थान पर द्वादश शिव का विवरण प्राप्य है, जिसमें सद्योजात, वामदेव, अघोर एवं तत्पुरुष के अतिरिक्त ईश, मृत्युंजय, किरणाक्ष, श्रीकण्ठ, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, सदाशिव एवं त्र्यम्बक के उल्लेख मिलते हैं ।[1] शिव के द्वादश रूप जगत् रूप की बहुलता के वाचक हैं । इस सूची में विविध तत्वों का विलक्षण सामंजस्य देखा जा सकता है ।

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि शिव के सामंजस्यवादी रूप की अवधारणा प्राविधिकेतर ग्रंथों में भी बहुशः प्राप्य है, जो कि लोकविश्वास एवं आस्था का परिचायक है । उदाहरणार्थ, कालिदास की कृतियों के सन्दर्भों का विवरण इस स्थान पर देना प्रासंगिक होगा । 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की नान्दी में शिव के आठ प्रत्यक्ष रूपों की चर्चा की गई है :-

(1) जल-रूप, जिसे ब्रह्मा ने सबसे पहले बनाया ;

(2) अग्नि-रूप, जो विधि के साथ दी गई हवन-सामग्री को ग्रहण करती है ;

(3) होता-रूप, जिसे यज्ञ करने का काम प्राप्त हुआ हो ;

(4-5) चन्द्र एवं सूर्य-रूप, जो कि दिन एवं रात का समय निश्चित करते हैं;

(6) आकाश-रूप, जिसका गुण शब्द है और जो संसार भर में रमा हुआ है ;

(7) पृथ्वी-रूप, जो सब बीजों को उत्पन्न करने वाला बताया जाता है ;

---

1. रूपमण्डन, अध्याय 4, श्लोक 1-26.

(8) वायु-रूप, जिसको पीकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं ।[1]

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' में भी शिव के आठ प्रत्यक्ष रूपों की चर्चा की है । इस नाटक के प्रथम अंक के प्रथम श्लोक में शिव की वन्दना करते हुए कहा गया कि 'संसार के स्वामी महादेव अपने आठ रूपों से संसार का पालन करते हैं और तब भी अभिमान को अपने पास फटकने नहीं देते ।[2] इनमें शिव (कृत्तिवासस्) अपने भक्तों को बहुफल (अष्टफल) के दाता माने गये हैं (प्रणतबहुफले: अंक 1, श्लोक 1) । बहुफल से तात्पर्य आठ सिद्धियों से हैं जिसका सम्बन्ध शिव की अष्ट-मूर्ति से लगता है (अणिमा लघिमा प्राप्ति: प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशात्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता) । रघुवंश के द्वितीय सर्ग में कुम्भोदर नामक शिव के गण की चर्चा आती है जो उनके शक्तिशाली गण निकुम्भ का मित्र है । वह अपने आपको 'अष्टमूर्ति' (शिव) का सेवक बताता है ।[3] अष्टमूर्ति की व्याख्या करते

---

1. "या सृष्टि: स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
   ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
   यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:
   प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश: ।।"

   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, श्लोक 1.

2. 'अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुविर्बिभ्रतो नाभिमान: ।'
   मालविकाग्निमित्रम्, प्रथम अंक, श्लोक 1.

3. 'अवेहि मां किंकरमष्टमूर्ते: कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ।'
   रघुवंश, द्वितीय सर्ग, श्लोक 35.

हुए मल्लिनाथ उसे सम्बन्धित प्रत्यक्ष रूपों की इस प्रकार चर्चा करते हैं - 'पृथ्वी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च । सूर्याचन्द्रमसौ सोमायाजी चेत्यष्टमूर्त्तयः' ।[1] भविष्यपुराण में शिव के आठ प्रत्यक्ष रूपों के नाम भी मिलते हैं ;

'शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः । भवाय जलमूर्त्तये नमः । रुद्रायाग्निमूर्त्तये नमः । उग्राय वायुमूर्त्तये नमः । भीमायाकाशमूर्त्तये नमः । पशुपतये यजमान-मूर्त्तये नमः । महादेवाय सोममूर्त्तये नमः । ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः । मूर्त्तयोष्टौ शिवस्यैताः ।[2] उपर्युक्त विवरण भी शिव के सामंजस्यवादी देव की अवधारणा में सामान्य जन की आस्था एवं विश्वास का परिचय प्रदान करते हैं ।

इसी प्रकार देवी रूप भी एक सामंजस्यवादी रूप है । दुर्गासप्तशती ( मार्कण्डेय-पुराण) में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा गया कि देवी का स्वरूप सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समुदाय है । वे अपनी इस शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करती हैं ।[3] इस ग्रंथ में उन्हें सम्पूर्ण देवताओं के तेज की राशि से उत्पन्न कहा गया है ।[4] मार्कण्डेय पुराण के देवी-माहात्म्य-खण्ड में उन्हें ब्रह्मा,

---

1. पूर्वोक्त श्लोक पर मल्लिनाथ-टीका ।

   तुलनार्हः - 'जल वह्निस्तथा यष्टा सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
   आकाशं वायुरवनी मूर्तयोऽष्टौ पिनाकिनः ।'

2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् , एम०आर० काले-संपादित दशम् संस्करण, पृष्ठ 299.

3. 'देव्या यया ततमिदं जगदात्माशक्त्या
   निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।'
   दुर्गासप्तशती, अध्याय 4, श्लोक 3.

4. 'ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।'
   पूर्वोक्त, अध्याय 2, श्लोक 19.

विष्णु और शिव की संयुक्त देन कहा गया है । शुम्भ, निशुम्भ एवं महिष इन तीनों देवताओं के संहार के लिए इन तीनों देवताओं एवं अन्य देवों ने मिलकर अपने-अपने तेज को एक केन्द्रीय तेज में परिवर्तित कर दिया । चक्रपाणि विष्णु के मुख से निकला हुआ तेज तथा ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से निकला हुआ भारी तेज मिलकर एक हो जाने के कारण एक ऐसा तेजपुंज निकला जो जाज्वल्यमान् पर्वत् सा दिखाई देने लगा । देवताओं ने देखा कि उसकी ज्वाला सम्पूर्ण दिशा में व्याप्त हो रही थी । सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से प्रकट उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी । एकत्र होने पर वह एक नारी के रूप में परिणित हुआ और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त जान पड़ा ।[1]

इस आख्यानात्मक पौराणिक विवरण में देवी के सामंजस्यवादी रूप का

---

1. "ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
   निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ।।

   अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
   निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत् ।।

   अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
   ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।।

   अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
   एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ।।"

   दुर्गासप्तशती, अध्याय 2, श्लोक 10-13.

सुन्दर प्रतिबिम्ब मिलता है । देवीमाहात्म्य-खण्ड में देवी को सम्पूर्ण शास्त्रों के सार का ध्यान रखनेवाली सरस्वती, दुर्गम् भवसागर से पार उतारनेवाली आसक्ति-रहित दुर्गा देवी, कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर एकमात्र निवास करने वाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरीदेवी कहा गया।[1] यहाँ उन्हें सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी एवं पार्वती के एकत्र रूप का प्रतिनिधि कहा गया है । इसी प्रकार स्कन्द पुराण में उन्हें लक्ष्मी, ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद - 'रूपा', 'विद्या' का समन्वय कहा गया है ।[2]

देवी के संबन्ध में यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक है कि सप्तमातृकाओं का उद्‌भव विभिन्न देवों की शक्तियों का वाचक है । मार्कण्डेय पुराण (दुर्गासप्तशती) में कहा गया कि जब देवी रक्तबीज और शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों की सेनाओं से घिर गईं तो ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि ने अपने शरीर से शक्तियाँ

---

1. "मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
   दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।
   श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
   गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ।।"

   पूर्वोक्त, अध्याय 4, श्लोक 11.

2. "पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे ।
   ऋग्यजुः सामरूपायै विद्यायै ते नमोनमः ।।"

   स्कन्द पुराण, विष्णुखण्ड, वेंकटाचलमाहात्म्य-खण्ड, अध्याय 9, श्लोक 104.

उत्पन्न कीं और जिस देवता का जैसा रूप, वेश-भूषा एवं वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से सम्पन्न होकर उनकी शक्तियाँ असुरों से युद्ध करने गईं ।[1] देवीमाहात्म्य की सप्तमातृका-सूची में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, नारसिंही, वाराही एवं ऐन्द्री आदि हैं । ये मातृशक्तियाँ वस्तुत: देवी की ही अंगभूत शक्तियाँ थीं और इस कारण वे अंतत: देवी में ही तिरोहित हो गईं । देवी ने शुम्भ से कहा कि मातृशक्तियाँ उनकी ही विभूतियाँ हैं ।[2]

गणेश का शुण्ड-धारी रूप, वस्तुत:, संयुक्त रूप का द्योतक है, जिसमें मनुष्य-विग्रह में पशुमस्तक सम्पृक्त होता है । उनके हेरम्ब-रूप में एक स्थान पर पाँच मुख पुरुष-विग्रह में संयुक्त होते हैं । वे अष्टभुज होते हैं, जिनमें अंकुश, दण्ड, कपाल, बाण, अक्षपाश एवं गदा के अतिरिक्त वरद् एवं अभय-मुद्राएँ प्रदर्शित होनी

---

1. "ब्रह्मेशगुहविष्णूनां यथेन्द्रस्य च शक्तय: ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययु: ।।

यस्य देवस्य यद्रूपं - यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ।।"

दुर्गासप्तशती, अध्याय 8, श्लोक 13-14.

2. "अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।"

दुर्गासप्तशती, अध्याय 10, श्लोक 8.

चाहिए ।[1] गणेश का यह हेरम्ब रूप चारों ही शक्तियों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का दायक होता है । गणेश के आयतन-विधान में विभिन्न देवों एवं शक्तियों की, यथास्थान, स्थिति के उल्लेख मिलते हैं जो कि धार्मिक सामंजस्य एवं सद्भावना के प्रतीक कहे जा सकते हैं । रूपमण्डन के अनुसार गणेश के आयतन के बाएँ अंग में गज-कर्ण तथा दायें अंग में सिद्धि होनी चाहिए । दोनों कानों के पृष्ठभाग में धूम्रक और बाल-चन्द्रमा होना चाहिए । उत्तर दिशा में गौरी, दक्षिण में सरस्वती, पश्चिम में यक्षराज और पूर्व में बुद्धि स्थित होनी चाहिए ।[2]

पंच-देवों में सूर्य का भी एक उल्लेखनीय स्थान है । हिन्दू-देववाद में इसकी

---

1. "वरं तथांकुशं दन्तं दक्षिणे पाशवर्धाभयौ पशर्वधाभये ।
   वामे कपालं वाणाक्षं पाशं कौमुदकी कौमरेदकीं तथा ।।

   धारयन्तं करैः रम्यैः पंचवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
   हेरम्बं मूषिकारूढं कुर्यात् सर्वार्थकामदम् ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 5, श्लोक 16-17.

2. "वामांगे गजकर्णं तु सिद्धिं दद्याच्च दक्षिणे ।
   पृष्ठकर्णे तथा द्वौ च धूम्रको बालचन्द्रमाः ।।

   उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सरस्वती ।
   पश्चिमे यक्षराजश्च बुद्धिः पूर्वे संसंस्थिता ।।"

   पूर्वोक्त, अध्याय 5, श्लोक 19-20.

प्रतिष्ठा और पूजा अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में सूर्य को जगत् की आत्मा कहा गया है।[1] अप्रकाशित ग्रन्थ सूर्योपनिषद् में सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र माना गया है।[2] महाभारत में सूर्य को देवेश्वर कहते हुए कहा गया कि आप ही इन्द्र हैं और आप ही रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि और ब्रह्म हैं।[3] निरुक्त में इन्हें सवितृ तथा 'सर्वव्यापी' कहा गया है।[4] स्पष्ट है कि उपर्युक्त साहित्यिक उल्लेखों से सूर्य का सामंजस्यवादी स्वरूप अभिव्यंजित होता है। इस प्रकार पंच देवों की अवधारणा उनके सामंजस्यवादी स्वरूप का परिचायक सिद्ध होती है।

-----::0::-----

---

1. 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'

   ऋक्0 1, 115, 1.

2. द्रष्टव्य, बलराम श्रीवास्तव, रूपमण्डन, भूमिका, पृष्ठ 38.

3. "त्वमिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
   त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्मशाश्वतम्॥"

   महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 306, श्लोक 7-9.

4. 'सर्वस्यप्रसविता'

   निरुक्त, 10, 31.
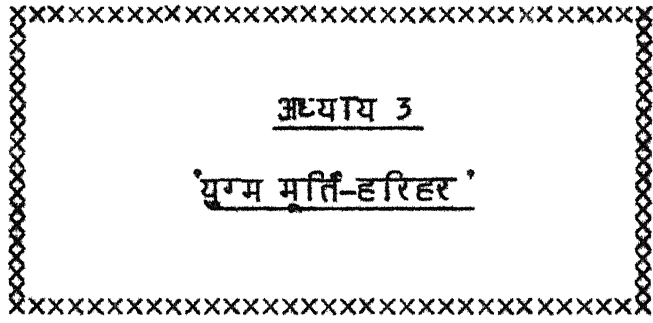
## अध्याय 3

## 'युग्म मूर्ति-हरिहर'

## अध्याय 3

## "युग्म-मूर्ति – हरिहर

विष्णु एवं शिव के प्रधान देव होने के कारण इन दोनों ही के संयुक्त रूप हरिहर की पूजा का व्यापक प्रचलन था । हरिहर को कुछ अन्य नामों से भी शिल्पशास्त्रों एवं प्राविधकेतर ग्रन्थों में व्यक्त किया गया है ; उदाहरणार्थ ; हर्यर्द्धमूर्ति, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम, गोपीनाथराव ने आकृष्ट किया था । उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'एलिमेन्ट्स आॅफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी' में हरिहर-प्रतिमा का शीर्षक वस्तुतः 'हर्यर्द्धमूर्ति' ही दिया है, जिसका कारण स्पष्ट है । उत्तरकामिकागम में महेशार्द्ध तथा विष्ण्वर्द्ध[1] नामों से इसे अभिहित किया गया है । शिल्परत्न में इसे शंकरार्द्ध[2], पूर्वकामिकागम[3] में इसके लिए ईशार्द्ध, विष्ण्वर्द्ध एवं हर्यर्द्ध तथा अन्यत्र तन्निमित्त प्रद्युम्नेश्वर[4], शूलभृच्छार्ङ्गपाणि (शूलभृत् एवं शार्ङ्गपाणि)[5],

---

1. "अर्धनारीश्वरो ह्येवं हर्यर्द्धं श्रृणुत द्विजाः ।
   प्राग्वत्कृत्वा महेशार्द्धं विष्ण्वर्द्धमितरत्र च ।।"

   राव गोपीनाथ, एलिमेंट्स आॅफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 168.

2. "देवं हरिहरं वक्ष्ये सर्वपातकनाशनम् ।
   दक्षिणे शंकरस्यार्द्धमर्द्धं विष्णोश्च वामतः ।।"

   वही, पृष्ठ 170.

3. "ईशार्द्धं पूर्ववत्प्रोक्तं विष्ण्वर्धं मुकुटं नयेत् ।
   xxxxx xxxxx xxxxx xxx
   हरिरर्द्धमिदं प्रोक्तं सुखासनमथ श्रृणु ।

   वही, पृष्ठ 171.

4. सरकार दि०च०, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, जिल्द 2, पृष्ठ 115.

हरिशंकरसंज्ञित देव एवं हरिशंकर[1] आदि नाम आते हैं । हरिहर की संयुक्त प्रतिमा की समकक्षता में कृष्ण-शंकर, कृष्ण-कार्त्तिकेय एवं शिव-नारायण भी आते हैं जो वैष्णव और शैव धर्मों में पारस्परिक एकता एवं सद्भावना के द्योतक हैं ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि हरिहर के मूर्तन-परम्परा से हरिहर की देव-रूप अवधारणा कहीं अधिक प्राचीन है, जिसका बीज-रूप हरिवंश (महाभारत-परिशिष्ट) में 'हरिहराभेदप्रशंसा' - सम्बन्धी पंक्तियों में उपलब्ध होता है । इस ग्रन्थ में युधिष्ठिर एवं भीष्म के बीच वार्तालाप की प्रक्रिया में हरि एवं हर को अभिन्न व्यक्त किया गया है । इस ग्रन्थ में युधिष्ठिर भीष्म से प्रश्न करते हैं कि हे महाभाग ! आप मुझे कृपया यह बताने की अनुकम्पा करें कि किस प्रकार समस्त प्राणियों के पाप का विनाश करने वाले भगवान विष्णु शिव-रूप में भक्तों के द्वारा पूजित होते हैं । इस देव की पूजा का फल क्या मिलता है ? किस प्रकार विष्णु एवं शिव को एक मानकर आराधना करने पर श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति होती है ? उक्त विषयों पर कृपया आप प्रकाश डालने का अनुग्रह करें ।[2]

---

1. नारद पुराण, 6, 44-45.

2. "देवदेवो जगन्नाथः प्रणतार्तिप्रणाशनः ।
   शिवमूर्ति प्रसन्नात्मा लोके प्रत्यक्षतां गतः ।।

   कथं शंभुरिति ख्यातः पूज्यते विधिवद्द्विजैः ।
   कथं ददाति भक्तानां प्रसन्नात्मा वरं परम् ।।

   तस्य देवस्य पूजायाः फलं किं केन पूजितः ।
   कः प्राप्नोति शुभाल्लोकानेतान्सर्वान्वदस्व मे।।

   तस्मात्त्वां प्रार्थयाम्यद्य पातुं धर्मामृत प्रभो ।"

   हरिवंश, जिल्द 2, परिशिष्ट 2, पृष्ठ 88, श्लोक 5580-85.

युधिष्ठिर के इस प्रश्न के उत्तर में भीष्म व्यक्त करते हैं कि हे पार्थ ! शिव (भूतनाथ) आद्यन्त जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कारण हैं तथा वे ही विष्णु, कुबेर, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वरुण, वायु एवं सूर्य आदि देवताओं के 'समन्वय' के कारण देवेश और सर्वेश हैं । यहाँ पर हरि एवं हर में अभेद स्थापित करते हुए समस्त देवों में आस्था प्रकट की गई है ।[1] पुनः युधिष्ठिर भीष्म से पूछते हैं कि शिव के भक्तों को विष्णुलोक की प्राप्ति कैसे होती है ? मेरे इस संशय का आप कृपया सम्पूर्ण रूप में निवारण करने का कष्ट करें ।[2]

---

1. "अहो वक्ष्यामि ते पार्थ भूतनाथस्य वैभवम् ।
   यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

   आद्यन्तशून्यो देवेशः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
   ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुः कुबेरः देवराट् प्रभुः ।
   इन्द्रोऽग्निर्यमईशो निऋतिर्वरुणः प्रभुः ।
   वायुः सूर्यः सहस्त्राक्षः सर्वेशो भूर्भुवः स्वः ।।

   कालरूपस्य धर्मस्य लोकनाथस्य धर्मज: ।
   नाहं वक्तुमशक्तोऽस्मि तत्स्वभावमशेषतः ।।"

   हरिवंश, जिल्द 2, परिशिष्ट 2, श्लोक 5590.

2. "तेषामीश्वरभक्तानां विष्णुलोकः कथं भवेत् ।
   एतन्मे संशयं तात छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।।"

   हरिवंश, पूर्वोक्त, श्लोक 5595.

इस प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर भीष्म से कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश में किसी रूप में भी भेद नहीं है । वे ही समस्त लोकों की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण हैं - हे भरतवंशी युधिष्ठिर ! आपने पहले ही देखा होगा कि लोकनाथ कृष्ण ने पुत्रलाभ के लिए कैलास-यात्रा की थी, जो शंकर का निवास है । वहाँ पर उन्होंने उमापति भूतनाथ की चिरकाल तक आराधना करके मनोवांछित पुत्र प्राप्त किया था । अतएव शंकर एवं विष्णु में कोई भी भेद नहीं है ।[1]

इसी प्रकार शंकर ने विष्णु की चिरकाल तक आराधना करके षन्मुख नामक पुत्र को प्राप्त किया, जो कि देवताओं के शत्रुओं का दमन करने वाले हैं । ब्रह्मा ने भी भक्तिपूर्वक विष्णु की आराधना करके समस्त लोकों एवं प्रजापतियों को उत्पन्न किय अतएव इन देवों में कोई भी भेद नहीं है ।[2] यहाँ पर न केवल हरिहराभेद, अपितु

---

1. "ब्रह्माविष्णुमहेशानां भेदः कुत्रापि न प्रभो ।
कर्त्तारो सद्य लोकानां सृष्टिस्थितिलयेष च ।।

त्वया दृष्टः पुरा कृष्णो लोकनाथो जगन्मयः।
कैलासयात्रामकरोत्पुत्रार्थे भरतर्षभ ।।

तत्राराध्य चिरं कालं भूतनाथमुमापतिम् ।
ईप्सितं प्राप्तवान्पुत्रं तस्माद्भेदो न विद्यते ।।"

हरिवंश, वही, पृष्ठ 885, श्लोक, 5600.

2. "शंकरो विष्णुमव्यक्तं चिरमाराध्य भक्तिमान् ।
षण्मुखं लभते पुत्रं देवतार्थमरिन्दमम् ।।

ब्रह्मा च जनयामास विष्णुमाराध्य भक्तितः ।
लोकान्प्रजापतीन्सर्वांस्तस्माद्भेदो न विद्यते ।।"

हरिवंश, वही, श्लोक 5605.

ब्रह्मा-विष्णु-अभेद की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है । इस ग्रन्थ में भीष्म युधिष्ठिर को कुछ ऐसे भक्तों का उदाहरण देते हैं जो वैष्णव होते हुए शिवार्चन करके नित्य ही भुक्ति एवं मुक्ति फलों की प्राप्ति कर सके थे । वे पुनः इस ग्रंथ में युधिष्ठिर को कहते हुए प्रदर्शित हैं - 'हे जनाधिप । हरि और शंकर में कोई भेद नहीं है । जो नारद द्वारा प्रभावित इस पुण्य आख्यान को जानता है, उसे इन दोनों देवों में किसी प्रकार की भेद-बुद्धि नहीं हो सकती ।[1]

'हरिहराभेद' की अवधारणा साम्प्रदायिक कटुता एवं भेद, जो ऐतिहासिक परिस्थितियों में समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहे थे, समाप्त कर धार्मिक समझौता एवं साम्प्रदायिक ऐक्य के सृजन का परिणाम थी । साम्प्रदायिक द्वेष का प्रतिबिम्ब शरभेश-परम्परा एवं नृसिंह-परम्परा में परिलक्षित है । ये परम्पराएं वैष्णव एवं शैव धर्मों के पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता के परिचायक हैं । शरभेश-प्रतिमाओं में शिव ने शरभेश का रूप धारण करके (विष्णु-अवतार) नृसिंह का संहार किया था । इस कोटि की प्रतिमाओं में शरभरूपधारी शिव (मनुष्य, पक्षी एवं सिंह का मिश्रित रूप धारण करके) अपने तीक्ष्ण नाखूनों से नृसिंह को विदीर्ण करते हुए प्रदर्शित किये

---

1. "तस्माच्छिवार्चनं नित्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
   हरिशंकरयोर्भेदं नास्ति नास्ति जनाधिप ।।

   य इदं पुण्यमाख्यानं नारदेन प्रभाषितम् ।
   शृणुयात्तस्य वै नैको भेदबुद्धिर्न जायते ।।"

   हरिवंश, जिल्द 2, परिशिष्ट 2, पृष्ठ 287,
   श्लोक 5695.

जाते थे ।[1] इन लक्षणों का शरभ-प्रतिमाओं में निरूपण मिलता है । शिल्पशास्त्रों में भी (उदाहरणार्थ, उत्तरकामिकागम) में शरभेश का निरूपण मिलता है । इसमें पक्षी-युक्त रक्त-नेत्रधारी सिंहपदाकार एवं कंधे के ऊपर नराकार शरभेश संसार के संहार के लिए उद्यत अपने जंघे पर नृसिंह को अपने तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण करते हुए वर्णित हैं । इसी तरह नृसिंह द्वारा हिरण्यकश्यपु-वध में दोनों ही धर्मावलम्बियों की धर्मान्धता परिलक्षित होती है ।[2] इन दोनों ही परम्पराओं में पूर्वकालों से विद्यमान धार्मिक भेदभाव का इंगन प्राप्य है । 'हरिहराभेद' वस्तुतः इस कोटि के घातक सामाजिक एवं धार्मिक दोषों का उन्मूलन था, जो कि 'बहुजन-हिताय' आवश्यक था ।

---

1. बनर्जी जे०एन०, डे०हि०आ०, पृष्ठ 5.

2. "शरभेशप्रतिष्ठा तु वक्ष्ये लक्षणपूर्विकाम् ।
   पक्ष्याकारं सुवर्णाभं पक्षद्वयसमन्वितम् ।।

   ऊर्ध्वपक्षसमायुक्तं रक्तनेत्रद्वयान्वितम् ।
   पादैस्सिंहपदाकारैश्चतुर्भिश्च समन्वितम् ।।

   सुतीक्ष्णनखसंयुक्तैस्त्वूर्ध्वस्थैर्वेदपादकैः ।
   दिव्यलांगूलसंयुक्तं सुविकीर्णजटान्विम् ।।

   कन्धरोर्ध्वनराकारं दिव्यमौलिसमाकुलम् ।
   सिंहास्यं भीमदंष्ट्रं च भीमविक्रमसंयुतम् ।।

   हरन्तं नरसिंहं तु जगत्संहरणोद्धृतम् ।
   कृतांजलिपुटोपेतं निश्चेष्टितमहातनुम् ।।

   नरदेहं तदूर्ध्वास्यं विष्णुं पद्मदलेक्षणम् ।
   पादाभ्यामम्बरस्थाभ्यां कुक्षिस्थाभ्यां च तस्यतु ।
   गगनाभिमुखं देवं कारयेच्छरभेश्वरम् ।।"

   उत्तरकामिकागम; राव गो०ना०, ए०हि०आ०,
   परिशिष्ट अ, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 90.

जहाँ तक हरिहर-मूर्ति विधान का प्रश्न है, इसका उद्गम कुषाणकाल के पूर्व नहीं हो सका था । हरिहर के प्रतिमालक्षण का एक प्रसिद्ध उदाहरण कुषाण-सम्राट् हुविष्क की एक स्वर्ण-मुद्रा के पृष्ठ-तल पर अंकित मिलता है, जिसमें विष्णु एवं शिव के आयुध-लक्षण ( चक्र एवं त्रिशूल ) भी द्रष्टव्य है ।[1] गिरिधरपुर टीला (मथुरा के समीपस्थ-स्थल) से दो कुषाणकालीन प्रस्तरशीर्ष उपलब्ध हैं, जिसमें शिवार्द्ध में जटामुकुट एवं विष्णवर्द्ध में किरीटमुकुट प्राप्य हैं । ये मूर्तियाँ इस समय मथुरा-संग्रहालय में सुरक्षित हैं । यद्यपि हरिहर-मूर्तियों का निर्माण कुषाण-काल में प्रारम्भ हुआ, परन्तु उनकी तत्कालीन प्राप्त संख्या अत्यल्प है । वस्तुतः हरि-हर-स्वरूप की निर्माण-परम्परा गुप्तकाल से अधिक लोकप्रिय हुई जिसका परिचय गुप्तकालीन प्रतिमाओं एवं पुराणों द्वारा प्राप्त होता है ।

गुप्तकाल में हरिहर-पूजा की लोकप्रियता के कारणों में धर्म-समन्वय की भावना, पारस्परिक सद्भाव एवं साम्प्रदायिक कटुता, कट्टरता एवं धर्मान्धता के उन्मूलन के अतिरिक्त गुप्त-सम्राटों की धर्म-सहिष्णु नीति भी उल्लेखनीय है, जिसकी ओर संकेत चीनी पर्यटक फाहियान ने अपने पर्यटन-वृत्तान्त में किया है । गुप्त-सम्राट् स्वयं तो वैष्णव मतावलम्बी थे, परन्तु उन्होंने शैवों को सेनापति एवं मंत्री के रूप में नियुक्त किया था । उनकी मुद्राओं के ऊपर वैष्णव धर्म के प्रतीक ( शंख, चक्र, पद्म एवं गरुड ) अंकित हैं । वे परमभागवत थे । समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति के अनुसार उसकी राजाज्ञाएँ गरुड-मुद्रा से अंकित हुआ करती थीं ( गरुत्मदंक )।

---

1. सत्यश्रवा 'दी कुषाण न्यूमिस्मेटिक्स' पृष्ठ 128.
   (भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहीत हुविष्क-मुद्रा के पृष्ठतल पर हरिहर की आकृति मिलती है ।)

परन्तु उसने हरिषेण को अपना कुमारामात्य, महादण्डनायक एवं सान्धिविग्रहिक नियुक्त किया था । हरिषेण शैव मतावलम्बी एवं प्रयाग की प्रशस्ति का रचयिता था । इस प्रशस्ति में उसने पशुपति की आराधना की है ।

इसी प्रकार परमभागवत चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' ने शैव वीरसेन को अपना सान्धिविग्रहिक नियुक्त किया था, जिसने उदयगिरि-प्रशस्ति के अनुसार शैवों के निवास के निमित्त विदिशा के समीपस्थ उदयगिरि की पहाड़ी में एक गुहा-मंदिर का निर्माण कराया था ।[1] इसी प्रकार महाराजाधिराज कुमारगुप्त 'महेन्द्रादित्य' स्वयं तो वैष्णव थे, परन्तु करमदण्डा (फैजाबाद जनपद) के अनुसार उसका मंत्री पृथ्वीषेण शैव था । इस लेख के अनुसार उसने वहाँ एक शिवलिंग की स्थापना की थी ।[2]

उपर्युक्त के अतिरिक्त हरिहराभेद एवं हरिहर-पूजा की लोकप्रियता की अभिवृद्धि में पुराणों की भूमिका भी परम श्लाघनीय थी । गुप्तकालीन विष्णु पुराण में विष्णु एवं शिव की अभिन्नता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहा गया कि 'हे शंकर ! आप अपने को मुझसे विभिन्न मत माने । देव, असुर एवं मनुष्यों-सहित यह जगत् मैं ही हूँ और जो मैं हूँ वे ही आप भी हैं । लोग अज्ञान

---

1. 'भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतामकारयत्'
   सरकार दि०च०, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, जिल्द 1, पृष्ठ 272.

2. सरकार दि०च०, पूर्वोक्त, पृष्ठ 283.

से वशीभूत होकर मुझमें और आपमें भेद स्थापित करते हैं ।[1] इस कथन में वैष्णवों एवं शैवों की धार्मिक सद्भावना का प्रतिबिम्ब मिलता है ।

शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों की एकात्मकता के प्रतीक हरिहर-मूर्ति की इस अवधारणा की ओर संकेत एक बहुप्रचलित श्लोक में प्राप्य है, जिसके अनुसार विष्णु एवं शिव — दोनों की ही प्रकृति एक सी है । केवल प्रत्यय-भेद के कारण भ्रमित मस्तिष्क वाले व्यक्ति एक को दूसरे से विभिन्न मानते हैं । अज्ञान के कारण ही मूढ़ हरि एवं हर में भेद मानकर पारस्परिक स्पर्धा करते हैं ।[2] इसी तथ्य को कालान्तर में नारद पुराण में हरि को हर एवं हर को हरि की मान्यता देकर प्रतिपादित किया गया है । इस सम्बन्ध में इस पुराण में एक बड़ा ही रोचक विवरण मिलता है, जिसमें कहा गया कि महादेव हरिरूपी हैं और जनार्दन शिवरूपी हैं । अतएव लोकनेता एवं जगत्-गुरु हरिहर को नमस्कार सर्वथा श्रेयस्कर एवं मंगल-कारी है ।[3] इसी आशय को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करते हुए नारद पुराण में कहा

---

1. "मत्तो विभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर ।
   योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।।
   अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।।"

   विष्णु पुराण, 5, 33, 47-48.

2. "उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवद्भाति ।
   कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम् ।।"

   श्रीवास्तव, बलराम, रूपमण्डन, पृष्ठ 64.

3. "हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः ।
   लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम् ।।"

   नारद पुराण, अध्याय ।।, श्लोक 30.

गया कि लिंग ( शिव ) हरि-रूपधारी हैं और हरि लिंग ( शिव )-रूप-धारी हैं। अतएव बुद्धिमान लोगों को इन दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं करना चाहिए। इस हरिशंकर-संज्ञित देवता को अनादि काल तक स्थायी मानना चाहिए। जो पापी इस देव में भेद मानते हैं, वे वस्तुतः अज्ञान के सागर में मग्न हैं।

हरिहर-प्रतिमा के उद्भव के सम्बन्ध में पुराणों में एक आख्यानात्मक विवरण मिलता है, जिसमें इसकी व्युत्पत्ति के ऐतिहासिक तथ्यों का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है। पुराणों में परम्परा मिलती है कि देवों और असुरों में अमृत-वितरण के लिए विष्णु ने मोहिनी-रूप धारण किया। समुद्र-मंथन-सम्बन्धी इस कथा के अनुसार विष्णु द्वारा धारण किये गये मोहिनी-रूप पर मोहित होकर शिव विष्णु से प्रेम करने लगे और विष्णु के सामीप्य की इच्छा से उनसे संयुक्त हो गये।[2] हरि-हर-स्वरूप में, इसीलिए, विष्णु वामार्द्ध और शिव दक्षिणार्द्ध-रूप में प्रदर्शित होने

---

1. "हरिरूपधरं लिंगं लिंगरूपधरो हरिः।
   ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृच्यानयोर्बुधः।।

   अनादिनिधने देवे हरिशंकरसंज्ञिते।
   अज्ञानसागरे मग्नं, भेदं कुर्वन्ति पापिनः।।"

   नारद पुराण, 6, 44-45.

2. भागवत पुराण, 8.13.14-37.

लगे । यहाँ इस कोटि की प्रतिमा में उमा का स्थान विष्णु लेते हैं और यही कारण है कि उनका मूर्त्तन शिव के वामांग में होता है । इसीलिए उत्तरकामिकागम में हरिहर को हर्यर्द्ध कहते हुए उनको अर्द्धनारीश्वर कहा गया ।[1] वायु पुराण में हरिहर-स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया कि सर्वप्रथम बीज-रूप में आदिसर्गिक लिंग का निर्माण हुआ, जो कालान्तर में विष्णु-रूपी योनि से संयुक्त होकर सृष्टि की उत्पत्ति का कारण सिद्ध हुआ ।[2] पद्म पुराण में शिवलिंग को ब्रह्मा और योनि को जनार्दन कहा गया, जो सृष्टि-रचना का कारण माना गया ।[3]

हरिहर-सम्प्रदाय के विकास-स्वरूप हरिहर-प्रतिमा के उदाहरण गुप्तकाल से उपलब्ध होने लगते हैं । हरिहर-प्रतिमा लक्षणों का विवरण देते हुए विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में कहा गया कि इस कोटि के मूर्त्तन के दक्षिणार्द्ध में सदाशिव और वामार्द्ध में हृषीकेश का क्रमानुसार निर्माण करना चाहिए । इसमें शिव की बाहों को त्रिशूल और विष्णु की बाहों को चक्र और पद्म धारण किए हुए दिखाया जाय । दक्षिण में शिव के वाहन नन्दी

---

1. "अर्द्धनारीश्वरो ह्येवं हर्यर्द्धं श्रृणुत द्विजाः ।"
   उत्तरकामिकागम;
   राव गोपीनाथ, ए०हि०आ०, जिल्द 2, पृष्ठ 168, परिशिष्ट 'अ'

2. वायु पुराण, 224, 72-74.

3. पद्म पुराण, 17, 63.

दिखाए जायँ और बायें भाग में गरुड अंकित किए जायँ ।[1] यही कारण है कि गुप्तकालीन हरिहर-प्रतिमाओं में विष्णु एवं शिव इसी प्रकार अपने-अपने आयुधों और वाहनों से संयुक्त दिखाये गये । उदाहरणार्थ, विदिशा से मिली हरिहर-मूर्ति के दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में चक्र अंकित हैं ।

जो अन्य गुप्तकालीन ग्रंथ हरिहर-प्रतिमा के लक्षणों का विवरण देते हैं, उनमें बृहत्संहिता एवं मत्स्य पुराण उल्लेखनीय हैं । बृहत्संहिता में हरिहर के उपर्युक्त स्वरूप का उल्लेख हुआ है । मत्स्य पुराण में हरिहर ( शिवनारायण )के स्वरूप-लक्षणों का विवरण देते हुए चतुर्भुजी मूर्ति के निर्माण का विधान मिलता है, जिनके दक्षिणी करों में एक वरद मुद्रा में और दूसरा त्रिशूलयुक्त होना चाहिए तथा बाएँ हाथ में या तो शंख और चक्र वर्तमान होना चाहिए अथवा एक हाथ कटक-मुद्रा में और दूसरा गदायुक्त होना चाहिए । दक्षिणार्द्ध में हर यानी शिव तथा वामार्द्ध में हरि अर्थात् विष्णु के प्रदर्शन का विधान मिलता है । शिवभाग चन्द्रांकित, जटामुकुट, सर्पहार, वलय, नागयज्ञोपवीत और पैरों में नाग के आभूषणों से युक्त होना चाहिए । वामार्द्ध विष्णु-भाग श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, सौम्यदर्शन, रत्न और मणियों से विभूषित होना चाहिए ।[2]

---

1. "कार्यं हरिहरस्यापि दक्षिणार्द्धं सदाशिवः ।
   वाममर्द्धं हृषीकेशश्वेतनीलाकृतिः क्रमात् ।।
   वरत्रिशूलचक्राब्जधारिणो बाहवः क्रमात् ।
   दक्षिणे वृषभः पार्श्वे वामभागे विहंगराट् ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर, राव गोपीनाथ, जिल्द 2,
   भाग 2, पृष्ठ 171, परिशिष्ट 'अ'

2. मत्स्य पुराण, 250, 21-27.

गोपीनाथ राव हरिहर (हर्यर्द्ध) की प्रतिमा का विवरण देते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं कि दक्षिणार्द्ध (शिव-भाग) का वर्णन वैसे ही मिलता है जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वर का। उनके अनुसार संस्कृत ग्रंथों में विधान मिलता है कि हर्यर्द्ध में दो बाहें दिखाई जायँ, जिनमें से एक हाथ शंख, चक्र अथवा गदा धारण किए हों और दूसरा जंघे के समीप कटक-मुद्रा में होना चाहिए। मस्तक के वैष्णव भाग में प्रशस्त मणियों से जटित किरीट तथा बाएँ कान में मकर-कुण्डल प्रदर्शित हों। बाहों में केयूर, कंकण एवं अन्य आभूषण विद्यमान हों। दक्षिणार्द्ध अर्थात् शिवभाग के दाहिने पैर में सर्पनूपुर, हिमतुल्य श्वेतवर्ण, किन्तु वैष्णवभाग के बाएँ पैर में बहुमूल्य रत्नजटित आभूषण तथा नीलवर्ण प्रदर्शित होना चाहिए। वैष्णवार्द्ध पीताम्बरधारी होगा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हरिहर के दोनों पैर सीधे हों। उनमें कोई मोड़ नहीं होना चाहिए। दाहिना पैर रौद्रात्मक तथा वाम पद प्रशान्त मुद्रा में अंकित हों। शिवार्द्ध में ललाट पर शंकर का तृतीय नेत्र अर्द्धोन्मीलित होना चाहिए। मस्तक के पृष्ठ तल में शिरश्चक्र (प्रभामण्डल) वर्तमान होना चाहिए। दक्षिणार्द्ध में शिव का वाहन नन्दी और वामार्द्ध में विष्णु का वाहन गरुड़ होना चाहिए।[1]

हर्यर्द्ध-प्रतिमा का एक प्रतिनिधि-उदाहरण बादामी के एक शिला-फलक पर उत्कीर्ण मिलता है, जिसमें केन्द्रीय रूप हरिहर का परिचायक है। इस उच्चित्रण में शिवार्द्ध के मस्तक भाग पर जटामुकुट और विष्णवर्द्ध-भाग में किरीट उच्चित्रण में मुकुट स्पष्ट परिलक्षित होता है। वामार्द्ध कर्ण मकरकुण्डल तथा दक्षिणार्द्ध सर्पकुण्डल से विभूषित है। दक्षिणोर्द्ध हाथ में परशु अंकित है, जिस पर सर्पकुण्डल द्रष्टव्य है, तथा वामोर्द्ध में शंख सुशोभित है। सामने का दाहिना हाथ खण्डित है। गोपीनाथ राव का अनुमान है कि यह अभयमुद्रा में सुशोभित रहा होगा। समकक्ष

---

1. राव गोपीनाथ, भाग 2, खण्ड 1, ए०हि०आ०,
   पृष्ठ 334-335ण भगवंत सहाय, पूर्वनिर्दिष्ट, पृष्ठ 135.

वामार्द्ध जानु पर अवलम्बित है । मस्तक के पृष्ठ तल में शिरश्चक्र द्रष्टव्य है । उनके दोनों पार्श्वों में क्रमानुसार स्पष्टतः पार्वती एवं लक्ष्मी हैं, जो शिव एवं विष्णु की भार्याएँ हैं । दक्षिणार्द्ध में पार्वती एवं शिव के मध्य वृषभमुख नन्दी तथा वामार्द्ध में लक्ष्मी एवं विष्णु के बीच एक वामाकार गरुड अंकित है, जो कि इन दोनों देवताओं के वाहन हैं । शिलाफलक के अधोभाग में वादन एवं नृत्य करते गणों की आकृतियाँ हैं तथा ऊपरी भाग में उड़ते मालाधारी विद्याधरों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं । हाल ही में डॉ० भगवंत सहाय ने नालन्दा से प्राप्त एक गुप्तकालीन मुद्रा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है, जिसमें कि हरिहर-मूर्ति का अंकन उपलब्ध होता है । इस मूर्तन में शिवार्द्ध हाथ में त्रिशूल तथा विष्णवर्द्ध में चक्र अंकित हैं ।[1]

परवर्ती गुप्तकाल की एक हरिहर-प्रतिमा इलाहाबाद-संग्रहालय में प्रदर्शित है (सं०सं०-292) । एक चतुर्मुखी शिलास्तम्भ के निचले भाग में वराह, विष्णु और वामन के अतिरिक्त एक और हरिहराकृति भी अंकित है । यद्यपि यह मूर्ति समय की गति में कुछ अस्पष्ट हो चुकी है तथापि शिवार्द्ध में जटाभार एवं कौपीन वस्त्र सुशोभित है तथा वैष्णव भाग में किरीटमुकुट एवं पीताम्बर शोभायमान हैं । ये लक्षण इसे हरिहर का उदाहरण व्यक्त करते हैं । शिव के एक हाथ में त्रिशूल तथा दूसरा हाथ सम्भवतः अभय अथवा वरद् मुद्रा से युक्त था । विष्णु के एक हाथ में चक्र तथा दूसरे हाथ में सम्भवतः शंख एवं गदा सुशोभित हैं । इस उच्चित्रण की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि त्रिशूल एवं चक्र आयुधों का आयुध-पुरुषों के रूप में अंकन मिलता है ।[2] एक अन्य गुप्तकालीन कहीं अधिक सुन्दर

---

1. मे०आ०स०इ०-66, फलक 3; डॉ० भगवन्त सहाय, आ०मा०हि०बु०डी०, पृष्ठ 136.

2. प्रमोद चन्द्र, स्टोन स्कल्पचर्स इन दी इलाहाबाद, म्यूजियम, अ०ई०ई०, स्ट०, रामनगर, वाराणसी, 1965, पृष्ठ 90-91, फलक 68, चित्र 203ए ।

हरिहर-मूर्ति पटना-संग्रहालय में प्रदर्शित है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान डॉ० कल्पना देसाई ने आकृष्ट किया है । इस उदाहरण में भी शिल्प-परम्परा के अनुसार हर दक्षिणार्द्ध एवं हरि वामार्द्ध में हैं । हर त्रिशूल एवं अक्षमाल धारण करते अंकित हैं । इसी ओर एक त्रिशूल-पुरुष भी आकारित है, जिसके मस्तक पर शिव के त्रिशूल का निचला भाग अवलम्बित है । विष्णु अपनी निचली बाँह में एक शंख धारण करते प्रदर्शित हैं । इनकी ऊपरी बाँह चक्र-पुरुष के सिर पर अवलम्बित है।[1]

गुप्तकाल के उपरान्त हरिहर मूर्तियों का निर्माण अत्यंत लोकप्रिय हो गया । अधिकतर इस समय से आरम्भ होने वाले काल को ( 700-1200 ई० ) को विद्वानों ने 'मध्यकाल' अथवा 'पूर्वमध्यकाल' की संज्ञा दी है, परन्तु भारतीय शिल्प के इतिहास में इस काल को 'मध्यकालीन कला' अथवा 'पूर्वमध्यकालीन कला' कहना उचित न हो गा । बेन्जामिन रोलैण्ड ने अभिमत व्यक्त किया है कि गुप्तोत्तरकला के लिए बहुमत से लोग मध्यकालीन शब्द प्रयुक्त करते हैं, जो न केवल भ्रामक है, अपितु, दुर्भाग्यपूर्ण भी है । इसके दो परिणाम होते हैं । एक तो इस काल की कला पाश्चात्य देशीय मध्यकला से तुलना की अपेक्षा करती है और दूसरा यह कि मध्यकालीन कला कहना मात्र ही दो कला-अवस्थाओं की मध्य-स्थिति का उद्बोधन कराता है । दोनों ही दृष्टियों से गुप्तोत्तर कला को मध्यकालीन कहना ठीक नहीं है । न तो यह कला मध्यकालीन पाश्चात्य कलाओं से तुलनीय है और न ही यह भारतीय मूर्तिकला के विकास की मध्यावस्था का परिचायक है । यह तो गुप्तकला का ही क्रमिक विकास है । गुप्तोत्तर मूर्ति-कला का विकास वस्तुतः सातवीं शती से लेकर पंदरहवीं-सोलहवीं शती तक मूर्ति-कला के विकास का एक स्वाभाविक क्रम है । अतएव 'मध्यकालीन मूर्तिकला'

---

1. देसाई, कल्पना, आइकनोग्रैफी ऑफ विष्णु, पृष्ठ 53.

भारतीय मूर्तिकला की कोई अवस्था नहीं कही जा सकती ।[1] इस काल की कला में गुप्तकालीन उत्कृष्ट परम्पराओं का निर्वाह मात्र ही नहीं प्राप्य है, अपितु नूतन उद्भावनाओं और प्रयोगों के दृष्टांत भी देखे जा सकते हैं जो कि हरिहर-सम्प्रदाय के विषय में भी लागू होता है ।

इस समय तत्कालीन हरिहर-पूजा के विकास के कारणों में स्मार्तों के द्वारा प्रतिपादित पंचायतन-पूजा ( जिसमें कि पंचदेव की पूजा का विधान मिलता है - विष्णु, शिव, सूर्य, देवी और गणेश ), भारतीय वर्ण-व्यवस्था में समाहित होने वाले शक, पह्लव, कुषाण एवं हूणों द्वारा सभी हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति समान श्रद्धा, सतत् बाह्य आक्रमणों के फलस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा का जटिल प्रश्न एंव शंकर का अद्वैत दर्शन आदि तथ्य उल्लेखनीय हो जाते हैं । फलत: भारत के दोनों ही प्रमुख सम्प्रदायों ( वैष्णव एवं शैव धर्मावलम्बियों ) ने पारस्परिक सद्भावना को विकसित किया, जिसके परिणाम-स्वरूप हरिहर-सम्प्रदाय अधिक विकसित होने लगा । इस तथ्य के प्रमाण मूर्तिशिल्प एवं तत्कालीन साहित्य में प्रचुर रूप में उपलब्ध होते हैं ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि बृहदन्नारदीय पुराण उत्तम भागवत की परिभाषा देते हुए हरिहर-सम्प्रदाय का वैष्णवों एवं शैवों द्वारा अवलम्बन की उत्तरोत्तर विकसित प्रवृत्ति की अभिव्यंजना करता है । इसके अनुसार वास्तविक भागवत

---

1. दी आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया, पृष्ठ 153;
   श्रीवास्तव, बलराम, रूपमण्डन, भूमिका पृष्ठ 7-8.

उन्हीं आराधकों को माना जा सकता है, जो शिव एवं विष्णु में समबुद्धि से अपनी आस्था रखते हैं ।[1] इस पुराण के अनुसार श्रेष्ठ भागवत-मतावलम्बी वे भक्त हैं जो निरंतर शिव के ध्यान में रत, पंचाक्षर जप 'नमः शिवाय' में रत तथा कर्मकांडों में संलग्न तथा साथ ही साथ वैष्णव एकादशी व्रत में आस्थावान एवं वैष्णव रीतियों के अनुसार कन्यादान, गोदान, कूपदान, अन्नदान आदि में प्रवृत्त हैं ।[2] इस

---

1. "शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
   समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ।।"

   बृहद्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 57.

2. "शिवाग्निकार्य्यनिरताः पंचाक्षरजपे रताः ।
   शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।।

   पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा ।
   एकादशीव्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः ।।

   गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।
   मदर्थं कर्म्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।।

   एते भागवता विप्रा केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
   मयापि गदितं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ।।"

   बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 58-61.

पुराण में शिव को 'नारायण शिवात्मक देव' की संज्ञा दी गई है । इसके अनुसार अनुसार वही ब्राह्मण वन्दनीय है, जो शिव एवं विष्णु में कोई अंतर नहीं देखता (अभेददर्शी) ।[1] इस पुराण के अनुसार शिव हरिरूप है तथा हरि हररूप हैं तथा दोनों में किंचिदपि अन्तर नहीं है (ईषदप्यन्तरं नास्ति) । हरिहर-भेद करने वाले आराधक को धिक्कारता हुआ यह पुराण उसे पाप का भागी बताता है (भेदं कृत्वापमश्नुते) ।[2] हरिहर अनश्वर हैं, संसार के स्वामी हैं और कारणों के भी कारण हैं तथा युग के अंत में रुद्ररूप-धारण करके इसका विनाश करते हैं । रुद्र विष्णु-रूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं ।[3] हरिहरपूजा की महत्ता को अधिकाधिक प्रतिपादित करते हुए यह पुराण कहता है कि, 'हे राजन् ! जो समान बुद्धि से हर (शिव) एवं हरि (विष्णु) की पूजा करता है, वही

---

1. "अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके ।
   स वन्द्यो ब्राह्मणो नित्यमस्माभिः किमु सत्तमः ।।"

   बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 63.

2. बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 41.

3. "यो देवो जगतामीशः कारणानां च कारणम् ।।
   युगान्ते जगदत्येतद्रुद्ररूपधरोऽव्ययः ।
   रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलं जगत् ।।"

   बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 43.

व्यक्ति श्रेय का भागी होता है, परन्तु इसके प्रतिकूल दोनों देवताओं में जो व्यक्ति भेद करता है, वह अनन्त काल के लिए ब्रह्महत्या-रूपी पाप का भागी होता है। शिव ही स्वयं विष्णु हैं और हरि साक्षात् शिव हैं। दोनों ही देवताओं में अन्तर करने वाला व्यक्ति कोटि-कोटि वर्षों तक नरकों का भागी होता है।[1]

अब यहाँ हमारे समक्ष एक मौलिक समस्या उपस्थित होती है। अष्टादश पुराण, यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों के समर्थक एवं प्रचारक हैं। उदाहरणार्थ, यदि विष्णु, वामन, गरूड एवं भागवत पुराण एक ओर वैष्णव पुराण हैं और वे वैष्णव मतावलम्बन को गरिमा प्रदान करते हैं, तो दूसरी ओर शिव पुराण शिव को सर्वश्रेष्ठ देव मानकर शैव मत को सर्वथा लौकिक एवं आध्यात्मिक फलों का दायक प्रतिपादित करता है। इसी प्रकार कालिका-पुराण एवं देवी-पुराण शाक्त मत के प्रतिपादक हैं। परन्तु इसके प्रतिकूल पुराण-साहित्य में हमें विभिन्न देवों में ऐक्य को मंगलकारी तथा साम्प्रदायिक भेद-भाव को पाप मान कर धर्मसमन्वय के सिद्धान्त एवं देवी-देवताओं के युग्म-रूप के समर्थन की प्रवृत्तियों का प्रबल उन्नयन प्राप्त होने लगता है। वे ही पुराण साम्प्रदायिक

---

1. "पूजयस्व हरं विष्णुमेकबुद्ध्या महीपते।
भेदकृद्ब्रह्महत्यानामयुतायुतदुष्कृतम् ।।

शिव एव हरिः साक्षाद् हरिरेव शिवः स्वयम्।
तयोरन्तरकृद्याति नरकान् कोटिकोटिशः ।।"

बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 5, श्लोक 213-214.

प्रतिद्वन्दिता को समाप्त कर धार्मिक समझौते एवं सद्भावना की अवधारणा को लेकर सामने आते हैं । इसके कारण स्पष्ट हैं । एक समय ऐसा आया, जबकि धार्मिक कटुता की निस्सारता स्पष्ट होने लगी और धार्मिक सद्भावना का महत्व तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में सामाजिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार कर लिया गया । फलतः पुराण-साहित्य में धर्मसमन्वय की भावना का प्रतिपादन मिलने लगता है । डॉ० हाजरा[1] का अभिमत है कि पुराणों के वे स्थल जिनमें धर्म-समन्वयवादिता का प्रतिबिम्ब मिलने लगता है, वे वस्तुतः प्रक्षेप हैं और बाद में जोड़े गये हैं । दूसरे शब्दों में कालान्तर में पुराणों के संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण प्रस्तुत हुए जिनमें इस प्रकार के स्थलों को पौराणिक कलेवर में संयुक्त कर दिया गया । इस प्रकार इन प्रक्षिप्त स्थलों का काल गुप्तोत्तर-काल प्रतीत होता है जिसमें सातवीं शताब्दी से धर्मसमन्वय की प्रवृत्तियाँ प्रबल होने लगीं ।

जनमानस में इस प्रवृत्ति के विकास के कारण हरिहर-मंदिर एवं प्रतिमाएं उत्तरी भारत में बनने लगीं । यह विशेषता दक्षिणी भारत के शिल्प-विधान में भी प्रचुर रूप में देखी जा सकती हैं । फलतः गुप्तोत्तरकालीन शिल्प-शास्त्रों एवं कुछ तकनीकी ग्रंथों में समन्वयपरक मूर्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में नियम एवं विधान मिलने लगते हैं । इस कोटि के प्रसिद्ध ग्रंथों में अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन, देवतामूर्त्तिप्रकरण, मानसोल्लास, मयमतम् एवं शिल्परत्न आदि उल्लेखनीय हैं । यहाँ ध्यातव्य है कि इनमें से कुछ दक्षिण भारत के शिल्पशास्त्र हैं । तथापि विवेच्य विषय के प्रसंग में इनके उल्लेख प्रासंगिक हो जाते हैं । शिल्पशास्त्रों के अतिरिक्त पुराण, संहिता एवं आगम साहित्य उल्लेखनीय हैं । इनकी सूची में अग्नि पुराण,

---

1. हाज़रा आर०सी०, स्टडीज़ इन दी उपपुराणाज, जिल्द-1, पृष्ठ 322.

हयशीर्षसंहिता, अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, पूर्वकारणागम, सुप्रभेदागम एवं काश्यपशिल्पम् उल्लेखनीय हैं। इस प्रसंग में नीहाररंजन रे का अभिमत है कि मूर्तिविधान-सम्बन्धी इन शास्त्रों ने गुप्तोत्तरकालीन शिल्पियों की प्रतिभा को यांत्रिक कर दिया। फलतः इस समय कलाकारों की सौन्दर्यभावना की उन्मुक्त व्यंजना न हो सकी। अतएव इस युग की मूर्तियाँ 'अच्छी भले हों पर महान् नहीं कही जा सकतीं'।[1] अनुभूति और कर्त्तव्य-प्रतिभा को मान्यताओं में जकड़ जाना पड़ा और प्रतिभा स्वयं में कोई स्वतंत्र सत्ता न रह कर उपासना के लिए यांत्रिक माध्यम बन गई। ऐसी स्थिति में प्रतिमा न तो कलाकार से ही अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकी, न ही उपासक से। न तो यह कलाकार की सौंदर्यभूति का बिम्ब रह सकी थी और न ही देवता का वास्तविक रूप ही। इसमें कलाकार की सौन्दर्य और आध्यात्मिक अनुभूतियों का समन्वय न हो सका था।[2] आनन्दकुमारस्वामी ने गुप्तोत्तरकालीन कला को यांत्रिक बतलाया, किन्तु उन्होंने इसके लिए शिल्पशास्त्रीय ग्रंथों को उत्तरदायी न बताकर इस यांत्रिकता को कला-विकास की अनिवार्य अवस्था कहा है।[3]

परन्तु इस सम्बन्ध में यह आरोप कि गुप्तोत्तरयुग की मूर्ति-कला यांत्रिक है, समीचीन नहीं कही जा सकती। स्वयं कुमारस्वामी ने ही इस बात को स्वीकार किया कि गुप्तकालीन मूर्तिकला उत्कर्षावस्था की मूर्तिकला है। वस्तुतः गुप्तोत्तरकला में पूर्वकालीन उत्कृष्ट परम्पराओं का निर्वाह मिलता है और प्रसंगतः नवीन प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन और प्रयोगों का समावेश प्राप्त होता है।

---

1. नीहाररंजन रे का मत, 'स्ट्रगल फॉर इम्पायर', पृष्ठ 643.

2. नीहाररंजन रे, वही, पृष्ठ 642.

3. आनन्दकुमार स्वामी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ऐण्ड इंडोनेशियन आर्ट, पृष्ठ 72.

कुमारस्वामी के ही अनुसार इस काल की कला मूर्तिकला के संक्रमण-युग का उद्बोधन करता है जिसमें कि गुप्तकाल की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापकता और सम्पन्नता दृष्टिगोचर होती है। कला-व्यंजना के निमित्त नवीन देवरूपों की अवधारणा की गई। फलतः इस परम्परा का सहारा लेकर प्रतिमा-लक्षण के नूतन सिद्धान्तों का उद्बोधन हुआ, जो हरिहर-प्रतिमा के लाक्षणिक विशिष्टताओं के प्रसंग में लागू होती है। इस कोटि की समन्वित प्रतिमाओं में हमें वस्तुतः नाटकीय शक्ति एवं स्वतंत्र गति मिलती है। इनमें महत्ता, विशालता और विराट् भाव अभिव्यंजित होता है। कलाकारों की नवीन सूझ-बूझ के कारण और सामाजिक विश्वासों के साँचे में इन समन्वित प्रतिमाओं में प्रकारान्तर एवं स्वरूपान्तर देखने को मिलते हैं, जो कि हरिहर-प्रतिमा के सम्बन्ध में चरितार्थ होता है। इस प्रकार ये प्रतिमाएँ यांत्रिक न होकर विविधता, नव अवधारणा एवं विचारस्वातंत्र्य का अभिव्यंजन करती हैं।[1]

हरिहर-मूर्तियों के स्वरूप-भेद एवं प्रकारान्तरों में उनकी द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं दशभुजी प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं, जिनके प्रमाण प्रतिमाशास्त्रीय ग्रंथों एवं पुरातत्वीय उदाहरणों में उपलब्ध होते हैं। उत्तरकामिकागम में हर्यर्द्धमूर्ति के विवरण के प्रसंग में उसे दो भुजाओं से युक्त (भुजद्वययुतं) कहा गया है।[2] सुप्रभेदागम में

---

1. गोपीनाथ राव, वही, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 169.

2. गोपीनाथ राव, वही, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 169.

हर्यर्द्ध की द्विभुजी प्रतिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि विष्णु पीताम्बरधारी, मुकुट पहने तथा शिव जटायुक्त एवं व्याघ्रचर्म पहने हुए हैं। हरि श्याम वर्ण एवं शिव अपने युक्तरूप में प्रदर्शित हों।[1]

रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण में हरिहर की चतुर्भुजी मूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शिव को सदा दाहिने एवं हृषीकेश को वामार्द्ध में बनाना चाहिए। उनका वर्ण क्रमानुसार श्वेत और नील होना चाहिए। उनके चारों हाथों में एक हाथ वरद मुद्रा में तथा शेष हाथों में त्रिशूल, चक्र और कमल होना चाहिए। उनके दाहिने पार्श्व में वृष और वाम पार्श्व में गरूड होना चाहिए।[2]

---

1. "पीताम्बरधरं विष्णुं व्याघ्रचर्माम्बरं हरम्।
   विष्णुं किरीटसंयुक्तं शंकरं तु जटान्वितम्॥

   श्यामवर्णं हरिं चैव शंकरं युक्तरूपिणम्।
   हरिरर्द्धमिदं प्रोक्तं भिक्षाटनमतः परम्॥"

   सुप्रभेदागम, गो० राव, ए०हि०आ०, भाग 2, जिल्द 2, पृष्ठ 169.

2. "कार्यो हरिहरस्यापि (हरिहरश्चापि) दक्षिणार्धे शिवः सदा॥

   हृषीकेशश्च वामार्धे श्वेतनीलाकृति क्रमात्।
   दक्षिणे वृषभः पार्श्वे वामे विहंगराडिति॥"

   रूपमण्डन, अध्याय 4, श्लोक 30-31, पृष्ठ 161
   (देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 56-57 में भी ये लक्षण प्राप्य है)

इन दोनों ही ग्रंथों का उपरोक्त वर्णन विष्णुधर्मोत्तर पुराण की परम्परा में आता है, जिसमें हरिहर की चतुर्भुजी प्रतिमा के निर्माण का विवरण देते हुए कहा गया कि इसमें दक्षिणार्द्ध सदाशिव एवं वामार्द्ध हृषीकेश का होना वांछनीय है तथा चारों हाथों में क्रमशः वरद मुद्रा, त्रिशूल, चक्र एवं पद्म के संकेत होने चाहिए। सदाशिव एवं हृषीकेश को क्रमशः श्वेत एवं नीलवर्ण होना चाहिए और मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में वृषभ एवं वाम पार्श्व में पक्षिराज गरुड की उपस्थिति प्रदर्शित की जायँ।[1]

चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा के लक्षणों का निर्देश, अग्निपुराण[2] एवं हयशीर्ष -

---

1. गो0 राव, पूर्वोक्त, जिल्द 2, खण्ड 2, पृष्ठ 169.

2. "नाभिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरेः शंकरको हरिः ।
   शूलष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरो परे ।।

   रुद्रकेशवलक्ष्मांगो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ।
   शंखचक्रगदावेदपाणिश्चशिरा हरिः ।।"

   अग्नि पुराण, 49, 25-26.

संहिता[1] में भी प्राप्य है। हयशीर्षसंहिता में हरिहर को हरिशंकर कहते हुए उनकी चतुर्भुज (चतुर्बाहु) मूर्ति को बनाने का विधान मिलता है। इसमें रुद्रार्द्धदेह के प्रसंग में उन्हें शूल और अष्ट श्र अपनी बाहों में धारण करने का उल्लेख मिलता है। जनार्दन-भाग में हाथों में गदा एवं चक्र धारण करने का निर्देश मिलता है। रुद्रार्द्ध भाग में जटाचन्द्र, रौद्रमुद्रा, नागकुण्डल, व्याघ्रचर्म-परिधान, नागरूपी यज्ञोपवीत तथा वैष्णव भाग में किरीटमुकुट तथा रत्नमण्डित कुण्डल धारण करने का निर्देश मिलता है। शिव-पार्श्व में गौरी एवं विष्णु-पार्श्व में लक्ष्मी का अंकन वांछनीय है। इन देवियों के उच्चित्रण का विवरण शिल्परत्न में भी प्राप्य है।

उपर्युक्त हरिहर-स्वरूप (एकमुखी एवं द्विभुज तथा पंचमुखी और चतुर्भुज) के अतिरिक्त एक अन्य परम्परा अपराजितपृच्छा में प्राप्त है, जिसके अनुसार, हरि-हर दशभुज एवं पंचमुख प्रदर्शित किये जायँ। उनका एक दायाँ हाथ वरदमुद्रा में और शेष दाहिने हाथ अंकुश, दंत एवं परशु युक्त हों। यहाँ पूर्व दाहिने हाथ का उल्लेख नहीं है तथा पाँचों बाएँ हाथ कपाल, शर, अक्षमाल, पाश एवं दंड से

---

1. "रुद्रार्द्धदेहं वा कुर्यात् चतुर्बाहुं जनार्दनम्।
   ईशानं दक्षिणे पार्श्वे कुर्याच्छूलाष्टधारिणम्॥

   गदाचक्रधरं चान्यं मुकुटेन विभूषितम्।
   जटाचन्द्रधरं रौद्रं वैष्णवं रत्नमण्डितम्॥

   कुण्डलोद्‌द्योतितं चैकं अपरं नागकुण्डलम्।
   व्याघ्रचर्मपरीधानं अपरं वस्त्रभूषितम्॥

   ब्रह्मसूत्रधरं चैकं अन्यन्नागोपवीतकम्।
   गौरी चैकेन पार्श्वेन लक्ष्मीश्चैकेन संस्थिता॥"

युक्त हों ।[1] यहाँ द्रष्टव्य है कि अपराजितपृच्छा में हरिहर को पंचमुखी और दश-भुजी मूर्ति का जो विवरण मिलता है, वह रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण तथा अन्य प्रतिमाशास्त्रीय ग्रंथों की एकमुखी और चतुर्भुजी हरिहर मूर्ति के विवरण से सर्वथा भिन्न है । इसमें सभी आयुध शैव प्रकार दिखाये गये हैं । इस रूप में अपराजितपृच्छा का यह विवरण बड़ा ही विलक्षण हो जाता है । इसमें वैष्णव वाहन गरुड एवं आयुधो का कोई विवरण नहीं है; जबकि अन्य ग्रंथों में शैव एवं वैष्णव वाहनों एवं आयुधों के समान अंकन प्राप्त होते हैं । समन्वयवादी प्रतिमा में यह एकांगी प्रवृत्ति (शिव प्रधानता) सामंजस्य स्थापित करने से रह जाती है । अपराजितपृच्छा का यह विवरण शिव की सदाशिव मूर्ति के विवरण से तुलनीय है जो कि रूपमण्डन में भी प्राप्त होता है ।[2]

---

1. "वरदं चाङ्कुशं दन्तं परशुं दक्षिणे करे ।
   कपालं शराक्षमालं पाशं दण्डं च वामके ।।

   पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च हरं रुद्रगणेश्वरम् ।
   वृषभवाहनोपेतं सर्वकामार्थसाधनम् ।।"

   अपराजितपृच्छा, अध्याय 212, श्लोक 38-39, पृष्ठ 542-543.

2. "बहुरूपो दधद् दक्षे डमरुं च सुदर्शनम् ।
   सर्पं शूलांकुशौ कुम्भं कौमुदीं जपमालिकाम् ।।

   घण्टाकपालखट्वांगतर्जनीं कुण्डिका धनुः ।
   परशुं पट्टिशं चेति वामोर्ध्वादिक्रमेण हि ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 4, श्लोक 23-24, पृष्ठ 159.

अपराजितपृच्छा के उपरोक्त विवरण के सम्बन्ध में यहाँ उल्लेखनीय है कि दक्षिणी शिल्पशास्त्रों में भी इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता तथा उनमें भी बहुधा हरिहर के एकमुखी एवं चतुर्भुजी मूर्ति के निर्माण का विधान प्राप्त होता है। इन शिल्पशास्त्रों में शिल्परत्न उल्लेखनीय है जिसमें हरिहर-मूर्ति का बड़े ही विस्तार के साथ उल्लेख प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में सप्तमण्डलों से युक्त शिरश्चक्र (प्रभामंडल) का उल्लेख मिलता है, जिसमें वैष्णव एवं शैव प्रतीकों के अंकन का विवरण प्राप्य है।[1] हरिभाग में नेत्र का शीतल होना और हर भाग में उग्र दृष्टि का होना वांछनीय है।[2]

---

1. "शिरश्चक्रविशालस्थ सप्तभागैकभाविकम्।"

   शिल्परत्न, उत्तर भाग,
   अध्याय 22, श्लोक 135.

2. "दक्षिणेऽह्युग्रदृष्टिस्स्याद्वामे शीतलनेत्रकम्।"

   शिल्परत्न, उत्तर भाग, अध्याय 22,
   श्लोक 131.

इस ग्रन्थ में[1] वैष्णव एवं शैव धर्मों के वस्त्रों (पीताम्बर एवं चर्ममय) का समान रूप से अंकन का विधान मिलता है । दाहिने कान में सर्प-कुण्डल और बायें काने में मकर-कुण्डल तथा दक्षिणार्द्ध मस्तकभाग में अर्द्धचन्द्रयुक्त जटामुकुट एवं वामार्द्ध मस्तक में नाना-रत्नों से जटित किरीटमुकुट और शैव हस्तों में एक वरद मुद्रा में तथा दूसरा शूलधारी एवं वाम भागवाले हाथों में शंख, चक्र एवं गदा होने चाहिए । दक्षिणी जंघा भुजगेन्द्र-

---

1. "बालेन्दुभूषितः कार्यो जटाभारस्तु दक्षिणे ।
   नानारत्नमयं द्रव्यं किरीटं वामभागतः ।।

   दक्षिणं सर्पराजेन भूषितं कर्णमालिखेत् ।
   मकराकारकं दिव्यं कुण्डलं वामकर्णतः ।।

   वरदो दक्षिणो हस्तो द्वितीयश्शूलभृत्तदा ।
   कर्त्तव्यौ वामभागे तु शंखचक्रगदाधरौ ।।

   दक्षिणे वसनं कार्यं द्वीपिचर्ममयं शुभम् ।
   पीताम्बरमयं भव्यं जघनं सव्यमालिखेत् ।।

   वामपादः प्रकर्त्तव्यो नानारत्नविभूषितः ।
   दक्षिणांघ्रिः प्रकर्त्तव्यो भुजगेन्द्रविभूषितः ।।

   शीतांशुधवलः कार्यश्शिवभागो विचक्षणैः ।
   अतसीपुष्पसंकाशो विष्णोर्भागो विरच्यते ।।"

   शिल्परत्न, गो०राव, पूर्वोक्त, पृष्ठ 170-171.

विभूषित एवं वामपाद नानारत्नों से विभूषित होना चाहिए । शिवभाग शीत रश्मियों की तरह श्वेत तथा विष्णु-भाग अतसी पुष्प के तुल्य होना चाहिए । शिल्परत्न के मूर्तिविवरण की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इन दोनों देवों के समीप देवियों की उपस्थिति वांछनीय बताई गई है ।[1]

यहाँ उल्लेखनीय है कि गुप्तोत्तरकालीन कुछ अन्य शिल्प-शास्त्रों, प्राविधकेत्तर ग्रन्थों तथा पुराणों में भी एकमुख तथा चतुर्भुज हरिहर के निर्माण का विवरण मिलता है । उदाहरणार्थ, मानसोल्लास[2] में एक-मुख एवं चतुर्भुज हरिहर प्रतिमा का उल्लेख है, जिसके दक्षिणार्द्ध शैवायुध, गजाजिन एवं श्वेतवर्ण से सुशोभित हों तथा वामार्द्ध अतसी पुष्प के वर्ण के तुल्य वैष्णव आभूषण एवं आयुध धारण किये हों । काश्यपशिल्प में हर्यर्द्ध-प्रतिमा में शिवार्द्ध शिवायुध एवं शैव आभूषण और वामार्द्ध वैष्णव लक्षणों को प्रदर्शित करता हुआ होना चाहिए ।[3] शिल्परत्न की भाँति इसमें भी यह विधान मिलता है कि दक्षिणार्द्ध उग्र दृष्टि तथा वामार्द्ध सुशीतल दृष्टि का द्योतक होना चाहिए । परन्तु इस ग्रन्थ में एक नवीन तथ्य का निर्देश मिलता है । वह यह है कि जहाँ शिल्परत्न एवं अन्य ग्रन्थों में शिवार्द्ध व्याघ्रचर्मधारी अथवा गजाजिनधारी निर्दिष्ट है, वहाँ इस ग्रन्थ में इसे दिगम्बर रूप में निर्माण करने का उल्लेख मिलता है । ईशान-गुरुदेव-पद्धति[4] में चतुर्भुज हरिहर के निर्माण का निर्देश करते हुए कहा गया

---

1. "सर्वेषामपि देवानां देवीनामेवमाचरेत् ।"

   शिल्परत्न, उत्तरभाग, अध्याय 22, श्लोक 137.

2. मानसोल्लास, अध्याय 1, श्लोक 746-752, पृष्ठ 65.

3. काश्यपशिल्प, अध्याय 73, श्लोक 1-9.

4. ईशानगुरुदेवपद्धति, पटल 43, श्लोक 65-67.

है कि दक्षिणार्द्ध दोनों हाथ यदि अभय एवं टंक से युक्त हों, तो वामार्द्ध दोनों हस्त शंख एवं पद्मधारी हों । स्कन्दपुराण में हर्यर्द्ध में विष्णुवाहन गरुड तथा शिवार्द्ध में वृषवाहन का निर्देश प्राप्य है । उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि साहित्यिक ग्रन्थों में सामान्यतः हरिहर की चतुर्भुज-प्रतिमा के निर्माण का विधान मिलता है ।

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि हरिहर के प्रसंग में आभिलेखक साक्ष्यों का भी विवेचन वांछनीय होगा । हरिहर-पूजा की लोकप्रियता के कारण इस काल के नरेशों ने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में हरिहर-मंदिर के निर्माण एवं उनमें हरिहर-प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा कराई जिसका एक स्पष्ट प्रमाण हमें सेनवंशी राजा विजय-सेन (1096 - 1159 ई0 ) के देवपाड़ा (बंगलादेश का राजशाही जनपद) शिला-लेख में प्राप्य है । उसने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में 'प्रद्युम्नेश्वर' (हरिहर) की प्रतिमा की स्थापना अपने द्वारा एक नव-निर्मित मंदिर में कराई थी ।[1] गाहड़-वाड़वंशी नरेश चन्द्रादित्यदेव के चन्द्रावती - लेख (वाराणसी जनपद, विक्रम संवत् 1150 = 1092 ई0 ) से ज्ञात होता है कि इस नरेश ने अयोध्या में सरयू एवं घाघरा नदियों के संगम पर वर्तमान स्वर्गद्वार तीर्थ * में स्नान करके कठेहिलीपत्तला (आधुनिक कटेहिल परगना वाराणसी जनपद ) को ब्राह्मणों को दान में दिया था, जिसका उल्लेख इस ताम्रलेख में प्राप्त है । इस लेख के अनुसार अपनी विजयों के उपलक्ष में कमलासन पर वर्तमान हरिहर-प्रतिमा को अपने द्वारा नवनिर्मित मंदिर में उसने स्थापित किया था ।[2] यहाँ उल्लेखनीय है कि पद्मपीठ पर विद्यमान चतुर्भुज

---

1. "स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधात् वसुमतीवासवः सौधमुच्चैः ।"
   सरकार दि0च0, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, जिल्द 2, पृष्ठ 119.

2. सरकार, दि0च0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 276.

हरिहर-प्रतिमा का वर्णन मयमतम् में भी प्राप्त है, जिनके हाथों में त्रिशूल, टंक, दण्ड तथा शंख का उल्लेख प्राप्य है ।[1] विचारणीय है कि अंशुमद्भेदागम् में भी हरिहर-प्रतिमा की समान मुद्रा का उल्लेख मिलता है ; उदाहरणार्थ चतुर्भुज, अभयमुद्रा ( या शूल ), अक्षमाल, चक्र, शंख ( या गदा तथा कटकमुद्रा ) , तृतीय नेत्र, अर्द्धचन्द्र । इस प्रकार दक्षिणी शिल्पशास्त्रीय परम्परा के द्वारा भी हरिहर के चतुर्भुज प्रतिमा-लक्षणों का समर्थन मिलता है । इसी प्रकार विजयनगर-साम्राज्य के कृष्णदेवराय के कांचीपुरम् ताम्रलेख ( शक संवत् 1450 = 1528 ई0 ) में अपनी विजयों के उपलक्ष में उनके द्वारा हरिहर-प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख मिलता है । इस प्रतिमा की स्थापना उन्होंने कांचीपुरम् के एक मंदिर में कराई थी ।[2]

सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य हरिहर-प्रतिमाओं के कई उदाहरण बिहार, बंगाल, असम, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा से प्राप्त हुए हैं । आठवीं एवं नवीं शताब्दी में पश्चिमी भारत में गुजरात एवं राजस्थान में हरिहर-सम्प्रदाय पर्याप्त लोकप्रिय था । उत्तरी गुजरात में वीसलनगर के एक मंदिर में हरिहर की एक भव्य मूर्ति प्राप्य है । जटामुकुट एवं किरीटमुकुट से सुशोभित यह चतुर्भुज मूर्ति स्थानक है । दोनों पार्श्वों में शिवगण भृंगी एवं श्रृंगी तथा विजयगण जय एवं विजय की भी मूर्तियाँ आकारित हैं ।

---

1. मयमतम् अध्याय 36, श्लोक 90-91.

2. "श्री शैले शोणशैले महति हरिहरे होबले संगमे च ।"

   सरकार, दि0च0 पूर्वोक्त, पृष्ठ 595.

मोढेरा (गुजरात) में भी हरिहर की एक चतुर्भुज मूर्ति प्राप्य है, जो कि सूर्यकुण्ड की शीतलामाता के मंदिर के मण्डोवर पर वर्तमान है। दाहिने करों में वरदमुद्रा तथा त्रिशूल और बायें में चक्र और शंख अंकित हैं। प्रतिमा के समीप ही वृषभ एवं गरुड वाहन शिल्पित हैं।[1]

दक्षिणी गुजरात में सोपारा से एक भव्य गुर्जर - प्रतीहार-कालीन चतुर्भुज प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसके चारों ही हाथ खण्डित हैं। मिश्रित लक्षणों से युक्त इस प्रतिमा में जटामुकुट, किरीटमुकुट, भृंगी, वृषभ (नंदी) और मुण्डमाल के अंकन प्रमाणित करते हैं कि यह हरिहर-प्रतिमा रही होगी।[2]

गुर्जर-प्रतीहार कला-केन्द्र ओसियाँ में तीन हरिहर मंदिर वर्तमान हैं, जिनकी भित्तियों पर कई हरिहर प्रतिमाएँ निर्मित्त हैं, जो शैर्षिक रूप में विष्णवर्ध (वामार्ध) एवं शिवार्द्ध (दक्षिणार्ध) प्रदर्शित थीं। इन हरिहर-प्रतिमाओं में केवल चार ही प्रतिमाएँ बची हुई हैं; जो यद्यपि समान लक्षणों से युक्त हैं, तथापि कुछ अर्थों में एक दूसरे से विभिन्न भी हैं।

इनमें से एक चतुर्भुज-प्रतिमा के (आकृति संख्या 3) शैव भाग में ऊर्ध्व कर त्रिशूल तथा निम्न कर अभय-मुद्रा से विभूषित अक्षमालधारी है। वैष्णवभाग में चक्र

---

1. गिरि करुणा, मोढेरा का सूर्य मंदिर, शीर्षक शोधप्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1983, पृष्ठ 119-120.

2. भागवत सहाय, वही, पृष्ठ 136.

और शंख सुशोभित हैं । शिवार्द्ध भाग में शिववाहन नंदी अंकित है ; जिसकी दाहिनी ओर एक शिवगण बायें हाथ में त्रिशूल धारण किए हुए तथा दाहिना हाथ उसके जंघों पर प्रदर्शित है । इसी प्रकार वैष्णवार्द्ध में विष्णु का वाहन गरुड़ तथा बाईं ओर एक गण दिखाया गया है, जिसका दाहिना हाथ उसके वक्षस्थल तथा बायाँ हाथ उसके जंघे पर अवलम्बित है ।[1]

द्वितीय, हरिहर-प्रतिमा एकमुख एवं चतुर्भुज प्रकार की है । इसमें भी समान आयुध तथा वाहन प्रदर्शित हैं । शिवगण एवं विष्णुगण भी इसमें उच्चित्रित हैं । हरिहर के दक्षिण पार्श्व में एक चामरधारिणी (प्रतीहारिणी) अंकित है (आकृति संख्या 4) ।

तृतीय चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा के दोनों ऊर्ध्व बाहों में त्रिशूल एवं चक्र तथा निम्न एक में पद्म एवं दूसरे खण्डित बाहु में आयुध अस्पष्ट दिखाए गए हैं । दक्षिणार्द्ध में त्रिभंग मुद्रा में खड़ा एक शिवगण अपने दाहिने हाथ में शिवायुध लिए प्रदर्शित है तथा वाम हस्त उसके वक्षस्थल पर न्यस्त है । इसी प्रकार वामार्द्ध में त्रिभंग मुद्रा में खड़ा एक चक्र-पुरुष अपने दाहिने हाथ में चक्र धारण किए हैं तथा बायाँ हाथ उसके कटिप्रदेश पर अवलम्बित है (आकृति संख्या 5 ) ।

ओसियाँ का सचिया माता-मंदिर सुस्पष्ट प्रतिमाओं के अंकनों से संयुक्त है । यह मंदिर गिरिशिखर पर स्थित है और सम्पूर्ण मारवाड़ में एक पवित्र स्थान के रूप में परिगणित है । हजारों लोग प्रतिवर्ष इसके दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं । इस मंदिर की पश्चिमी भित्ति पर हरिहर की एक उल्लेखनीय प्रतिमा

---

1. आशा कालिया, 'आर्ट आफ ओसियाँ टेम्पुल्स', पृष्ठ 123.

उच्चित्रित है (आकृति संख्या 6) । यही प्रतिमा ओसियाँ की चतुर्थ हरिहर-प्रतिमा है, जिसमें दोनों निम्न हाथ खण्डित हैं ; परन्तु ऊर्ध्व हाथों में एक में सर्पकुण्डल से युक्त त्रिशूल तथा दूसरी ओर चक्र सुशोभित है । दक्षिणार्द्ध में शिवगण के बायें हाथ में त्रिशूल एवं दायाँ हाथ जटा पर अवलम्बित है तथा वाहन ऊर्ध्वमुख नंदी भी प्रदर्शित है । वामार्द्ध में एक पद्मपुरुष एवं गरुड प्रदर्शित हैं ।[1]

ओसियाँ के उपर्युक्त चारों प्रतिमाओं के अलंकरण में गहरा भेद मिलता है । दक्षिणार्द्ध में सर्पाभरण, जटामुकुट तथा नरमुण्डमाल प्रदर्शित हैं, जबकि वामार्द्ध में गोलकुण्डल, एकावली, कंकण, केयूर तथा एक लम्बी वनमाल और किरीटमुकुट सुशोभित हैं । हम पहले शास्त्रीय विवरण में देख चुके हैं कि हरिहर के वस्त्र के अलंकरण में समान अन्तर स्थापित किये जाते थे, उदाहरणार्थ, शिवार्द्ध में व्याघ्रचर्म, सर्पयज्ञोपवीत, सर्पमेखला एवं सर्पनूपुर सुशोभित होने का विधान मिलता है, जबकि हर्यर्द्ध में मकरकुण्डल, केयूर, कंकण, नूपुर एवं किरीटमुकुट प्रदर्शित करने का निर्देश प्राप्त होता है । अन्य शास्त्रीय विवरण भी इन प्रतिमाओं की विशेषताओं में दृष्टिगोचर होते हैं ; उदाहरणार्थ, समभंगमुद्रा अथवा पद्मासन पर त्रिभंगमुद्रा में खड़ा होना, दक्षिणार्द्ध में उग्र रूप तथा वामार्द्ध में शांत रूप और सिर के पीछे प्रभामण्डल (शिरश्चक्र) का अंकन ।

इस प्रकार हरिहर-मूर्तियों की दृष्टि से ओसियाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है । यहाँ हरिहर-मंदिरों तथा सचियामाता मंदिर के प्रांगण में लघु देवालयों पर पारम्परिक लक्षणों से युक्त कई हरिहर-मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं ।

---

1. आशा कालिया, वही, पृष्ठ 122.

खजुराहो ( मध्यप्रदेश) में हरिहर-स्वरूप की कई मूर्तियाँ प्राप्य हैं। ग्यारहवीं शताब्दी ई0 की एक सुन्दर चतुर्भुज मूर्ति पुरातत्व-संग्रहालय खजुराहो में प्रदर्शित है ( सं0सं0 558 ) । अर्द्धचन्द्र एवं जटामुकुट से सुशोभित शिव त्रिशूल एवं वरदाक्ष धारण किए हैं तथा किरीटमुकुट से सुशोभित विष्णु चक्र धारण किये प्रदर्शित हैं। नंदीवाहन के साथ ही मूर्ति के परिवेश में शैवपरिवारों के देवता एवं विष्णु के अवतारों के चित्रण उल्लेखनीय है। इस उदाहरण में कार्त्तिकेय एवं गणेश की भी आकृतियाँ प्रदर्शित हैं ( आकृति संख्या 7 ) । इसके अतिरिक्त विश्वनाथ के मंदिर-शिखर पर रूपायित हरिहर-प्रतिमा भी एक उल्लेखनीय उदाहरण है ( आकृति संख्या 8 ) ।

भुवनेश्वर ( उड़ीसा ) में हरिहर मूर्तियों के कुल नौ उदाहरण मिले हैं। ये मूर्तियाँ शत्रुघ्नेश्वर, परशुरामेश्वर, वैतालदेउड़, शिशिरेश्वर, लिंगराज, मेघेश्वर, ईश्वरेश्वर तथा मार्कण्डेश्वर मंदिरों में विद्यमान हैं। उल्लेखनीय है कि इनमें से एक द्विभुज हरिहर-मूर्ति लिंगराजमंदिर के जगमोहन के जंघा-भाग पर उच्चित्रित है। यहाँ हरिहर पद्मपीठ पर पद्मासन में विराजमान हैं। उनके दाहिने हाथ में त्रिशूल तथा बायें हाथ में प्रफुल्लपद्म सुशोभित हैं। शिव भाग में जटामुकुट एवं विष्णुभाग में किरीटमुकुट प्रदर्शित हैं। यज्ञोपवीत, ग्रैवेयक एवं भुजबन्ध आदि सामान्य आभूषणों से सुसज्जित हरिहर के पार्श्वों में एक-एक नारी मूर्ति ( पार्वती-लक्ष्मी ) तथा ऊर्ध्वभाग में विद्याधर हवा में उड़ते प्रदर्शित हैं। प्रतिमाशास्त्रों में वर्णित द्विभुज हरिहर-मूर्ति के ये पुरातत्त्वीय उदाहरण हैं।

अन्य हरिहर-मूर्तियाँ चतुर्भुज हैं। यह विशेषता शास्त्रीय परम्परा के प्रति-बद्धता का सूचक है। हम पहले देख चुके हैं कि अधिकतर चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा के बनाने का विधान शास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है। दक्षिणार्द्ध हर में जटामुकुट, मुण्ड-माल, नरमुण्ड निर्मित भुजबन्ध, मृगचर्म एवं सर्पवलय आदि प्रदर्शित हैं। वामार्द्ध में

वैजयन्तीमाला, किरीटमुकुट तथा रत्नजटित भुजबन्ध आदि अलंकृत हैं। हरि के वक्ष पर कौस्तुभमणि विद्यमान है तथा कटि में पीताम्बर विशेष रूप से दर्शनीय है।

इन आठ हरिहर-प्रतिमाओं में पाँच स्थानक और तीन आसन पर सुशोभित हैं। परशुरामेश्वर मंदिर के जगमोहन की दक्षिणी बाड़ पर अंकित हरिहर-प्रतिमा चतुर्भुज स्वरूप में है। चतुर्भुज देवता यहाँ त्रिभंग मुद्रा में तथा उनके वाम करों में गदा और चक्र तथा दक्षिणार्द्ध में बीजपूरक प्रदर्शित हैं। दक्षिणोर्ध्व कर स्पष्ट द्रष्टव्य नहीं हैं। वाम-पार्श्व में एक नारी आकृति देवता की ओर देखती प्रदर्शित है। दक्षिण-पार्श्व में वामनाकार त्रिशूलपुरुष की मूर्ति अंकित है। त्रिशूल पुरुष मुण्डमाल और मुण्डयुक्त भुजबन्ध से सुशोभित है और उसके दक्षिण हाथ में बीजपूरक उच्चित्रित है।

शत्रुघ्नेश्वर-मंदिर के पश्चिमी बाड़ की मूर्ति पर्याप्त खण्डित है। यहाँ हरिहर समभंग मुद्रा में विराजमान हैं और मूर्ति के दक्षिणोर्ध्व में त्रिशूल तथा वामोर्ध्व में चक्र अंकित हैं। अधः करों के आयुध नष्ट हो गये हैं। मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में एक शिवगण तथा वामपार्श्व में एक नारी ( सम्भवतः लक्ष्मी ) की आकृति उत्कीर्णित है।[1]

शिशिरेश्वर-मंदिर के पश्चिमी जंघा की कार्त्तिकेय-रथिका के समीप ही हरि-हर-प्रतिमा अंकित है, जो त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित है। यहाँ हरिहर के वामोर्ध्व में पद्म एवं उनका वामाधः कटि पर अवलम्बित है। वामपार्श्व में पीछे की ओर गदा प्रदर्शित है। हरिहर का दक्षिणाधः हस्त खण्डित है तथा दक्षिणोर्ध्व में अक्षमाल अंकित है। वेतालदेउड़ मंदिर के उत्तरी राहापग में एक हरिहर-प्रतिमा अंकित है जो हरिहर-मूर्ति का उदाहरण है एवं समान लक्षणों से युक्त है।[2]

---

1. टामस डोनाल्डसन, छवि 2, पृष्ठ 83.
2. देबला मित्रा, भुवनेश्वर, पृष्ठ 28-29, 34, 36.

ईश्वरेश्वर मंदिर की गंडी (दक्षिण) के स्थानक चतुर्भुज हरिहर-मूर्ति में देवता के तीन हाथ वरदमुद्रा, अक्षमाल एवं सनालपद्म से युक्त हैं और एक हाथ कटि भाग पर अवलम्बित है। दक्षिण पार्श्व में एक गण तथा वाम पार्श्व में गदा अंकित हैं।

आसन-प्रतिमाओं में लिंगराज मंदिर की पूर्वी बेकी पर हरिहर-मूर्ति अंकित है जो पद्मपीठ पर पद्मासीन है। शिव के अधःकर का आयुध अस्पष्ट है। ऊर्ध्वकर पद्मधारी है। अधःकर से अभयमुद्रा का अभिव्यंजन होता है। शिव-भाग में उनका तृतीय नेत्र भी प्रदर्शित है।

लिंगराज मंदिर के प्रांगण के ही एक अन्य मंदिर की चाहरदीवारी पर हरिहर की एक अत्यंत सुन्दर मूर्ति रूपायित है। सौम्य रूप चतुर्भुज हरिहर के हर भाग में अक्षमाल तथा त्रिशूल आकारित हैं। वाम कर पूरी तरह खण्डित हो चुके हैं। शिव के जटामुकुट तथा विष्णु के किरीटमुकुट स्पष्ट हैं। जटाभार से युक्त ऊर्ध्वलिंगहर सर्पकुण्डल एवं नागयज्ञोपवीत से युक्त हैं तथा बाघाम्बरधारी हैं। हर के पार्श्व में पद्मपीठ पर नृत्यमुद्रा में कंकालरूप गण की भी आकृति उच्चित्रित है तथा पद्मपीठ के नीचे, ऊपर मुख उठाये वृषभ वाहन अंकित है। वाम पार्श्व में घुटने तक वस्त्र प्रदर्शित है जो विष्णु के पीताम्बर का द्योतक है। हर्यर्द्ध पार्श्व में देवी (लक्ष्मी) उत्कीर्ण है; जिनके बायें हाथ में पद्म है तथा दाहिना हाथ शरीर के समानान्तर लटक रहा है। पद्मपीठ के नीचे एक गमले में पद्मबेल निकल रही है, जिसके कमल-भाग को लक्ष्मी पकड़े प्रदर्शित हैं।[1]

---

1. देबला मित्रा, भुवनेश्वर, पृष्ठ 26-40.

मेधेश्वर मंदिर की पूर्वी बेकी पर भी चतुर्भुज-हरिहर की पद्मासीन मूर्ति आकारित है। हरिहर का दक्षिणोर्ध्व वरदमुद्रा में एवं त्रिशूल-अंकित है जबकि वामार्द्ध अभयमुद्रा से युक्त तथा पद्म-अंकित है। इनके अतिरिक्त मार्कण्डेश्वर-मंदिर में हरिहर-प्रतिमा का एक खण्डित उदाहरण उपलब्ध होता है (आकृति संख्या 9)।

उत्तर प्रदेश से प्राप्त हरिहर-प्रतिमाओं में लखनऊ-संग्रहालय में प्रदर्शित (सं० सं०, एच 199) एक स्थानक हरिहर-प्रतिमा (10-11वीं शती) उल्लेखनीय है। इसे हरिहर-प्रतिमा का एक विशिष्ट उदाहरण कह सकते हैं जिसमें कि वैष्णव एवं शैव लक्षणों का उल्लेखनीय सामंजस्य मिलता है। वामार्द्ध हरि एवं दक्षिणार्द्ध हर का बोधक है। शिरोवेश में जटामुकुट एवं किरीटमुकुट शैर्षिक रेखा द्वारा स्पष्ट रूप में विभक्त हैं। हरिहर के मस्तक के पीछे मांगलिक प्रतीकों से अलंकृत शिरश्चक्र सुशोभित हैं, जिसका वर्णन शास्त्रों में प्राप्य है। ऊपरी भाग में उड़ते विद्याधर सुशोभित हैं। इस चतुर्भुज प्रतिमा में हरिहर के दक्षिणोर्ध्व हस्त त्रिशूल एवं दक्षिणाधः अक्षमाल से युक्त अभयमुद्रा में आकारित है। हरिहर के वामोर्ध्व हस्त में चक्र एवं वामाधः में शंख सुशोभित है। हरिहर एक कंठमाल (ग्रैवेयक), यज्ञोपवीत एवं वनमाल धारण किये हैं। नीचे की ओर दोनों सीधे पैरों के पार्श्वों में इन देवों से सम्बन्धित वाहन (नंदी एवं गरुड़) तथा गण (त्रिशूलधारी तथा गदाधारी) प्रदर्शित हैं (आकृति संख्या 10 एवं 11)। इसके अतिरिक्त, लखनऊ-संग्रहालय में हरिहर की एक खण्डित प्रतिमा में उनका मस्तक-भाग अवशिष्ट है, जिसमें विष्णु का किरीटमुकुट एवं शिव का जटामुकुट प्रदर्शित है (आकृति संख्या 12)।

मध्यकालीन (नवीं शताब्दी ई०) एक भव्य हरिहर-प्रतिमा (समभंग मुद्रा में) शिलाफलक पर उत्कीर्ण बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले में मुण्डेश्वरी मंदिर से उपलब्ध हुई जो पटना-संग्रहालय (सं० 6008) में प्रदर्शित है (आकृति संख्या 13)। इसके अतिरिक्त हरिहर की एक अन्य प्रतिमा (चतुर्भुजी) मुण्डेश्वरी देवी के मंदिर में ही सुरक्षित है। इस देवता के हाथों में त्रिशूल, अक्षमाल, चक्र एवं गदा सुशोभित

हैं । हरिहर के आयुध त्रिशूल एवं गदा आयुध-पुरुष के रूप में भी इस दृष्टांत में प्रदर्शित हैं । इसके अतिरिक्त वाहन नंदी एवं गरुड़ भी पादपीठ पर अंकित किये गये हैं (आकृति संख्या 14) । पटना-संग्रहालय में हरिहर-मूर्ति (10वीं शती) का एक द्वितीय उदाहरण ( सं0सं0 8163, प्राप्तिस्थान कौशाम्बी ) उपलब्ध होता है । यह हरिहर की एक चतुर्भुजी मूर्ति है, जिसमें वे समभंग मुद्रा में प्रदर्शित हैं । मस्तक केएक भाग में किरीटमुकुट एवं जटामुकुट सुशोभित है । ऊपर की दोनों बाहें टूटी हुई हैं और नीचे की बाहें अभय-मुद्रा एवं शंख से युक्त हैं (आकृति संख्या 15)।

मध्यकालीन (नवीं शती0 ई0) की एक अत्यंत भव्य हरिहर-प्रतिमा बोध-गया के महंत के व्यक्तिगत संकलन में प्राप्त है । इसमें हरिहर के विशिष्ट लक्षण सुस्पष्ट हैं । शिवार्द्ध के मस्तक पर जटामुकुट, कान में सर्पकुण्डल, परिधान के रूप में व्याघ्रचर्म तथा त्रिशूल एवं मुण्डलवलय एवं अक्षमाल-युक्त हाथ वरदमुद्रा में प्रदर्शित हैं । हर्यर्द्ध भाग में मस्तक पर किरीटमुकुट, कंधों से लटकता वनमाल, परिधान के रूप में पीताम्बर, हाथों में चक्र एवं शंख सुशोभित हैं । हरिहर के दोनों पार्श्वों में वाम आकृतियाँ आयुध-पुरुष के रूप में सुशोभित हैं । पद्मपीठ के ऊपर हरिहर के वाहन नंदी एवं गरुड़ पुरुष-रूप में अंकित हैं ।[1]

गया जनपद (बिहार) के अन्ती ग्राम के एक आधुनिक मंदिर में (पाल-कालीन) एक चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा विद्यमान है, जिसके दाहिने दोनों हाथों में त्रिशूल एवं अक्षमाल तथा बायें हाथों में चक्र एवं शंख सुशोभित हैं । पादपीठ पर यथोचित स्थानों पर हरिहर-वाहन नंदी एवं गरुड़ अंकित हैं । देवता के यज्ञोपवीत एवं आभूषणों में भी भेद स्पष्ट किया गया है (आकृति संख्या 16) ।

---

1. डॉ0 भगवंत सहाय, पूर्वोक्त, पृष्ठ 138-139.

हरिहर की एक उल्लेखनीय प्रतिमा ( ग्यारहवीं शती0 ई0:, बिहार) सम्प्रति भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में सुरक्षित है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम जि0ना0 बनर्जी ने आकृष्ट किया था । इसमें हरिहर के अतिरिक्त सूर्य एवं बुद्ध की भी आकृतियाँ अंकित मिलती हैं । हरिहर के दक्षिणार्द्ध दोनों हस्त में त्रिशूल एवं अक्षमाल अंकित हैं तथा वामार्द्ध दोनों हस्तों में शंख तथा चक्र प्रदर्शित हैं । चरणचौकी पर यथोचित स्थान पर गरुड़ एवं नन्दी वाहन के रूप में अंकित हैं । हरिहर के दोनों पार्श्वों में सूर्य एवं बुद्ध की आकृतियाँ अंकित हैं ( आकृति संख्या 17 ) । परन्तु उल्लेखनीय है कि यह मिश्रित-रूप या संयुक्त-रूप में न दिखाकर सामंजस्य-स्थापन का वाचक मात्र है । इसका कारण यह है कि इस समय पाल वंश का आधिपत्य बिहार एवं बंगाल राज्यों पर सुप्रतिष्ठित था । दोनों ही क्षेत्रों में बौद्ध धर्म की प्रबलता थी । इसी समय सूर्योपासना भी प्रबल हो रही थी । अतएव हरिहर के साथ इन दोनों देवताओं का सम्मिलित उच्चित्रण किया गया । हरिहर के साथ उनकी देवियाँ ( पार्वती एवं लक्ष्मी) यथोचित स्थानों पर अंकित हैं । सूर्य अभय-मुद्रा में अपने सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ हैं । सारथी अरुण की आकृति भी अंकित है ।[1] यह प्रतिमा शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं सौर धर्मों में पारस्परिक सद्भावना का परिचायक है । भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में ( बिहार से प्राप्त ) हरिहर (10वीं शती0 ) की एक अन्य उल्लेखनीय प्रतिमा प्रदर्शित है ( आकृति संख्या 18 ) ।

हरिहर की एक खण्डित प्रतिमा अजमेर-संग्रहालय में प्राप्य है ( सं0सं0 1084) जिसमें शिव एवं विष्णु के प्रतिमा-लक्षण सफलता के साथ प्रदर्शित हैं ( आकृति संख्या 18) । हरिहर की एक अद्वितीय कोटि की प्रतिमा अजमेर के राजपूताना-संग्रहालय

---

1. जि0ना0 बनर्जी, डे0हि0आ0, फलक 48, पृष्ठ 547.

में ही सुरक्षित है ; जिसमें इस देवता के बीस हाथ प्रदर्शित किए गये हैं । यह उदाहरण अग्नि पुराण[1] में उल्लिखित हरिशंकर का दृष्टांत है । इस पुराण के अनुसार इस देवता को चतुर्मुखी होना चाहिए, जिसका दो भागों में विभक्त होना वांछनीय है । वामार्द्ध भाग में तीन आँखें एवं दस हाथ वर्तमान होना चाहिए । उनके एक पैर उनकी देवी ( विमला ) द्वारा स्पर्श करते हुए दिखाया जाय । नाभि से निकलते हुए पद्म के ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा आसीन हों । उनके सभी हाथों में आयुधों के पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होते हैं । मात्र चक्र एवं गदा के ही धारण होने का उल्लेख मिलता है । दक्षिणार्द्ध हाथों में आयुधों के पूर्ण विवरण नहीं मिलते, केवल त्रिशूल एवं षट्वांग के वर्तमान होने का उल्लेख मिलता है । इस पुराण में हरिशंकर को रुद्रकेशव भी कहा गया है । इस पुराण के अनुसार उनकी देवियों ( गौरी एवं लक्ष्मी ) का होना वांछनीय माना गया है ।

---

1. "विंशद्बाहुश्चतुर्व्वक्त्रो दक्षिणस्थोऽथ वामके ।
 त्रिनेत्रो वामपार्श्वे पि शयितो जलशाय्यपि ।।

 श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडित: ।
 नाभिपद्मेचतुर्व्वक्त्रो हरेः शंकरको हरि: ।।

 शूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे: वदे ।
 रुद्रकेशवलक्ष्मांगो गौरीलक्ष्मीसमन्वित: ।। "

 अग्नि पुराण, अध्याय 49,
 श्लोक 23-25.

हरिहर की एक प्रतीहार-कालीन प्रतिमा (11वीं शताब्दी ई0) राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में प्रदर्शित है। इस प्रतिमा की मुद्रा शरीर के अतिरंजित मोड़ों के कारण अत्यंत विलक्षण है। दुर्भाग्यवश उनके हाथ खण्डित हैं तथापि उनका युग्म रूप, दक्षिणार्द्ध जटामुकुट तथा वामार्द्ध में किरीटमुकुट से स्पष्ट है। कटिप्रदेश एवं जंघा (हर्यर्द्ध भाग में) विभिन्न आभूषणों से अलंकृत है, परन्तु शिवार्द्ध भाग में जंघा आभूषणविहीन है।[1] असम से देवपाणि नामक स्थान से प्राप्त हरिहर-प्रतिमा का उल्लेख डी0सी0 भट्टाचार्य ने किया है, जिसमें शिव-लक्षण ऊर्ध्वलिंग से स्पष्ट है। इस प्रकार इस दृष्टान्त में अतिरिक्त प्रतिमा-लक्षण प्राप्त होता है।[2]

यहाँ कुछ ऐसी द्विभुजी एवं अष्टभुजी हरिहर-प्रतिमाओं का उल्लेख करना विषयानुकूल है, जो कि या तो हाल के वर्षों में प्रकाश में आई हैं या जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान कम ही आकृष्ट हुआ है।

<u>द्विभुजी प्रतिमाएँ</u> : रामबन (म0प्र0) के तुलसी-संग्रहालय में प्रदर्शित एक स्थानक द्विभुजी हरिहर-प्रतिमा (नवीं शताब्दी ई0) उल्लेखनीय हो जाती है। शिलापट पर उच्चित्रित इस प्रतिमा में मुख-भाग खण्डित है तथा बायाँ हाथ भी टूटा है। दाहिने हाथ का आयुध भी स्पष्ट नहीं है। प्रतिमा के नीचे दोनों ओर नन्दी और गरूड तथा दोनों पार्श्वों में आयुध-पुरूष आकारित हैं। हरिहर एक

---

1. शर्मा, बी0एन0, जर्नल आफ दी ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, जिल्द 18, 1 एवं 2, पृष्ठ 157-159, आकृति संख्या 1.

2. भट्टाचार्य डी0सी0, आ0क0इ0, पृष्ठ 12.

एक ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत एवं वनमाल धारण किए हुए अंकित हैं। ऊपरी भाग में हवा में उड़ते विद्याधर सुशोभित हैं (आकृति संख्या 20)।

<u>चतुर्भुजी प्रतिमाएँ</u> : राजस्थान, भरतपुर राज्य-संग्रहालय (सं0सं0 272) में एक चतुर्भुजी स्थानक हरिहर-प्रतिमा (1084 ई0) प्रदर्शित है। इस उदाहरण के चारों ही हाथ खण्डित हैं। शिरोवेश में जटामुकुट एवं किरीटमुकुट का शैर्षिक विभाजन प्राप्य हैं। हरिहर के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल आकारित है। प्रतिमा के वाम पार्श्व में वाहन गरुड़ और दाईं ओर नन्दी के उच्चित्रण खण्डित हैं। इसी प्रकार आयुध-पुरुष भी प्रदर्शित हैं, परन्तु यह उच्चित्रण स्पष्ट नहीं है (आकृति संख्या 21)।

जबलपुर, रानीदुर्गावती संग्रहालय (सं0 171) में 10वीं शताब्दी ई0 की एक स्थानक हरिहर-प्रतिमा उपलब्ध है। इस प्रतिमा का मुख एवं मुकुट स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु मस्तक के पीछे प्रभामण्डल अलंकृत है। इस प्रतिमा के शिवार्द्ध के ऊर्ध्व एवं निम्न हस्त त्रिशूल एवं अक्षमाल लिए अभयमुद्रा में प्रदर्शित हैं। परन्तु वामार्द्ध हस्त खण्डित है। प्रतिमा के ऊपर दोनों ओर उड़ते विद्याधर पत्नियोंसहित अंकित हैं। हरिहर के ऊपर दोनों ओर अङ्क पार्श्वों में आयुधपुरुष देव-परिचारिकाओं-सहित सुशोभित तथा वाहन नंदी एवं गरुड़ भी आकारित है (आकृति संख्या 22)। एक अन्य सुन्दर हरिहर-प्रतिमा (दसवीं शती ई0) स्थानक एवं समपाद मुद्रा में रानी दुर्गावती संग्रहालय में ही उपलब्ध होती है। इस प्रतिमा के अधोभाग में नंदी एवं गरुड़, देवियाँ (पार्वती एवं लक्ष्मी) एवं वामन आकृतियाँ उच्चित्रित हैं। मस्तक पर जटामुकुट एवं किरीटमुकुट का शैर्षिक विभाजन प्राप्त होता है। प्रतिमा के ऊर्ध्व भाग का वाम भाग खण्डित है एवं दक्षिण भाग में उड़ते विद्याधर आकारित हैं। इस चतुर्भुज प्रतिमा में दक्षिणार्द्ध त्रिशूल एवं अक्षमाल तथा वामोर्ध्व हस्त खण्डित तथा वामाधः हस्त में शंख अंकित है (आकृति संख्या 23)।

हिंगलाजगढ़ (मंदसौर, म0प्र0) से प्राप्त एवं इन्दौर के केन्द्रीय संग्रहालय में एक भव्य हरिहर-प्रतिमा (दसवीं शती ई0) विद्यमान है। यह स्थानक चतुर्भुज प्रतिमा समपाद मुद्रा में विभिन्न आभरणों से मण्डित है। देवमस्तक पर जटामुकुट एवं किरीटमुकुट स्पष्ट रूप में अंकित हैं। मस्तक का पिछला भाग प्रभामण्डलयुक्त है। प्रतिमा के ऊर्ध्वभाग में हवा में उड़ते विद्याधर-युग्म एवं देवगण अंकित हैं। अधोभाग में वाहन (नंदी एवं गरुड़), देवियाँ एवं अनुचर अंकित हैं (आकृति संख्या 24)। एक अन्य हरिहर-प्रतिमा (दसवीं शती) का मात्र मस्तक-भाग इन्दौर के केन्द्रीय संग्रहालय में ही उपलब्ध होता है, जिसमें जटामुकुट एवं किरीटमुकुट का शीर्षिक विभाजन स्पष्ट है। मस्तक के पीछे विभिन्न मांगलिक प्रतीकों से मंडित प्रभामण्डल उच्चित्रित है। ऊर्ध्वभाग में ब्रह्मादि देव-गण आसन-मुद्रा में विराजमान हैं। प्रतिमा के खण्डित होने के कारण बाहों की संख्या का पता नहीं चल पाता (आकृति संख्या 25)।

महारथ से प्राप्त एक हरिहर-प्रतिमा नवादा संग्रहालय में (10वीं शती ई0) में प्रदर्शित है। मस्तक पर त्रिनेत्र अंकित है। ग्रैवेयक एवं वनमाल कंधे से लेकर घुटने तक लटकता सुशोभित है। बायें भाग में कमर से घुटने तक पीताम्बर वस्त्र अलंकृत है। ऊर्ध्व दोनों हाथों में चक्र एवं त्रिशूल देखे जा सकते हैं तथा अधो हस्त खण्डित हैं। प्रतिमा के वाम पार्श्व में वीणाधारिणी सरस्वती परिचारिका के साथ प्रदर्शित हैं। दक्षिण पार्श्व में शैव आयुधपुरुष अंकित है, जिसके वाम हस्त में त्रिशूल एवं दाहिने हाथ में मदिरा-पात्र है। चरणचौकी पर सम्बन्धित वाहन उच्चित्रित हैं (आकृति संख्या 26)। शिव के इस आयुध-पुरुष के स्पष्ट उच्चित्रण का दृष्टांत (आकृति संख्या 27) में देखा जा सकता है, जिसे भ्रान्तिवश 'हरिहर' कहा जाता है।

शिवपुरी (म0प्र0) से प्राप्त एक विशिष्ट चतुर्भुजी हरिहर-प्रतिमा (11वीं शती ई0) स्थानक एवं समपाद है। वामोर्ध्व हस्त में चक्र एवं वामाधः में शंख

उच्चित्रित है तथा दक्षिणोर्द्ध हस्त खण्डित है एवं दक्षिणाधः में अक्षमाल अंकित है। वामपार्श्व में वैष्णव आयुध-पुरुष, देवी एवं परिचारिका तथा दक्षिणार्द्ध में शैव आयुधपुरुष, देवी एवं परिचारिका प्रदर्शित हैं। मस्तक के पीछे शिरश्चक्र खण्डित है। शिलापट्ट के ऊर्ध्वभाग में हरिहर के स्कन्द एवं मस्तक के पार्श्वों में वैष्णव एवं शैव देव-परिवार के सदस्यों का शिल्पियों द्वारा सफलतापूर्वक उच्चित्रण हुआ है (आकृति संख्या 28)।

शिवपुरी-संग्रहालय (म0प्र0) में ही प्रदर्शित एक अन्य चतुर्भुजी हरिहर-प्रतिमा (ग्यारहवीं शती ई0) समान लक्षणों से युक्त है। अन्तर केवल इस दृष्टि से है कि यह उदाहरण पूर्ण रूप में सुरक्षित है। फलस्वरूप देवता के किरीटमुकुट एवं जटामुकुट तथा शिरश्चक्र सुरक्षित हैं। वाम भाग में कर्णकुण्डल, हस्त-आयुध रूप में शंख एवं चक्र, आयुध-पुरुष, परिचारिका-सहित देवी तथा वाहन गरुड़ अंकित हैं। दक्षिणार्द्ध हस्त में कपाल, अक्षमाल एवं सम्बन्धित अनुचर, परिचारिका-सहित देवी तथा वाहन नंदी उच्चित्रित हैं (आकृति संख्या 29 )।

दुबेला-संग्रहालय (म0प्र0 ) में प्रदर्शित चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा (ग्यारहवीं शताब्दी ई0, सं0सं0 354) समान लक्षणों से युक्त प्राप्य है। इस प्रतिमा में दक्षिणार्द्ध में उच्चित्रित निम्न कर खण्डित है तथा ऊर्ध्वहस्त में त्रिशूल का अंकन प्राप्त होता है। वामार्द्ध करों में चक्र एवं शंख की भव्य उकेरियाँ देखी जा सकती हैं। इस प्रतिमा की अन्य विशेषताएँ वैसी ही हैं, जैसा कि उपर्युक्त प्रतिमा-विवरण में उपलब्ध है (आकृति संख्या 30) ।

गंडई (राजनय गाँव - म0प्र0 ) के एक महादेव मंदिर (चौदहवीं शताब्दी ई0 ) के प्रवेश-द्वार के चौखट के सिरदल का वाम पार्श्व चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा तथा दक्षिण पार्श्व अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के अंकनों से मण्डित है। उक्त स्थान पर उच्चित्रित रथिका-बिम्ब में हरिहर आसीन अंकित हैं। दाहिने ऊँचे उठे हाथ में त्रिशूल

एवं निचले हाथ में अक्षमाल, सबसे नीचे वाहन नंदी तथा वामार्द्ध भाग में हाथों में शंख, चक्र एवं तथा नीचे की ओर वाहन गरुड़ उच्चित्रित हैं ( आकृति संख्या 31 )।

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर ( म0प्र0 ) -संग्रहालय में चतुर्भुजी हरि एवं हर एक ही शिलापट्ट पर अलग-अलग आसीन प्रदर्शित हैं । हरि के मस्तक पर किरीटमुकुट, कानों में कुण्डल, कण्ठमाल, कन्धे से लटकते यज्ञोपवीत एवं वनमाल सुशोभित हैं । चरण-चौकी पर वाहन गरुड़ उच्चित्रित है । चतुर्भुजी हरि के दोनों ही ऊर्ध्व हस्त खण्डित एवं अधो हस्त में शंख एवं सनालपद्म उच्चित्रित हैं । हर के मस्तक पर करण्डमुकुट, कानों में सर्पकुण्डल और चरणचौकी पर वाहन नंदी अंकित हैं। चतुर्भुजी हर के तीन हाथ खण्डित हैं एवं दक्षिणार्द्ध निचला हस्त अक्षमाल लिए अभय-मुद्रा में प्रदर्शित है (आकृति संख्या 32 ) ।

गढ़ (रींवा, म0प्र0 ) के कुस्तर-महादेव-मंदिर की हरिहर-प्रतिमा (दसवीं शताब्दी ई0 ) भी चतुर्भुजी है, जिसमें देवता स्थानक एवं समपाद प्रदर्शित हैं । ऊर्ध्व बाहों में चक्र एवं त्रिशूल तथा निम्न बाहों में शंख एवं अक्षमाल उच्चित्रित हैं । वामार्द्ध में वैष्णव आभूषण, देवी एवं परिचारिका तथा दक्षिणार्द्ध में शिव आभूषण, देवी एवं परिचारिका का शिल्पियों ने सफलता के साथ उच्चित्रण किया है (आकृति संख्या 33 ) ।

कृष्ण-शिलापट्ट पर उच्चित्रित एक उल्लेखनीय चतुर्भुज हरिहर-प्रतिमा (पुरन्धर, पुणे, महाराष्ट्र तेरहवीं शती ई0 ) प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में प्रदर्शित है । शिल्पियों ने ऐड़ी से चोटी तक उच्चित्रण का सफल प्रयास किया है । वैष्णव भाग में वैष्णव आभूषण, आयुध (गदा एवं शंख ) लक्ष्मी एवं वाहन गरुड़ तथा शैव भाग में शैव आभूषण, आयुध ( त्रिशूल एवं अक्षमाल ) उच्चित्रित हैं । प्रतिमा के अन्य लक्षण शास्त्रीय नियमों के द्वारा निर्धारित हैं (आकृति संख्या 34 )।

अष्टभुजी प्रतिमाएँ : मल्हार ( बिलासपुर, म०प्र० ) से डॉ० कृष्ण दत्त बाजपेयी-कृत उत्खनन में प्राप्त एवं डॉ० हरिसिंह गौड विश्वविद्यालय सागर-संग्रहालय में प्रदर्शित एक विशिष्ट हरिहर-प्रतिमा ( दसवीं शती ई० ) प्रदर्शित है । यह अष्टभुजी प्रतिमा योगासन-मुद्रा में प्रदर्शित है और इस कारण यह एक उल्लेखनीय उदाहरण हो जाता है । इसके वामार्द्ध में सनालपद्म, शंख, चक्र एवं गदा अंकित हैं तथा दक्षिणार्द्ध भाग में कपाल, खट्वांग, अक्षमाल एवं त्रिशूल उच्चित्रित हैं । चरण-चौकी पर वाहन नंदी एवं गरुड़ के अंकन प्राप्त होते हैं ( आकृति संख्या 35) ।

विदिशा-संग्रहालय ( सं०स० 80 ) में प्रदर्शित एक खण्डित हरिहर ( दसवीं शती ई० ) का ऊर्ध्व भाग मात्र अवशिष्ट है । मस्तक के पीछे विभिन्न मांगलिक प्रतीकों से अलंकृत शिरश्चक्र आकारित है । यह एक अष्टभुजी प्रतिमा है, जिसके दक्षिणार्द्ध एक हाथ त्रिशूल-युक्त और शेष तीनों हाथ एवं वामार्द्ध के चारों हस्त खण्डित हैं । मस्तक के पार्श्वों में उड़ते विद्याधर-युग्म आकारित हैं ( आकृति संख्या 36) ।

<u>हरिहराभेद</u> की एक उल्लेखनीय चरमावस्था वह थी, जिसमें विष्णु शिव के आयुध के साथ एवं शिव विष्णु के आयुध के साथ प्रदर्शित किये गये । इस सम्बन्ध में एक साहित्यिक परम्परा भी मिलती है, जिसका उल्लेख हरिवंश में हुआ है । इस ग्रंथ में एक स्वप्न-वृत्तान्त का वर्णन आता है, जिसमें शिव एवं विष्णु एक-दूसरे के आयुध को धारण किए हुए देखे गये ।[1] एक पहाड़ी चित्रकला में शिव एवं विष्णु अपने-

---

1. हरिवंश ( मन्मथनाथ दत्त-अनूदित) ,
   कलकत्ता, 1897, पृष्ठ 791.

अपने आयुधों को परस्पर बदलते हुए दिखाये गये हैं । इस दृश्यांकन में शिववाहन नंदी विष्णु की आराधना करता हुआ एवं विष्णु-वाहन गरुड़ शिव की आराधना करता प्रदर्शित है । इसी भाँति पार्वती, विष्णु की आराधना करती एवं लक्ष्मी शिव की आराधना करती निरूपित है ।[1]

उल्लेखनीय है कि हरिहर-प्रतिमा के अधिक केन्द्र उत्तरी भारत से मिले हैं, उदाहरणार्थ, अणहिलपाटन, वीसलनगर, मोढ़ेरा, बडोली, झालरापाटन, कोटा, उदयपुर, ओसियाँ, मंदसौर, मल्हार, विदिशा, धार, खजुराहो, सारनाथ, कुर्किहार, महोबा, गुर्गी, जमसोत, गया, नालन्दा, भुवनेश्वर, पहाड़पुर एवं त्रिपुरी । तुलनात्मक दृष्टि से दक्षिणी भारत में इस कोटि के केन्द्र कम ही हैं, उदाहरणार्थ ; अयहोड़े, बादामी एवं एलौरा आदि । उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में हरिहर की मूर्तियाँ कम ही मिलती हैं । परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि दक्षिण भारत में वैष्णव एवं शैव मतावलम्बियों में उतनी अधिक सद्भावना नहीं स्थापित हो सकी थी । ये मूर्तियाँ दक्षिण भारत के शिल्पशास्त्रों के विधानों से अधिक साम्य रखती हैं । उदाहरणार्थ एलोरा में हरिहर-स्वरूप की दो मूर्तियाँ, जो कि गुफा-संख्या 16 में हैं, दक्षिणी शिल्प-शास्त्रों के विधानों के अनुसार निर्मित हैं ।

उपर्युक्त साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक सामग्री से स्पष्ट है कि हरिहर-प्रतिमाएँ सामान्यतया समपाद स्थानक-मुद्रा में खड़ी मिलती है; परन्तु अपेक्षाकृत आसीन प्रतिमाओं की संख्या कम है । हरिहर बहुधा द्विभुजी अथवा चतुर्भुजी दिखाये जाते थे । [दशभुज] (अपराजितपृच्छा में वर्णित) अथवा विंशतिभुज (अग्नि पुराण में

---

1. डी०सी० भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, आकृति 8 (ग्रंथ के अंत में)।

वर्णित) हरिहर-प्रतिमाएँ विरल हैं। इन विभिन्न कोटियों में सामान्य विशेषताएँ हर्यर्द्ध (वाम भाग) तथा शिवार्द्ध (दक्षिण भाग) - दोनों में ही एक सी मिलती है। हर्यर्द्ध भाग में किरीटमस्तक, वैष्णव आयुध एवं वाहन तथा देवी और शैव भाग में जटामुकुट, शैव आयुध, शैव-वाहन तथा देवी आदि के अंकन देखे जा सकते हैं। उल्लेखनीय हैं कि वैष्णव एवं शैव धर्म के विस्तार के साथ विदेशों में भी हरिहर - प्रतिमा एवं मंदिर बनने लगे, जिनके दृष्टांत अधिकतर नेपाल एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया में मिलते हैं।

-----::0::-----

## अध्याय 5

## 'विदेशों में हरिहरोपासना'

## अध्याय 4

## 'विदेशों में हरिहरोपासना'

प्रत्यन्त देश नेपाल में भी, भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के कारण प्रसवित धार्मिक सद्भावना एवं सहिष्णुता की प्रवृत्ति, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही । उदाहरणार्थ, पशुपतिनाथ के मन्दिर में स्थापित शिवलिंग के एक मुखविशेष को लोग बुद्ध-मुख मानते हैं । बौद्ध मतावलम्बी वर्ष में एक बार इस लिंग की पूजा औपचारिक रूप से करते हैं । लिंग के ऊपर अक्षोभ्य का मुकुट लिंग के मस्तक पर स्थापित करके पूरे लिंग को स्थानीय जन तथागत के चार मुख मानते हैं ।[1]

नीलकंठ के मंदिर में विष्णु की जलशयन-प्रतिमा को बौद्ध लोकेश्वर प्रतिमा मानते हैं । वहाँ महाकाल की पूजा हिन्दू एवं बौद्ध – दोनों ही करते हैं और हारीती की पूजा हिन्दू लोग शीतला देवी के रूप में करते हैं । यहाँ पर हम धर्म-सामंजस्य की भावना का प्रतिबिम्ब पाते हैं ।[2]

जहाँ तक हरिहराभेद का प्रश्न है, इसका प्रतिबिम्ब हम स्कन्द-पुराण के

---

1. पाल पी0, 'नोट्स आन दी टेम्पुल्स आॅफ पशुपतिनाथ, नेपाल' प्रोसीडिंग्स आॅफ दी इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्ली, 1961.

2. पाल, पी0, वैष्णव आइकनोलाॅजी इन नेपाल, पृष्ठ 127.

नेपालमहात्म्य में पाते हैं । इस खण्ड में कुछ कथाएँ मिलती हैं, जिसमें हरि एवं हर के एकीभूत होने का संकेत मिलता है । उदाहरणार्थ, विष्णु द्वारा शिवलिंग का अभिषेक कराते हुए घोषित किया गया कि जो उपासक कृष्ण के द्वारा स्थापित इस लिंग का दर्शन करेंगे, उनको विष्णुलोक की प्राप्ति होगी । इसी प्रकार एक दूसरी कथा में वर्णन मिलता है कि जो व्यक्ति हरि एवं हर में भेद स्थापित करता है वह भयंकर पापी एवं पाखण्डी है और उसे घोर नरक की प्राप्ति होती है । नेमि के मुखों से जो शब्द कहलाये गये हैं उनकी सम्पुष्टि स्वयं पशुपतिनाथ सहर्ष करते हुए दिखाये गये हैं ।[1]

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि वैष्णव एवं शैव – इन दो प्रमुख भारतीय धर्मों में सामंजस्य एवं सद्भावना-बोधक हरिहर-प्रतिमा की अर्चना की प्रथा भारतीय संस्कृति के प्रवेश एवं प्रसार के साथ विदेशों में भी प्रचलित हुई; जिनमें सर्वप्रथम, उत्तरी प्रत्यन्त-देश नेपाल उल्लेखनीय हो जाता है । इस सम्बन्ध में प्रतिमात्साक्ष्य के अतिरिक्त आभिलेखिक साक्ष्य भी उल्लेखनीय हैं । शक् संवत् 489 = 567 ई0 के एक लेख से ज्ञात होता है कि स्वामीवर्त नामक व्यक्ति ने शंकर-नारायण की प्रतिमा की स्थापना कराई थी, जिससे तात्पर्य हरिहर-प्रतिमा से हैं । इस लेख में शंकर-नारायण को सम्पूर्ण जगत् के उद्भव, स्थिति एवं विनाश का कारक माना गया है ( सकलभुवन-सम्भव-स्थिति-प्रलयकारणं )[2] हिन्दू अवधारणा के अनुसार जगत् की सृष्टि, स्थिति

---

1. स्कन्द पुराण, हिमवंत काण्ड, नेपाल महात्म्य, 11, 1, 12, 1-6, पी0एल0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 127-128.

2. पाल पी0, वैष्णव आइकॉनोलॉजी इन नेपाल, पृष्ठ 128.

एवं विनाश-ये तीन शक्तियाँ तीन पृथक् देवों से सम्बद्ध हैं, परन्तु धर्म-समन्वय की भावना की जागृति के कारण ये तीनों ही शक्तियाँ शंकर-नारायण (हरिहर) से यहाँ सम्पृक्त की गई हैं ।

नेपाल के सोलहवीं शताब्दी ई० के एक लेख में वहाँ हरिहर-पूजा की परम्परा के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जो कि "ॐ नमो हरिहराभ्याम्" से आरम्भ होता है । इसमें हरिहर को सृष्टि के उद्भव, स्थिति एवं विनाश का कारक माना गया है । इस अभिलेख में इस देवता की पूजा, धर्म, अर्थ और काम की सम्पूर्ति के उद्देश्य से की गई है । उन्हें इन शक्तियों का प्रदायक माना गया है ( हरिहरौ धर्मार्थकामप्रदौ )[1] । इसमें उन्हें तीनों लोकों का गुरु कहा गया है ( अपि च योऽसौ सर्वत्रिभुवनगुरुः ) । इसके अनुसार यह सर्वशक्तिमान् देवता अखिल भुवन को धारण करता है (अखिलं भुवनं धार्यते येन) ।

इस लेख में हरिहर के युग्म रूप के प्रतिमा-लक्षणों का विवरण भी प्राप्य है । इसके अनुसार मुरारीश्वर ( हरिहर ) के दोनों भागों का स्पष्ट संकेत होना चाहिए । शंकर-नारायण की सोलहवीं शताब्दी की एक संयुक्त प्रतिमा की चरण-चौकी पर एक लेख मिलता है, जिसमें उनके प्रतिमा-लक्षणों का विवरण मिलता है । शिव-करों में कपाल एवं अक्षमाल तथा विष्णु-करों में शंख एवं पद्म प्रदर्शित हैं । इसमें शिव-वाहन नंदी तथा विष्णु-वाहन नागारि ( नाग + अरि = गरुड ) होना चाहिए । उल्लेखनीय हो जाता है कि उक्त हरिहर-प्रतिमा इन्हीं सामान्य लक्षणों से युक्त है ।[2]

---

1. रेग्मी, मेडिवल नेपाल, 3, पृष्ठ 93.

2. रेग्मी, पूर्वोक्त, 3, पृष्ठ 93.

हरिहर की अष्टभुजी प्रतिमा काठमाण्डू के एक देवालय की भित्ति की रथिका में अंकित मिलता है। इसमें हरिहर समपाद एवं स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं। शिवार्द्ध का सूचक जटामुकुट एवं सर्पकुण्डल है, जबकि हर्यर्द्ध का द्योतक किरीट-मुकुट एवं कुण्डल हैं। वामार्द्ध चारों करों में वैष्णव आयुध शंख, चक्र, गदा एवं पद्म प्रदर्शित हैं, जबकि दक्षिणार्द्ध चारों करों में त्रिशूल, अक्षमाल, डमरू एवं धनुष अंकित हैं।[1] यहाँ उल्लेखनीय है कि शिवायुध के रूप में धनुष का उल्लेख यहाँ असामान्य सा लगता है। परन्तु ध्यातव्य है कि सदाशिव के आयुधों की सूची में विष्णु-धर्मोत्तर में धनुष के होने का उल्लेख मिलता है। इस प्रतिमा में हरिहर के वाहन नंदी एवं गरुड की मिश्रित प्रतिमा आयुध-पुरुष के रूप में निर्मित है। इस मिश्रित रूप में गरुड किरीटमुकुट एवं पक्षधारी है तथा नंदी के सींग एवं उनके आगे के दोनों खुर के चिह्न अंकित हैं। यह एक विलक्षण कोटि का अंकन माना जा सकता है, जिसका नमूना अन्यत्र नहीं मिलता। इस प्रतिमा में हरिहर की पत्नियों (पार्वती एवं लक्ष्मी) के अंकन भी मिलते हैं।[2] नेपाल की हरिहर-प्रतिमाओं एवं अभिलेखों (प्राचीन एवं मध्यकालीन) के जो उपर्युक्त उदाहरण मिलते हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि पार्श्ववर्त्ती देश नेपाल में भारतीय सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण हरिहर-पूजा समान रूप से प्रचलित थी।

दक्षिण-पूर्व-एशिया में वैष्णव एवं शैव धर्मों के प्रवेश एवं विस्तार के साथ इनके समन्वयवादी देवता हरिहर की पूजा और उपासना एवं तत्सम्बन्धी मंदिरों के निर्माण का होना इस भू-भाग में विशेष रूप से प्रचलित हुआ, जिसके प्रचुर आभिलेखिक

---

1. रूपमण्डन, अध्याय 4, 23-26.

2. रेग्मी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 36.

प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं । इनसे ज्ञात होता है कि वहाँ इस देवता की पूजा 'शंकराच्युत', 'हराच्युत', 'हरिशंकर', 'विष्णवीश', 'शंकरनारायण', 'विष्णु-शिव' तथा 'परमेश्वर-शार्ङ्गिण' आदि नामों से होती थी । कम्बुज के बनोहर नामक स्थान पर ईंटों-द्वारा निर्मित मंदिर के शैलोत्कीर्ण (द्वार शाखा) के ऊपर संस्कृत भाषा में सतरह पंक्तियों में एक लेख भववर्मन् नामक राजा के एक पदाधिकारी द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था । उसने इस मंदिर में कुछ हिन्दू प्रतिमाओं के साथ शंभु-विष्णु ( हरिहर ) की प्रतिमा स्थापित की थी ।

इस समन्वयवादी देवता की पूजा का उल्लेख अंग-पु ( वत-पु ) नामक स्थान से प्राप्त संस्कृत भाषा में लिखे गये एक अभिलेख में ईशानवर्मा नामक राजा के राज्य में ईशानदत्त नामक एक यति के द्वारा 'शिव-विष्णु' ( शंकराच्युत )[1] की प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा का विवरण मिलता है । यह अभिलेख वस्तुतः हरिहर (हराच्युत )[2] की पूजा से आरम्भ होता है ।

शक संवत् 549 (627 ई0 ) में वट-चक्रेत के मंदिर के अभिलेख में उक्त नरेश

---

1. "शंकराच्युतयोरर्द्धशरीरप्रतिमामिमाम् ।"

   आर0सी0 मजूमदार, इंस्क्रिप्शंस ऑफ कम्बुज, पृष्ठ 23.

2. "जयतो जगतां भूत्यै कृतसन्धी हराच्युतौ ।"

   वही, पूर्वोक्त, पृष्ठ 24.

( ईशानवर्मा ) का उल्लेख मिलता है, जो कि दक्षिण-पूर्व एशिया में हरिहर-पूजा के प्रवेश एवं विस्तार के विषय में उल्लेखनीय सूचना प्रदान करता है । इससे ज्ञात होता है कि 7वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह एक लोकप्रिय धर्म का रूप ग्रहण कर चुका था । संस्कृत भाषा में संरचित इस अभिलेख में अनुष्टुभ एवं स्रग्धरा के सुन्दर छन्द उपलब्ध होते हैं । इस लेख के अनुसार उक्त नरेश के किसी सामन्त द्वारा ( ताम्रपुर नामक स्थान में ) 'हरि-शंकर' की प्रतिमा की स्थापना का विवरण मिलता है, जिसका वह उपासक था ।[1] लेख के अंत में हरिहर-प्रतिमा की स्थापना का पुनः सन्दर्भ देते हुए इसे स्वर्ग एवं अपवर्ग का प्रदायक कहा गया है ।[2]

इसी काल के लगभग ( शक-संवत् 589 = 668 ई0 ) के वट-प्रेई-वर-शिला-लेख से ज्ञात होता है कि कम्बुज-नरेश जयवर्मा प्रथम के राज्यकाल में कगलितयमिन् नामक व्यक्ति के द्वारा हरिहर ( विष्णवीश )[3] की प्रतिमा स्थापित की गई

---

1. "श्रद्धापूर्व्वेन विधिना सरीष्टौ हरिशंकरौ ।"
   आर0सी0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 30.

2. "हरितनुसहितं स्थापयामास शम्भुम्" ।
   वही, पूर्वोक्त, पृष्ठ 31.
   (स्टडीज इन संस्कृत इंस्क्रिप्शंस आफ ऐशेंट कम्बोडिया, महेशकुमार शरण, पृष्ठ 85.)

3. "श्रीशम्भो प्रतिमाभिहैव निहिता ----- ।"
   आर0सी0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 47,
   (महेशकुमार शरण, स्टडीज इन संस्कृत इन्स्क्रिप्शंस आफ ऐशेंट कम्बोडिया, पृष्ठ 89 )

थी । बराई-अभिलेख ( शक संवत् 598 = 676 ई0 ) से ज्ञात होता है कि किसी भक्त ने 'श्री-शंकर-नारायण' की प्रतिमा की स्थापना की थी ।[1] यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि यह लेख छठीं शताब्दी ई0पू0 से ही दक्षिण-पूर्व-एशिया में हरिहर-पूजा के प्रचलन का परिचायक है ।

7वीं शताब्दी से लेकर 12हवीं शताब्दी ई0 तक की कालावधि में दक्षिण-पूर्व एशिया से हरिहर-पूजा से सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त होते हैं । उदाहरणार्थ, कम्बुज के प्रेई-कुबस नामक प्रान्त के कैमन नामक ग्राम से प्राप्त एक लेख में किसमित्र नामक नागरिक द्वारा 'विष्णु-शिव'[2] की प्रतिमा की स्थापना का वर्णन मिलता है । इस लेख के खमेर पाठ में हरिहर को 'यज्ञपतीश्वर'[3] कहा गया है । इस लेख के अनुसार कृष्णमित्र के एक सम्बन्धी ने इस प्रतिमा को भूमिदान किया था ।

हरिहरोपासना के सम्बन्ध में कम्बुज का प्रेई-नियेन-लेख ( शक-संवत् 648 = 716 ई0 ) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इस लेख के अनुसार भास्करपाल नामक पदाधिकारी ने इस स्थान पर वर्तमान एक मंदिर में हरिहर-प्रतिमा की स्थापना की थी । उसने इस प्रतिमा को 30 दास, अनेक दास-पुत्र एवं भूमि दान में दिया था । इसके अतिरिक्त सिद्धगण नामक एक पदाधिकारी ने 50 दास ( संतोनोसहित ) तथा भूमि दान में इसे दिया था । चन्द्रसेन नामक एक तीसरे पदाधिकारी ने इसे 15 दास एवं भूमि

---

1. "विष्ण्वीशावेकमूर्ती कगलितयमिना स्थापितावत्र भक्त्या"
   र0च0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 41.

2. रमेशचन्द्र मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 52.

3. महेशकुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 132.

दान में दिया था ।[1] इससे न केवल कम्बुज में दास-प्रथा के प्रचलन की ही सूचना मिलती है, अपितु हरिहर-मंदिर में भूमिदान के अतिरिक्त दासदान, दासपुत्र एवं पुत्रियों के भी दान का विवरण मिलता है । ये दास बेगार से मुक्त थे ।[2]

कम्बुज-नरेश इन्द्रवर्मा के बंकोक-लेख ( शक संवत् 803 = 881 ई० ) के अनुसार इस नरेश एवं उसके पुत्रों ने शिव एवं विष्णु के ( ईशानशार्ङ्गिणोः ) के संयुक्त रूप ( अभिन्नतनु ) का निर्माण कराकर उसे देवालय में स्थापित किया था ।[3] इसके अतिरिक्त इसमें विष्णु, इन्द्राणी, महिषासुर-मर्दिनी, नन्दिका एवं शिवलिंग की भी स्थापना का विवरण मिलता है ।[4] इस सम्बन्ध में बकसेई-चमक्रांग = लेख ( शक संवत् 869 = 947 ई० ) भी उल्लेखनीय हो जाता है, जो कि अंगकोर - थॉम के किंचित् दक्षिण में एक पर्वत की चोटी पर निर्मित मंदिर में प्राप्त होता है । इसके निर्माण का श्रेय कम्बुज-नरेश राजेन्द्रवर्मा को था । इस अभिलेख के अनुसार उक्त नरेश ने हरिहर-प्रतिमा (परमेश्वर-शार्ङ्गमूर्ति ) की स्थापना कराई थी ।[5]

---

1. र०च० मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 56.

2. महेश कुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 197.

3. "अभिन्नतन्वोरीशानशार्ङ्गिणो प्रतिरूपकम् ।
   कृत्वा तत्स्थापनविधौ तनयान् सोप्ययोजयत् ।।"
   र०च० मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 68.

4. महेशकुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 92.

5. महेशकुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 103.
   र०च० मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 185.

अंगकोर के ही लगभग दस मील उत्तर एक पहाड़ी की चोटी पर निर्मित देवालय में संस्कृत एवं ख्मेर — दोनों ही भाषाओं में यशोवर्मा नामक नरेश-द्वारा निर्मित एक मंदिर में एक अभिलेख मिलता है ( फ्नोम देई के मंदिर का लेख, जिसकी तिथि शक संवत् 815 = 893 ई0 है ) । इसमें इस राजा के द्वारा हर एवं अच्युत (विष्णु) के सम्पृक्त स्वरूप हरिहर ( हरीश्वर) की प्रतिमा की स्थापना का विवरण मिलता है ।[1] इस लेख से ज्ञात होता है कि इस पर्वत का प्राचीन नाम श्रीपुरन्दर था । लेख के संस्कृत-भाग में मंदिर को दान में प्राप्त भूमि की सीमाओं का विवरण भी मिलता है ।[2]

कम्बुज-नरेश जयवर्मा पंचम के शक-संवत्(894=972 ई0) का प्रसत-कोम्पस-अभिलेख भी इस दिशा में महत्वपूर्ण है । इसके अनुसार उक्त नरेश ने द्विजेन्द्रपुरी में द्विजेन्द्रनामक विष्णु-महेश्वर-लिंग की स्थापना की थी । यह एक चतुर्मुखी लिंग है, जिसके एक ओर उक्त अभिलेख उत्कीर्ण है ।[3] लगता है, कि इस स्थान का प्राचीन नाम द्विजेन्द्रपुरी था । विष्णु-महेश्वर से तात्पर्य हरिहर से है ।

---

1. "जगतश्शंकरौ वन्दे नित्यचैतौ हरीश्वरौ ।।
   श्रीहराच्युतयोस्सीमा श्रीयशोवर्म्मणा कृता ।
   श्री हराच्युतयोर्दत्ता श्रीपुरन्दरपर्व्वते ।।"

   र0च0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 150.

2. महेश कुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 98.

3. "लिंगं विष्णुमहे ---- ईशं द्विजेन्द्राद्वयम्'

   र0च0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 296.

कम्बुज का सबसे सुप्रसिद्ध लेख ( स्टाक काक थॉम स्तेल अभिलेख; शक संवत् 1074 = 1152 ई0 ) देवराज - सम्प्रदाय का विवरण देते हुए प्रसंगतः कम्बुज में हरिहरोपासना के प्रचलन पर भी प्रकाश डालता है । यह अभिलेख एक देवालय की भित्ति पर प्राप्य है, जिसके अनुसार सूर्यवर्मा प्रथम ने शिव-नारायण की प्रतिमा की स्थापना कराई थी और इस मंदिर को कुछ दास भी समर्पित किये जाने का इसमें उल्लेख मिलता है ।[2] यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर — दोनों ही भाषाओं में निबद्ध है । इसमें एक पुरोहित-परिवार के ढाई सौ वर्षों के भीतर के काल में वंशानुगत नाम उल्लिखित हैं । इसमें उन अनेक नरेशों के नाम मिलते हैं, जिनमें से कुछ की इस परिवार ने सेवा की थी ।[2]

12हवीं शताब्दी का वात-फु-स्टेल-अभिलेख ( शक-संवत् 1061=1139 ई0 ) भी इस स्थान पर उल्लेखनीय हो जाता है, जिसमें सूर्यवर्मा द्वितीय के द्वारा शंकर-नारायण-प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख प्राप्य है । इसमें भी इस देवालय को भूमि एवं दासों के दान का विवरण मिलता है । उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि दक्षिण-पूर्व-एशिया में भारतवर्ष के दो प्रमुख धर्मों ( वैष्णव एवं शैव ) के समन्वय-वादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाली हरिहरोपासना विशेष रूप से लोक-प्रिय थी ।

-----::0::-----

---

1. आर0सी0 मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 368.

2. महेश कुमार शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 114.

# अध्याय 5

## 'हरिहराभेद' के प्रकारान्तर

## अध्याय 5

## 'हरिहराभेद' के प्रकारान्तर

हरिहरोपासना के अन्य विविध स्वरूपों में कृष्ण-शंकरोपासना, शिव-नारायणोपासना, शिव-रामोपासना तथा कृष्ण-कार्तिकेयोपासना उल्लेखनीय हो जाते हैं। जहाँ तक कृष्ण-शंकरोपासना का प्रश्न है, कृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में सुप्रतिष्ठित हो चुके थे। यही कारण है कि विष्णु-मंदिरों में कृष्ण-लीला से सम्बन्धित उच्चित्रण प्राप्त होते हैं। इसी भाँति विष्णु के रामावतार की अवधारणा के कारण राम-कथा से भी सम्बन्धित दृश्यांकन मंदिर-कला में द्रष्टव्य है, जैसा कि देवगढ़, भीतरगाँव एवं एरण आदि के मंदिरों में देखा जा सकता है। कृष्णशंकरोपासना, शिव-नारायणोपासना तथा कृष्ण कार्तिकेयोपासना भी वैष्णव एवं शैव धर्मों में सद्भावना एवं ऐक्य के प्रतीक हैं।

कृष्ण-शंकर : कृष्ण-शंकरोपासना के स्पष्ट प्रमाण कृष्ण-शंकर प्रतिमाएँ हैं, जिनके शास्त्रीय लक्षण कुछ प्रमुख शिल्प-शास्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं, उदाहरणार्थ, अपराजितपृच्छा तथा देवतामूर्तिप्रकरण। इन दोनों के अनुसार कृष्ण-शंकर का वामार्द्ध कृष्ण-रूपीय तथा दक्षिणार्द्ध शंकर-रूपीय हो। फलतः दक्षिणार्द्ध में जटाभाग, सर्पकुण्डल और हाथों में अक्षमाल एवं त्रिशूल आदि सम्बन्धित शैव आयुध प्रदर्शित किये जायँ। वामार्द्ध भाग में मोरमुकुट, कान में मकरकुण्डल तथा हाथ में चक्र एवं शंख धारण किए आकारित हों। उल्लेखनीय है कि शिल्प-विषयक इन दोनों ही ग्रन्थों में कृष्ण-शंकर की एकमुखी एवं चतुर्मुखी प्रतिमा के विधान का उल्लेख प्राप्त होता है।[1]

---

1. अपराजितपृच्छा, 213, 28-29.
   देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 33-34.

वैष्णव एवं शैव धर्मों में समन्वय व्यक्त करने वाली कृष्ण-शंकर प्रतिमाएँ, मिश्रित मूर्ति का सुन्दर परिचय देती हैं । इस कोटि की एक उल्लेखनीय प्रतिमा लखनऊ-संग्रहालय में सुरक्षित है जो कि उनके एकमुख एवं चतुर्भुज स्वरूप का वाचक है । इस दृष्टांत में कृष्ण-शंकर समभंग मुद्रा में अंकित हैं । इस स्थानक दृश्यांकन में दक्षिणार्द्ध में शीर्ष भाग जटामुकुट से मण्डित है तथा कान में कुण्डल प्रदर्शित है । वामार्द्ध में शीर्ष-भाग किरीटमुकुट तथा कान मकरकुण्डल से युक्त हैं । इस प्रतिमा के पीछे पद्माकृत प्रभामण्डल (शिरश्चक्र) प्रदर्शित है तथा वह ग्रैवेयक, केयूर, कंकण, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, वनमाल आदि लाक्षणिक आभूषणों से विभूषित है । वक्षस्थल के वामार्द्ध पर श्रीवत्स का अङ्कांकन हुआ है । प्रतिमा के दक्षिण-पार्श्व में यदि शिव-वाहन नंदी एवं त्रिशूल-पुरुष अंकित हैं, तो वाम पार्श्व में चक्र-पुरुष एवं अंजलि बद्ध गरुडपुरुष वामाकृतियाँ उच्चित्रित हैं । प्रतिमाफलक के ऊर्ध्वभाग पर हवा में उड़ते मालाधारी विद्याधर प्रदर्शित हैं । यह सम्पूर्ण दृश्यांकन अपराजितपृच्छा एवं देवतामूर्तिप्रकरण में प्राप्य कृष्ण-शंकर के प्रतिमा-लक्षणों का एक सटीक उदाहरण माना जा सकता है ।

बिरला अकादमी संग्रहालय, कलकत्ता में कृष्ण-शंकर की एक प्रतिमा मिलती है, जिसमें उनके प्रतिनिधि लक्षण द्रष्टव्य हैं ।[1] गुप्तोत्तरकाल से कृष्ण-शंकर की प्रतिमाएँ अधिक संख्या में मिलने लगती हैं । इनमें बीसलनगर[2], नागदा[3], बोध-गया

---

1. जोशी, नी०क०, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृष्ठ 43.
2. कल्पना देसाई, आइकोनोग्रैफी आफ विष्णु, पृष्ठ 53, फलक 46.
3. सिंह, एस०बी०, ब्रह्मैनिकल आइकन्स इन नार्दर्न इण्डिया, पृष्ठ 188.

के महन्त के व्यक्तिगत संग्रहालय[1] एवं राज्य-संग्रहालय लखनऊ[2] की प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। ये सभी प्रतिमाएँ वस्तुतः समान लक्षणों से युक्त हैं। नागदा की ललितासन प्रतिमा को छोड़कर शेष सभी प्रतिमाएँ समभंग मुद्रा में हैं। इनका दक्षिणार्द्ध शिव-भाग एवं वामार्द्ध विष्णु-भाग का प्रतिनिधित्व करता है। शिवार्द्ध के अनुरूप (अक्षमाल एवं त्रिशूल) तथा हर्यर्द्ध में (चक्र एवं शंख) अंकित हैं। उनके वाहन नंदी एवं गरुड़ यथोचित स्थानों पर प्रदर्शित हैं।

<u>कृष्ण-कार्त्तिकेय</u> : वैष्णव एवं शैव धर्मों के समन्वय के प्रतीक कृष्ण-कार्तिकेय प्रतिमाएँ भी हैं, जिनका विवरण कुछ प्रमुख शिल्पशास्त्रों से मिलता है; उदाहरणार्थ, अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन। अपराजितपृच्छा में विष्णु की बारह मूर्तियों का उल्लेख मिलता है (द्वादशमूर्त्तयः)। इन बारह मूर्तियों में एक कृष्ण-कार्तिकेय-प्रकार भी हैं। इस ग्रंथ के अनुसार कृष्ण-कार्तिकेय अपने हाथों में शंख, गदा, पद्म एवं चक्र तथा शक्ति एवं खेटक धारण किये हों। इस देवता के दोनों ऊर्ध्व करों के

---

1. भारतीय विद्या, जिल्द 1, फलक 1, पृष्ठ 86.

2. अग्रवाल, र०च०, "नागदा के सास-बहू मंदिरों की महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ" शोध-पत्रिका, उदयपुर, वर्ष 14, अंक 4, 1963, पृष्ठ 248.

आयुध कार्त्तिकेय का एवं अधःकरों के आयुध विष्णु ( कृष्ण ) का प्रतिनिधित्व करते हैं ।[1] अपराजितपृच्छा के विवरण के आधार पर रूपमण्डन में कहा गया कि कृष्ण-कार्तिकेय कमल, शक्ति, ढाल और शंख धारण किए हों ।[2] उल्लेखनीय है कि इस

---

1. "अथान्यः संप्रवक्ष्यामि मूर्तिं वै वासुदेवजः ।
   संकर्षणश्च प्रद्युम्नो निरुद्धश्च यथाक्रमम् ।।

   अधोक्षजः कृष्णकार्तिकेयश्च पुरुषोत्तमः ।
   तार्क्ष्यध्वजाच्युपेन्द्रा जयन्तो नारसिंहकः ।।

   जनार्दनो गोवर्द्धनो हरिः कृष्णस्तथैव च ।
   पद्म-गदा-शंख-चक्रे तथैवऽधोक्षजे सदा ।।

   पद्मं कृष्ण-कार्त्तिकेये शक्तिखेटककम्बवः ।
   चक्रपद्मे शंखगदे तथा च पुरुषोत्तमे ।।

   अपराजितपृच्छा, अध्याय 217, श्लोक 24-27.

2. "सकृष्णः कार्त्तिकेयोऽब्जशक्तिखेटककम्बुभिः ।
   गरुडध्वजस्तार्क्ष्यस्थोऽब्जशंखध्वजचिह्नवान् ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 3, श्लोक 22, पृष्ठ 138.

विवरण में कृष्ण-कार्त्तिकेय के समन्वय का आदर्श श्रीमद्भगवतगीता और विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित अवधारणा की परम्परा में आता है ।[1] गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'मैं ही सेनानी स्कन्द (कार्त्तिकेय) भी हूँ ।[2] विष्णुधर्मोत्तर में उल्लिखित है कि चतुरात्मा वासुदेव देवताओं के सेनानी कार्तिकेय (कुमार) के रूप में अभिव्यक्त होते हैं ।[3]

<u>शिव-नारायण</u> : हरिहर के प्रकारान्तरों में शिव-नारायण की भी गणना की जा सकती है, जिसका स्पष्ट उल्लेख मत्स्य पुराण के 'देवाकारप्रमाणवर्णनम्' शीर्षक अध्याय में उपलब्ध होता है । इस ग्रंथ में शिव-नारायण-पूजा को सम्पूर्ण पापों के विनाशक के रूप में देखा गया है । इस पुराण में वर्णित प्रतिमा-विधान के नियमों के अनुसार वामार्द्ध में नारायण (माधव) तथा दक्षिणार्द्ध में शिव (शूलपाणि) का प्रदर्शन होना चाहिए । हरिहर के सामान्यतः उपलब्ध प्रतिमाओं की भाँति इसे भी एकमुख एवं चतुर्भुज निर्दिष्ट किया गया है । नारायणार्द्ध में दोनों बाहें मणि एवं केयूर से विभूषित होनी चाहिए तथा इनमें शंख एवं चक्र-आयुधों के अंकन का विधान मिलता है । कभी-कभी चक्र के स्थान पर गदा के भी धारण का उल्लेख प्राप्त होता

---

1. भट्टाचार्य, दि०च०, पूर्वोक्त, पृष्ठ 18.

2. भगवत्गीता, अध्याय 10, श्लोक 24.

3. "चतुरात्मा हि भगवान् वासुदेवः सनातनः ।
   प्रादुर्भूतः कुमारस्तु देवसेनानिनीष्या ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर, अध्याय 71, श्लोक 7.

है । दोनों ही भेदों में शंखायुध का उच्चित्रण वांछनीय है । नारायण-भाग शांत, लाल अंगुलियों से युक्त, पीतवस्त्रधारी, उज्जवल मेखला-विभूषित एवं मणिनिर्मित आभूषणों से मण्डितचरण निरूपित है । प्रतिमा के दक्षिणार्द्ध द्वारा शिवार्द्ध व्यक्त होता है, जिसमें अर्द्धचन्द्ररूपी आभूषण से मण्डित जटाभार, भुजंगहार एवं भुजंगवलय आदि लक्षण प्रदर्शित होना चाहिए । इस भाग में एक हाथ वरद मुद्रा में तथा दूसरा त्रिशूलधारी होना वांछनीय है । यह कृत्तिवासस्-भाग ( शिवार्द्ध ) व्यालरूपी यज्ञोपवीत, सर्पमेखला तथा नागविभूषित होना चाहिए । इस पुराण के अनुसार इन लक्षणों से युक्त शिव-नारायण प्रतिमा का निर्मित होना स्थापक के लिए सर्वथा कल्याणकारी है ।[1]

---

1. "शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।।

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् ।
बाहुद्वयंच कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ।।

शंखचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम् ।
चक्रस्थाने गदावापि पाणौ दद्याद्गदाभृतः ।।

शंखंचैवेतरे दद्यात् कट्यर्धे भूषणोज्वलम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ।।

दक्षिणार्द्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् ।
भुजंगहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ।
द्वितीयंचापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम् ।
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।
शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ।"

मत्स्यपुराण, 250, श्लोक 21-27.

द्रष्टव्य है कि कृष्ण-शंकर प्रकार के सदृश यह मूर्ति भी एकमुखी और चतुर्भुजी हुआ करती थी, परन्तु दोनों में भेद हस्तायुधों की दृष्टि से है तथा इस प्रतिमाभेद में वस्त्राभूषणों का अतिरिक्त उल्लेख हुआ है। इस अन्तर के अतिरिक्त दोनों कोटि की मूर्तियों ( कृष्ण-शंकर और शिव-नारायण) का मुख्य भेद वामार्द्ध के करों के आयुधक्रम और गदा के उच्चित्रिण की दृष्टि से है।

मत्स्य पुराण के इस विधान द्वारा देवतामूर्तिप्रकरण का शिव-नारायण विवरण अक्षरशः प्रभावित लगता है। इस ग्रन्थ में भी वामार्द्ध का मणिकेयूर उज्ज्वल-मेखला, पीताम्बरधारी होना वांछनीय है। इसी प्रकार हाथ, शंख और चक्र अथवा गदा से युक्त होना चाहिए। शिववाचक दक्षिणार्द्ध अर्धचन्द्रयुक्त जटाभार, सर्पहार, नागमेखला, सर्प-उपवीत, सर्पवलय एवं सर्पचर्मधारी होना चाहिए। शिवार्द्ध कर वरदमुद्रा एवं त्रिशूल से युक्त दिखाये जाएँ।[1]

शिल्परत्न में यही प्रतिमा शंकर-नारायण की अभिधा से निरूपित है। अंतर इस दृष्टि से मिलता है कि शिवार्द्ध करों में त्रिशिख एवं कपाल तथा नारायणार्द्ध करों में चक्र एवं शंख के निर्माण का विधान मिलता है।[2]

---

1. देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 36-41.

2. "ध्येयो जटामुकुटचन्द्र कलार्धमूर्धा-
   त्रीक्षस्तरक्षवजिनपीतदुकूलवासाः ।
   ईशाच्युतस्त्रिशिखचक्रकपालशंखान्
   बिभ्रत् सितासितवपुर्द्विचितात्मभूषः ।।

   शिल्परत्न, उत्तरभाग, अध्याय 25, श्लोक 79.

शिव-नारायण की जिन मूर्तियों के उदाहरण मिले हैं, वे एकमुखी एवं चतुर्भुजी हैं। कालक्रम की दृष्टि से इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित कुटारी-स्तम्भ पर उत्कीर्ण गुप्तकालीन प्रतिमा आती है, जिसमें दक्षिणोर्ध्व कर वरदमुद्रा में तथा दक्षिणाधः कर त्रिशूल पुरूष के सिर पर अवलम्बित है। वामोर्ध्व कर में शंख और वामाधः में चक्र सुशोभित हैं। चक्रधारी वामाधः कर के नीचे चक्रपुरूष का अंकन मिलता है। इस प्रतिमा का मुख खण्डित है। तथापि शीर्ष पर वामार्ध में किरीटमुकुट तथा दक्षिणार्द्ध में जटामुकुट के चिह्न मिलते हैं जो कि शिव-नारायण के प्रतिमा-लक्षण हैं। इनका परिधान पीताम्बर और सिंह-चर्म से युक्त प्रदर्शित ढ़ किया गया है।[1]

शिव-नारायण की एक अन्य एकमुखी एवं चतुर्भुजी प्रतिमा (13हवीं शती ई0) समभंग मुद्रा में प्रदर्शित है एवं प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में वर्तमान है। इसके दोनों ही अधःकर खण्डित हैं एवं उर्ध्व करों में गदा एवं त्रिशूल आयुध-रूप में अंकित हैं। शीर्ष किरीटमुकुट एवं जटामुकुट से मण्डित है। ललाट पर शिव-भाग में उनका तृतीय नेत्र और वामार्द्ध में विष्णु के तिलक का अंकन प्राप्त होता है। शिव-पार्श्व में उनकी शक्ति के रूप में उमा एवं वाहन के रूप में नन्दी प्रदर्शित है। नारायण-पार्श्व में उनकी शक्ति लक्ष्मी और वाहन गरुड़ प्रदर्शित हैं।[2]

---

1. सिंह शि0ब0, ब्रह्मैनिकल आइकन्स इन नार्दर्न इण्डिया, पृष्ठ 188.
   प्रमोद चन्द्र, स्कल्पचर्स आफ इलाहाबाद म्यूजियम, पृष्ठ 51.

2. स्टोन स्कल्पचर्स इन दी प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई, पृष्ठ 42, (आकृति संख्या 123)।

शिव-नारायण की एक प्रतिमा झाँसी जिले के चाँदपुर नामक स्थान पर वर्तमान है, जिसका समय लगभग 12हवीं शती है । इस चतुर्भुजी प्रतिमा में शिवार्द्ध भाग में एक हाथ अक्षमाल-सहित वरदमुद्रा अ एवं दूसरा त्रिशूलयुक्त है तथा नारायणार्द्ध भाग में एक हाथ गदायुक्त एवं दूसरा शंखयुक्त है ।[1]

इस प्रतिमा की पूर्वकालीन शिव-नारायण मूर्ति ( 9वीं शती0 ई0) पटना-संग्रहालय में प्रदर्शित है और चाँदपुर-प्रतिमा के लक्षणों से यह काफी साम्य रखती है । यह भी एक चतुर्भुजी प्रतिमा है जिसमें शिवार्द्ध के कर अक्षमाल तथा त्रिशूल से युक्त हैं, जबकि नारायणार्द्ध कर चक्र एवं गदा से युक्त हैं ।[2]

कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें पंचदेव समूह के किसी देवता विशेष एवं बुद्ध दोनों के एकत्र लक्षण देखने को मिलते हैं । इन्हें युग्म प्रतिमा के उदाहरणों के अंतर्गत् तो नहीं रखा जा सकता किन्तु इनमें दो विभिन्न देवों का एकत्र निरूपण धर्म-सामंजस्य की भावना का परिचायक है । बंगला देश के हबीबपुर नामक स्थान से एक कांस्यनिर्मित प्रतिमा प्राप्य है जो शिव-लोकेश्वर अथवा लोकेश्वर-शिव का उदाहरण मानी जा सकती है । देव के दक्षिण हस्त (वरदमुद्रा ) में अक्षसूत्र प्रदर्शित है तथा बायें हाथ में एक कमण्डलु भी है । स्कन्ध भाग के पास त्रिशूल भी दिखाया गया है । दाहिने स्कन्ध के पास गणेश की आकृति सुशोभित है । उनके मस्तक पर जटामुकुट भी द्रष्टव्य है । इस मूर्ति में ऊर्ध्व भाग में अमिताभ (ध्यानी बुद्ध) शोभा-

---

1. शिव बहादुर सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 188 ((आकृति संख्या 71 ) ।

2. आइकनोग्रैफी ऑफ विष्णु, पृष्ठ 53.

कित हैं । सम्प्रति यह आशुतोष-संग्रहालय कलकत्ता में प्रदर्शित है ।[1] इस मूर्ति को बौद्ध-शिव का उदाहरण माना जा सकता है । स्पष्ट है कि इस प्रतिमा में शिव एवं बुद्ध का एकत्र निरूपण हुआ है, जो कि शैवों एवं बौद्धों में धर्म-सद्भावना का द्योतक है ।

आशुतोष-संग्रहालय कलकत्ता में प्रदर्शित एक अन्य प्रतिमा में सूर्य एवं बुद्ध के लक्षण उपलब्ध होते हैं । इस शिल्पांकन के मूर्धन्य स्थान पर ध्यानी बुद्ध अमिताभ की आकृति प्रदर्शित है । इस प्रतिमा में प्रधान देव सूर्य दशभुज दिखाये गये हैं, जिनमें वे सनालपद्म धारण किए हुए दृश्यांकित हैं । इस उदाहरण को विद्वानों ने बौद्ध सूर्य का उदाहरण माना है ।

वैष्णवों एवं बौद्धों के धर्म-सामंजस्यवाचक एक उल्लेखनीय उदाहरण का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है । इसे बौद्धविष्णु कहा जा सकता है । इसकी ओर विद्वानों का ध्यान मल्लमन्न ( एम०टी० ) ने 'हिन्दू डीटिज़ इन तांत्रिक बुद्धिज्म' शीर्षक ग्रन्थ में आकृष्ट किया है, जिसमें विष्णु-प्रतिमा के ऊपर ध्यानी बुद्ध की आकृति प्रदर्शित है ।[2] उपर्युक्त प्रतिमाओं की भाँति यह उदाहरण भी धर्म-समन्वयपरक प्रवृत्ति के अंतर्गत आता है ।

-----::0::-----

---

1. आ०क०इ०, आकृति संख्या 19.

2. वही, पृष्ठ 25-26 पर उद्धृत

# अध्याय 6

## युग्म प्रतिमा-द्वितीय भेद

## अध्याय 6

## युग्म-प्रतिमा - द्वितीय भेद

युग्म देव - शैव अर्द्धनारीश्वर - युग्म प्रतिमाओं का दूसरा भेद वह था, जिसमें किसी देवता को उनकी शक्ति के साथ संयुक्त प्रदर्शित किया जाता था। इसी कोटि में अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा आती है, जो कि वस्तुतः शिव एवं पार्वती के संयुक्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है।[1] अर्द्धनारीश्वर रूप ही का एक अन्य नाम गौरीश्वर है, जिसके प्रतिमा-लक्षणों का विवरण विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है। इस पुराण में इसे 'गौरीशर्व' भी कहा गया है। इसके अनुसार यह प्रकृति और पुरूष के अभिन्न रूप का द्योतक है।[2] यह मूर्ति शिव एवं शक्ति, नर एवं नारी तथा ब्रह्म एवं माया आदि सृष्टि के द्वन्द्वात्मक मूल कारणों के संयोग का प्रतिनिधित्व करती है। शिव की पूर्णता एवं विस्तार की शक्ति अपरिहार्य है। इस रूप में दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं और एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अपूर्ण हो जाता है। कालिदास ने रघुवंश में इसी तथ्य को अभिव्यंजित करते हुए पार्वती एवं परमेश्वर (शिव) को वाणी एवं अर्थ के ज्ञान-निमित्त इन दोनों की ही भाँति एक दूसरे से

---

1. "सर्वेषामेव देवानां युग्मं युग्मं विधीयते।
   तेषां शक्तिः पृथग्रूपा तदस्त्रवाहनाकृतिः॥"
   रूपमण्डन, 4, श्लोक 36.

2. "अभेदभिन्ना प्रकृतिः पुरूषेण महाभुज।
   गौरीशर्वेति विख्याता सर्वलोकनमस्कृता॥"
   विष्णुधर्मोत्तर, 3, 55/8.

संयुक्त (सम्पृक्त) मानते हुए इस अभिन्न रूप को अनिवार्य निर्धारित किया है। इस रूप में संसार के माता-पिता ( पितरौ ) के तुल्य पार्वती-परमेश्वर वन्दनीय हैं।[1]

कुमारसंभव में इस अवधारणा की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'आप ही ( शिव ) जब स्त्री और पुरुष की सृष्टि करने चलते हैं, उस समय आपके ही स्त्री एवं पुरुष दो रूप बन जाते हैं। वे दोनों ही रूप समस्त संसार के माता-पिता कहे जाते हैं ( पितरौ स्मृतौ )।[1] वस्तुतः यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो अर्द्ध-नारीश्वर की कल्पना वैदिककालीन थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस अण्ड से सृष्टि की उत्पत्ति हुई, उसका आधा भाग पुरुष-तत्व और आधा भाग स्त्रीतत्व था ( तत्वं स्त्रीतत्वंपुमान्" ; अथर्ववेद, 108, 27 )। इसके पूर्व ऋग्वेद में कहा गया कि प्रत्येक पुरुष में अर्द्ध स्त्री-तत्व और प्रत्येक स्त्री में अर्द्ध-पुरुष तत्व विद्यमान होता है।[2]

---

1. "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
   जगतः पितरौ बन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।"

   कालिदास, रघुवंश, प्रथमसर्ग, श्लोक 1.

2. "स्त्रीपुंसावात्मभागौ तेऽभिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
   प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ।।"

   कुमारसम्भवम्, द्वितीय सर्ग, श्लोक 7.

3. ऋग्वेद, 1, 164, 16.

शिव का यह अर्द्धनारीश्वर रूप शैव एवं शाक्त धर्मों में एकता एवं सामंजस्य का वाचक बन गया। वस्तुतः अर्द्धनारीश्वर एक तरह से समन्वयवादिता के आदर्श का प्रतीक है, क्योंकि यह शैव एवं शाक्त — इन दोनों प्रमुख भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों के संयोग को विशिष्टता प्रदान करता है। प्रारम्भिक ग्रंथों में यद्यपि शिव एवं शक्ति के पारस्परिक मिलन एवं संसार के जननी-जनक के रूप में इन दोनों का चित्रण किया गया, तथापि दोनों के संयुक्त रूप की पूजा एवं आराधना के महत्व का प्रतिपादन नहीं किया गया। कारण यह है कि शैव एवं शाक्त धर्मों के अनुयायी शिव एवं शक्ति की पूजा पृथक् रूपों में करते थे। इन दोनों में साम्प्रदायिक शत्रुता एवं कटुता भी वर्तमान थी। इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के निमित्त अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा का उद्भव एवं विकास हुआ। इस अवधारणा का प्रतिबिम्ब पुराणों के भृंगी-आख्यान में उपलब्ध होता है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम गोपीनाथ राव[1] एवं तत्पश्चात् जितेन्द्र नाथ बनर्जी[2] ने आकृष्ट किया था।

भृंगी-कथानक के अनुसार भृंगी ऋषि शिव के कट्टर भक्त थे और उनकी अनन्य भक्ति के कारण किसी अन्य देवी-देवता के समक्ष वे नतमस्तक नहीं होते थे। एक बार शिव, पार्वती के साथ कैलासपर्वत् पर विराजमान थे। इस अवसर पर देवता एवं ऋषि उनकी आराधना के निमित्त वहाँ पहुँचे। अन्य ऋषियों ने शंकर एवं पार्वती दोनों को ही प्रणाम किया तथा उनके समक्ष नतमस्तक हुए, परन्तु भृंगी ऋषि ने अपने

---

1. राव, ए०आ०हि०आ०, जिल्द 2, पृष्ठ 322-323.

2. बनर्जी, डे०हि०आ०, पृष्ठ 552-553.

दृढ़ संकल्प के कारण मात्र शंकर की ही परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया तथा पार्वती की उपेक्षा की । इस कारण पार्वती ने भृंगी पर क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया, जिसके फलस्वरूप हड्डी और चमड़ी को छोड़कर उनके शरीर में कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा । परिणामत: भृंगी ऋषि सीधे नहीं खड़ा हो पा रहे थे । शिव ने अपने भक्त की इस दयनीय दशा को देखकर उनके शरीर-संतुलन के निमित्त एक तीसरा पैर अपने वरदान से उन्हें प्रदान किया । इस पर भृंगी ऋषि हर्षोल्लास में नृत्य करने लगे और शिव के वरदान के निमित्त उनकी प्रचुर प्रशंसा की ।

इस प्रकार भृंगी को अपमानित करने वाली पार्वती की योजना असफल हो गई और इससे उनके मन में अपरम्पार क्लेश हुआ । पार्वती ने शिव से वरदान की प्राप्ति के निमित्त कठिन तपश्चर्या की । उनके इस कठोर तप से प्रसन्न होने के कारण शिव ने पार्वती की, उनके शरीर से संयुक्त हो जाने की, मनोकामना को पूर्ण कर दिया और इस प्रकार वे अपने अर्द्धनारीश्वर-रूप में प्रकट हो गये । पार्वती की तपश्चर्या का उद्देश्य भृंगी की अनन्य शिव-भक्ति को असफल बनाना था । इस प्रकार उन्हें पार्वती की भी परिक्रमा करनी पड़ती थी । भृंगी ने अपने दृढ़-संकल्प को पूर्ण करने के लिए एक ताम्बूल का रूप धारण करके शिव के संयुक्त रूप में प्रवेश किया और भीतर से उन्होंने शिवार्द्ध और उमार्द्ध के मध्य एक छेद कर दिया, जिसके बीच से होकर केवल शिव की ही उन्होंने परिक्रमा की । इस पर पार्वती बहुत आश्चर्यचकित हुई और भृंगी के दृढ़ संकल्प पर प्रसन्न होकर उन्हें दृढ़तर आस्था एवं भक्ति के लिए वरदान प्रदान किया । इस भृंगी-कथानक में शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों की प्रतिस्पर्द्धा एवं अन्तोगत्वा उनकी समाप्ति तथा पारस्परिक सामंजस्य एवं सद्भावना का प्रति-बिम्ब मिलता है । इस कथानक से स्पष्ट है कि अर्द्धनारीश्वर के उद्भव का कारण धर्मसमन्वय की उत्तरकालीन भारतीय संस्कृतिक प्रवृत्ति थी, जिसके कारण युग्म देवों एवं देवियों की पूजा एवं आराधना का विकास होने लगा ।

इन दोनों ही धर्म-सम्प्रदायों के एकतावादी अर्द्धनारीश्वर-रूप के उद्भव के

विषय में शैव एवं वैष्णव — दोनों कोटि के पुराणों तथा यत्र तत्र पुराणेतर साहित्य में भी आख्यानात्मक विवरण उपलब्ध होते हैं । पुराणेतर साहित्य में यहाँ कुमार-सम्भव उल्लेखनीय है, जिसमें एक कथा का उल्लेख मिलता है । इसके अनुसार एक बार नारद विचरण करते हुए हिमालय के पास पहुँचे, जिस अवसर पर उनकी पुत्री पार्वती उनके पास बैठी थीं । उन्हें देखते ही नारद ने यह भविष्यवाणी की कि यह कन्या अपने प्रेम से न केवल शिव की अकेली पत्नी बन कर रहेगी, प्रत्युत उनके आधे शरीर की स्वामिनी (शरीरार्धहरा) भी बनकर रहेगी । फलतः, हिमालय निश्चिंत हो गये और उन्होंने दूसरे वर को खोजने की चिंता छोड़ दी, क्योंकि जैसे मंत्र से दी हुई हवन-सामग्री अग्नि को छोड़ कर और कोई नहीं ले सकता, उसी प्रकार शिव को छोड़ कर पार्वती को और कोई ग्रहण नहीं कर सकता है था ।[1]

<u>शैव पुराणों</u> में अर्द्धनारीश्वर के उद्भव के सम्बन्ध में विभिन्न कथाएँ प्राप्त हैं । उदाहरणार्थ, इनमें से एक के अनुसार ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि में वृद्धि नहीं हो पा रही थी, अतएव उन्होंने कठोर तपस्या द्वारा शिव (भव) को प्रसन्न किया । फलतः ब्रह्मा के ललाट से 'भव' अर्द्धनारीश्वर रूप में प्रकट हुए । शिव

---

1. "तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्द्धहरां हरस्य ।।

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतो स्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः ।
ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ।।"

कुमारसम्भव, सर्ग 1, श्लोक 50-51.

अर्द्धनारीश्वर के उद्भव के धर्मसमन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब वैष्णव पुराणों में भी मिलता है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण[1] के अनुसार ब्रह्मा की टेढ़ी भृकुटि एवं क्रोध-संतप्त ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुई, जिसमें उनका आधा शरीर तो पुरुष का था और आधा स्त्री की भाँति। स्पष्ट है कि इस स्थल पर शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की ओर संकेत है। वस्तुतः इस सन्दर्भ में वैष्णवों की आस्था शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप में व्यक्त की गई है। भागवत पुराण[2] में प्रसंग मिलता है कि प्रीतिवश शिव ने अपना आधा शरीर पार्वती को समर्पित कर दिया। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[3] में प्रकृति एवं पुरुष में अभेद स्थापित कर शिव के अर्द्धनारीश्वर (गौरीशर्व) रूप का विवरण मिलता है जो सम्पूर्ण जगत् में पूज्य था। यहाँ गौरीशर्व से तात्पर्य शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप से है जिसके प्रति वैष्णवों की भी भक्ति इन वैष्णव पौराणिक कथानकों में अभिव्यंजित है।

शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों के पारस्परिक समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के स्वरूप का निर्धारण और मूर्ति-निर्माण-परम्परा का उद्भव

---

1. "अर्धनारीवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।"
   विष्णु पुराण, 1, 7, 13.

2. "प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सता प्रियः ।"
   श्रीमद्भागवत पुराण, 4,4,3.

3. "अभेदभिन्न प्रकृतिः पुरुषेण महाभुज ।
   गौरीशर्वेति विख्याता सर्वलोकनमस्कृता ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 55, 8.

शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप को देखकर ब्रह्मा ने अपनी भूल का अनुभव किया और भव से अपने शरीर को दो भागों में विभक्त करने की प्रार्थना की । तदनन्तर शिव ने अपने भाग से देवी को उत्पन्न किया, जिससे सृष्टि का उद्भव एवं विकास हुआ ।[1] यहाँ उल्लेखनीय है कि शिव के इसी रूप को 'भव-सृज' कहकर यशोधर्मा के मन्दसौर-अभिलेख ( मालव संवत् 589 = 532 ई0 ) में उन्हें संसार की सृष्टि करने वाला कहा गया है ( सृजतु भव-सृजो) [3] ।

कालिका-पुराण में अर्द्धनारीश्वर के उद्भव की कथा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मरकत मणि के समान चमकते हुए शिव के वक्षस्थल पर पार्वती ने अपने प्रतिबिम्ब को देखा, जिससे उन्हें दूसरी स्त्री के रूप की भ्रान्ति हो गई । परिणामस्वरूप उन्होंने शिव से अपनी शंका के समाधान की आकांक्षा प्रकट की । इसके परिणामस्वरूप शिव एवं पार्वती दोनों ने ही अपने शरीर को संयुक्त कर लिया और और शिव का यही रूप अर्द्धनारीश्वर रूप बन गया ।[3] इस पौराणिक कथा में शाक्तों एवं शैवों के धर्म-समन्वय की प्रवृत्ति तथा पारस्परिक सद्भावना एवं सामंजस्य की प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

---

1. शिव पुराण, 3, 3, 4-8.

2. सरकार, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शंस, जिल्द 1, ( प्रथम संस्करण ) पृष्ठ 387.

3. कालिका पुराण, अध्याय 45, श्लोक 17-38.

अर्द्धनारीश्वर के उद्भव के धर्मसमन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब वैष्णव पुराणों में भी मिलता है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण[1] के अनुसार ब्रह्मा की टेढ़ी भृकुटि एवं क्रोध-संतप्त ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुई, जिसमें उनका आधा शरीर तो पुरुष का था और आधा स्त्री की भाँति। स्पष्ट है कि इस स्थल पर शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की ओर संकेत है। वस्तुतः इस सन्दर्भ में वैष्णवों की आस्था शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप में व्यक्त की गई है। भागवत पुराण[2] में प्रसंग मिलता है कि प्रीतिवश शिव ने अपना आधा शरीर पार्वती को समर्पित कर दिया। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[3] में प्रकृति एवं पुरुष में अभेद स्थापित कर शिव के अर्द्धनारीश्वर (गौरीशर्व) रूप का विवरण मिलता है जो सम्पूर्ण जगत् में पूज्य था। यहाँ गौरीशर्व से तात्पर्य शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप से है जिसके प्रति वैष्णवों की भी भक्ति इन वैष्णव पौराणिक कथानकों में अभिव्यंजित है।

शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों के पारस्परिक समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के स्वरूप का निर्धारण और मूर्ति-निर्माण-परम्परा का उद्भव

---

1. "अर्धनारीवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।"
   विष्णु पुराण, 1, 7, 13.

2. "प्रेम्णाऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः।"
   श्रीमद्भागवत पुराण, 4,4,3.

3. "अभेदभिन्न प्रकृतिः पुरुषेण महाभुज।
   गौरीशर्वेति विख्याता सर्वलोकनमस्कृता।।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 55, 8.

हुआ । इसमें शरीर का वामार्द्ध स्त्री-रूप और दक्षिणार्द्ध पुरुष का वाचक था । साम्प्रदाय-सामंजस्यपरक प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब अर्द्धनारीश्वर रूप के उन प्रतिमा-शास्त्रीय लक्षणों में उपलब्ध है, जो कि शिल्प-शास्त्रों, पुराणों, आगम साहित्य एवं प्राविधेकेतर ग्रंथों में प्राप्त है । उक्त कोटि के ग्रंथ तथा अर्द्धनारीश्वर-विषयक आभिलेखिक एवं मौद्रिक-साक्ष्य अर्द्धनारीश्वर-पूजा की लोकप्रियता के परिचायक हैं । कालक्रम की दृष्टि से यहाँ बृहत्संहिता का उल्लेख किया जा सकता है, जिसके अनुसार अर्द्धनारीश्वर-मूर्ति के वामार्द्ध द्वारा पार्वतीरूप एवं दक्षिणार्द्ध द्वारा शिवरूप निवेदित है । शिवार्द्ध में चन्द्रांकित जटामुकुट, अर्द्धनेत्र मण्डित ललाट, त्रिशूल एवं पिनाकधारी दक्षिण हस्त तथा ध्वजा में वृषचिह्न का होना वांछनीय बताया गया है ।[1]

वैष्णव पुराणों में अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के विधान के प्रसंग में शिव एवं देवी के लक्षणों का समान रूप से प्रतिनिधित्व निर्दिष्ट किया गया है । इनमें अर्द्धनारीश्वर के चतुर्भुज स्वरूप का उल्लेख हुआ है । शिवार्द्ध में कपाल एवं त्रिशूल तथा पार्वती-भाग में दर्पण एवं नीलकमल ( नीलोत्पल ) का विधान प्राप्य है । ऊर्ध्वलिंग शिव का मस्तक चन्द्रांकित होगा तथा उनके हाथों में सर्पाभूषण होगा ।[2] <u>मत्स्यपुराण एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण</u> के अनुसार अर्द्धनारीश्वर-मूर्ति द्विभुज, त्रिभुज एवं चतुर्भुज भी हो सकती है । शिव-भाग में जटा-जूट, अर्द्धचन्द्र, सर्पकुण्डल एवं त्रिनेत्र सुशोभित होगा

---

1. "शम्भोः शिरसीन्दुकला वृषध्वजोऽक्षि च तृतीयमपि चोर्ध्वम् ।
   शूलं धनुः पिनाकं वामार्धे वा गिरिसुतार्धम् ।।"
   बृहत्संहिता, 57, 43.

2. मत्स्य पुराण, 260, 1-10, 8-17.

तथा पार्वती-भाग कमनीय श्वेत अथवा रंगीन परिधानों से सुसज्जित, पैरों में महावर, अलंकृत कटिबन्ध और स्त्रीवक्ष से संयुक्त होगा । इन तीनों वर्गों में पार्वती वामार्द्ध और शिव दक्षिणार्द्ध के बोधक होंगे । शिव-हाथों में अक्षमाल एवं त्रिशूल तथा वामार्द्ध हाथों में दर्पण एवं कमल संयुक्त होंगे । इस प्रकार का समन्वित स्वरूप शिव एवं देवी में अभिन्नता का प्रतीक है ।[1] शिवार्द्ध में नागोपवीत एवं भस्मविभूषित शरीर तथा उमार्द्ध में कुंकुम एवं हारविभूषित वपु प्रदर्शित होना चाहिए । शिव के पैर कमल के

---

1. "वामार्धे पार्वती कार्या शिवं कार्यश्चतुर्भुजः ।
   अक्षमालां त्रिशूलं च तस्य दक्षिणहस्तयोः ।।

   दर्पणेन्दीवरौ कार्यौ वामयोर्यदुनन्दन ।
   एकवक्त्रो भवेच्छम्भुर्वामा च दयिता तनुः ।।
   द्विनेत्रश्च महाभाग सर्वाभरणभूषितः ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 54, 2-5.

ऊपर स्थित हों एवं पार्वती के पैर अलक्तक-राग से विभूषित होना चाहिए ।[1] यहाँ

---

1. "अर्धं देवस्य नारी तु कर्त्तव्या शुभलक्षणा ।
अर्धं तु पुरुषः कार्यस्सर्वलक्षणभूषितः ॥

ईश्वरार्धे जटाजूटं कर्त्तव्यं चन्द्रभूषितम् ।
उमार्धे तिलकं कुर्यात् सीमन्तमलकं तथा ॥

भस्मोद्धूलितमर्धं तु अर्धं कुंकुमभूषितम् ।
नागोपवीतिनं चार्धमर्धंहार विभूषितम् ॥

वामार्धे तु स्तनं कुर्यात् घनं पीनं सुवर्तुलम् ।
उमार्धे तु प्रकर्त्तव्यं सुवस्त्रेण च वेष्टितम् ॥

मेखलां दापयेत्तत्र वज्रवैदूर्यभूषिताम् ।
ऊर्ध्वलिंगं महेशार्धं सर्पमेखलमण्डितम् ॥

पादं च देवदेवस्य समपादमोपरि स्थितम् ।
सालक्तकं स्मृतं वामंजनेन (मंजीरेण) विभूषितम् ॥

त्रिशूलमक्षसूत्रं च भुजयोस्सव्ययोस्स्मृतम् ।
दर्पणं चोत्पलं कार्यं भुजयोरपसव्ययोः ॥"

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, राव गो०ना०-ए०आ०हि०आ०;
जिल्द 2, खण्ड 2, पृष्ठ 167-168.

उल्लेखनीय है कि संयुक्त प्रतीक अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा पौराणिक आख्यानों के पूर्व, वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध होती है । यहाँ यम-यमी कथानक में, जिसमें कि स्त्री एवं पुरुष के संयुक्त रूप की अवधारणा प्राप्त होती है, अर्द्धनारीश्वर की कल्पना का पूर्व रूप उपलब्ध होता है । इस प्रकार अर्द्धनारीश्वर - प्रतीक का उद्भव वैदिक काल में ही निर्दिष्ट किया जा सकता है ।[1]

अर्द्धनारीश्वर-पूजा के उल्लेखनीय विकास के कारण शिल्पशास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर के प्रतिमा-विधान के विषय में शास्त्रीय नियम एवं सिद्धान्त मिलना आरम्भ होते हैं । उदाहरणार्थ, अपराजितपृच्छा[2] में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर का विवरण देते

---

1. प्रणबनन्द जैश, 'हिस्ट्री आफ शैविज्म' पृष्ठ 158.

2. "अर्धनारीश्वरं वक्ष्ये उमादेहार्धधारिणम् ।
   वामांगे च स्तनं कुर्यात् कर्णे वै ताडपत्रकम् ।।

   वालिका वामकर्णे तु दक्षिणे कुण्डलं तथा ।
   मुकुटार्धे च माणिक्यं जटाभारं च दक्षिणे ।।

   अर्धे चैव स्त्रियो रूपं सर्वाभरणभूषितम् ।
   पुरुषं दक्षिणे भागे कपालकटिमेखलम् ।।

   त्रिशूलं चाक्षसूत्रं च तद्दक्षिणकरोद्धृतम् ।
   कमण्डलुं दर्पणं च गणेशं वामतस्तथा ।।"

   अपराजितपृच्छा, 213, 21-24.

हुए कहा गया है कि इस प्रतिमा का वाम भाग स्त्रियोचित आभरणों से सुशोभित होना चाहिए । यह रूप उमा का देहार्द्धधारी होना चाहिए । जटाजूट से युक्त पुरुष-भाग में कपाल की मेखला प्रदर्शित होना वांछनीय है । दाहिने हाथों में त्रिशूल एवं अक्षमाल तथा बायें हाथों में दर्पण एवं कमण्डलु प्रदर्शित होंगे । उमार्द्ध में स्तन और कान में ताड़पत्र के अंकन का उल्लेख मिलता है । अर्द्धनारीश्वर के वामकर्ण में बाली और दक्षिण कर्ण में कुण्डल प्रदर्शित होना चाहिए । इस ग्रंथ में अर्द्धनारीश्वर के वाम पार्श्व में गणेश के निरूपण का भी विधान मिलता है ।

आगम-साहित्य एवं दक्षिणी शिल्पशास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति के निर्माण के सम्बन्ध में विधान उपलब्ध होते हैं । इनमें द्विभुज तथा चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर के उल्लेख मिलते हैं । अंशुमद्भेदागम् में वामार्द्ध में पार्वतीरूप और दक्षिणार्द्ध में महेश्वर-रूप का विवरण उपलब्ध होता है ।[1] अर्द्धचंद्रांकित और जटामुकुट से सुशोभित शिव के कानों में नक्रकुण्डल[2], सर्पकुण्डल या केवल कुण्डल होंगे । रौद्र मुख शिव

---

1. "अथार्धनारीमूर्तिः तु वक्ष्ये हं श्रुणु सुव्रत ।
   चतुर्भुजं वा द्विभुजं द्विविधं परिकीर्त्तितम् ।।"

   अंशुमद्भेदागम, पटल 7; राव गो०ना०, ए०, आ०हि०आ०, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 165.

2. "सनक्रकुण्डलं सव्ये तं विना वाथ कारयेत ।।"

   उत्तरकामिकागम, पटल 60, राव, गो०ना०, पूर्वोक्त, पृष्ठ 165.

कमर से घुटने तक बाघम्बर, नागयज्ञोपवीत एवं कटि में सर्पमेखला आदि पहने होंगे ।[1] नारी-वक्षस्थल से युक्त वाम भाग में करण्डमुकुट या सुन्दर जूड़े अंकित होंगे । पार्वती-भाग क्षौमधारी होगा ।[2] मस्तक पर तिलक का चिह्न, कानों में कुण्डल या बाली प्रदर्शित होंगे/। चतुर्भुज मूर्ति में बायाँ हाथ नीचे लटकता हुआ या वृषभ के मस्तक पर स्थित होगा अथवा दर्पण, तोता या पुष्प धारण किए होगा और दाहिना हाथ नीलकमल धारण किए नीचे लटकता हुआ प्रदर्शित होगा । पार्वती श्यामवर्ण मुख वाली और शिव रक्तवर्ण के होंगे ।[3]

---

1. "व्याघ्रजिनाम्बरं सत्यपादं कुंचितमिष्यते ।"
   सुप्रभेदागम, पटल 34, राव, गो०ना०,
   पूर्वोक्त, पृष्ठ 166.

2. "व्याघ्रचर्माम्बरं देवं पार्वतीं क्षौमधारिणीं ।"
   सुप्रभेदागम, पटल 24, रा०गो०ना०,
   जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 165-166.

3. "श्यामवर्णमुखां देवीं रक्तवर्णं हरं तथा ।"
   सुप्रभेदागम, पटल 24; राव,गो०ना०,
   पूर्वोक्त, जिल्द 2, भाग 2,
   पृष्ठ 165-166.

दाक्षिणात्य शिल्प-शास्त्र शिल्परत्न अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के निर्माण के विधान को निर्दिष्ट करता हुआ शैवों एवं शाक्तों की पारस्परिक सद्भावना की ओर संकेत करता है । इस ग्रंथ में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर के प्रतिमा-विधान के शास्त्रीय नियमों को व्यक्त करता हुआ कहा गया कि वामार्द्ध पार्वती-रूप हो तथा दक्षिणार्द्ध महेश्वररूप हो । उनका दाहिना पैर नीचे लटकता हुआ और सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित वामपद कुंचित होगा । दाहिना एक हाथ अभय-मुद्रा में तथा दूसरा परशु-धारी प्रदर्शित होगा । अथवा इनमें से एक हाथ नीचे लटकता हुआ वृष वाहन के मस्तक पर विन्यस्त होगा तथा दूसरा कटक-मुद्रा में (पुष्प लिए) निर्दिष्ट होगा । शिल्परत्न में अर्द्धनारीश्वर के अन्य विवरण उपलब्ध होते

---

1. "अर्द्धनारीश्वरं वक्ष्ये सुस्थितं दक्षिणांघ्रिकम् ।
   कुंचितं वामपादं तु सर्वाभरणभूषितम् ।।

   वामार्धं पार्वतीरूपं दक्षिणार्धं महेश्वरम् ।
   अभयं परशुं दक्षहस्ते वामगतं भुजम् ।।

   वृषस्य मूर्ध्नि विन्यस्तं कर्पूरं चारु सुन्दरम् ।
   पुष्पधृक्कटकं त्वन्यं चतुर्भुजमिदं स्मृतम् ।।"

   शिल्परत्न, उत्तर भाग, अध्याय 22,
   श्लोक 103-105.

हैं ।[1] कुछ अन्य पाण्डुलिपियों में अर्द्धनारीश्वर के लक्षणों का निरूपण करते हुए कहा गया कि दक्षिणार्द्ध पुरुषाकार और वामार्द्ध स्त्री-रूप होगा । दाहिने हाथ में त्रिशूल तथा बायें हाथ में दर्पण होगा अथवा एक हाथ में कमल और दूसरे में केयूर-वलय सुशोभित होगा । दक्षिणार्द्ध मस्तक अर्द्धचन्द्र से विभूषित होगा एवं जटाभार से मण्डित होगा तथा वामार्द्ध घुँघराले बालों से युक्त जूड़ा के भार से विभूषित होगा । ललाट में अर्द्धलोचन और अर्द्धतिलक सुशोभित होगा । दाहिना वक्ष विशाल एवं बायाँ वक्ष

---

1. "पाशांकुशौ जपपटीमभयं च बिभ्रद्
बालेन्दुचूडमरुणाम्बुजगं त्रिनेत्रम् ।
बन्धूककांचननिभोभयपार्श्वमव्या -
दर्धाम्बिकेशमनिशं रुचिरं वपुर्वः ।।"

शिल्परत्न, उत्तरभाग, अध्याय 25, श्लोक 76.

समीकरणीय

"सिन्दूरकांचनसमोभयपार्श्वमर्ध
नारीश्वरं गिरिसुताहरभूषचिह्नम् ।
पाशाभयाक्षवलयेष्टदहस्तमेवं
स्मृत्वा न्यसेत् सकलवांछितवस्तुसिद्धयै ।।"

वही, अध्याय 25, श्लोक 77.

तुलनार्ह

"अरुणकनकवर्णं पद्मसंस्थं च गौरी-
हरनियमितचिह्नं सौम्यतानूनपातम् ।

पीन पयोधरों से युक्त होगा । शिव-भाग में कमर से घुटने तक व्याघ्रचर्म और पार्वती-भाग में तीन लड़ियों से युक्त मेखला सुशोभित होगी ।[1] दाहिना पैर नीचे लटकता हुआ पद्मपीठ पर अवलम्बित होगा तथा वामार्द्ध नूपुरों से अलंकृत होगा । स्पष्ट है कि यहाँ द्विभुज अर्द्धनारीश्वर का विवरण प्राप्य है ।

---

1. "अर्धनारीश्वरो देवः कथ्यते लक्षणान्वितः ।
दक्षिणं पुरुषाकारं वामं योषिन्मयं वपुः ।।

त्रिशूलं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते च दर्पणम् ।
उत्पलं वा प्रकुर्वीत केयूरवलयान्विते ।।

कर्णे तु दक्षिणे नागं वामे कर्णे तु कुण्डलम् ।
जटाभारो दक्षिणे स्यादर्धचन्द्रार्धभूषितः ।
कुन्तलान् कबरीभारान्वामभागेन विन्यसेत् ।
ललाटे लोचनस्यार्धं तिलकार्धं प्रकल्पयेत् ।।

विशालं दक्षिणं वक्षो वामं पीनपयोधरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं दक्षिण जघनस्थलम् ।
वामे लम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ।
वामस्य दक्षिणं पादं पद्मस्योपरि कल्पयेत् ।
तस्यार्धं च तथा वामं नूपुरालंकृतं लिखेत् ।।"

शिल्परत्न, राव, गो०ना०, ए०आ०हि०आ०,
जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 166-167.

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि समन्वयपरक अर्द्धनारीश्वर के विषय में अभिलेखों द्वारा भी विशिष्ट सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं, जिनके प्रति विद्वानों का ध्यान पहले आकृष्ट नहीं हुआ था । उदाहरणार्थ, औलिकर-वंशी, दशपुर-नरेश यशोधर्मा के पूर्वज प्रकाशधर्मा का, हाल ही ( 1983 ई० ) में प्राप्त, रिस्थलपुर के शिलालेख का यहाँ सन्दर्भ दिया जा सकता है । यह लेख मध्य-प्रदेश के मन्दसोर जिले के सीतामऊ नामक तहसील में स्थित उक्त नाम के एक ग्राम से उपलब्ध हुआ है जो कि एक आधुनिक घर की नींव के उत्खनन में प्रकाश में लाया गया । इसमें तिथि मा०सं० 572 ( 515 ई० ) का विवरण मिलता है । बारह पंक्तियों में संस्कृत के 29 श्लोकों में संरचित यह अभिलेख अर्द्धनारीश्वर की पूजा से आरम्भ होता है तथा धार्मिक सद्भावना के उत्कृष्ट दृष्टांतों से यह आद्योपान्त परिपूर्ण है । इसके प्रथम श्लोक में शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की स्तुति करते हुए कहा गया है कि पिनाकी (शिव ) का अर्द्धमुख जो शांत-मुद्रा में वर्तमान है ; तथा संध्या ( उमा की प्रतिस्पर्द्धिनी देवी ) के प्रति उनके नमन के कारण कुपित मुद्रा में पार्वती-वाचक अर्द्धमुख से युक्त है, जनकल्याण एवं समस्त प्राणियों की रक्षा में पर्याप्त सिद्ध हो ।[1] यहाँ शिवार्द्ध मुख शांत-रूप से परिपूर्ण तथा उमार्द्ध मुख रौद्र-मुद्रा से संयुक्त प्रदर्शित है जो कि अर्द्धनारीश्वर-रूप की एक अद्वितीय विशेषता कही जा सकती है । इस अभिलेख में हूण-नरेश तोरमाण के ऊपर विजय के उपलक्ष्य में प्रकाशधर्मा के द्वारा दशपुर नामक

---

1. "वामेन सन्ध्याप्रणिपातकोपप्रसंगिनार्द्धेन विघट्टमानम् ।
   पिनाकिनश्शान्त- ( विधेयमर्द्धं वामेतरं )वश्शिवमादधातु ।।"

   जनरल आँफ दी एपिग्राफिकल सोसायटी आँफ इण्डिया,
   जिल्द 10, 1983, पृष्ठ 58-100.

नगर में शिव-मंदिर ( स्थाणो : सद्म ), वराहमंदिर, ब्रह्मा के रमणीक मंदिर तथा सांख्य-मतावलम्बी यतियों के लिए विशिष्ट आश्रम, सभा, कूप, मठ एवं आराम आदि के निर्माण किये गये, जो कि धार्मिक-सहिष्णुता का ज्वलंत उदाहरण माना जा सकता है ।

यक्षपाल के गया के शीतला-मंदिर ( 1075 ई0 से 1085 ई0) में शैव अर्द्धनारीश्वर के वैष्णव समकक्ष अर्द्धनारीश्वर ( कमलार्द्धांगिनी-नारायण ) की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख आता है, जो शिव एवं पार्वती के संयुक्त रूप की भाँति विष्णु एवं लक्ष्मी के संयुक्त रूप का बोधक है । इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार शैव अर्द्धनारीश्वर, शैव एवं शाक्त धर्मों के सामंजस्य का द्योतक है, उसी भाँति वैष्णव अर्द्धनारीश्वर, विष्णु एवं देवी-उपासकों की पारस्परिक सद्भावना का बोधक है । इसके अतिरिक्त इस नरेश ने मौनादित्य सहस्रलिंग सोमेश्वर, फल्गुनाथ, विजयादित्य एवं केदारदेव आदि देवों की प्रतिमा की स्थापना की थीं । साथ ही जनकल्याण के लिए उत्तरमानस नामक सरोवर एवं एक दानगृह की भी स्थापना उसने कराई थी ।[1] ये समस्त निर्माण समकालीन धर्मसमन्वयवादिता एवं साम्प्रदायिक सद्भावना

---

1. "मौनादित्य-सहस्रलिंग - कमलार्द्धांगीन - नारायण -
   द्वि ( द्वा ) सोमेश्वर - फल्गुनाथ - विजयादित्याह्यानां कृती ।
   स प्र ( प्रा ) सादमचीकरंद्दिविषदां केदारदेवस्य च ।
   ख्यातस्योत्तरमानसस्य खननं सत्रं ( त्रं ) बटे चाक्षये ।।"

   सरकार दि0च0, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स,
   जिल्द 2, पृष्ठ 104.

का प्रतीक है । आभिलेखिक साक्ष्य से ज्ञात होता है कि दक्षिण-पूर्व-एशिया में शैव धर्म के प्रचार एवं विकास के कारण शिव के अर्द्धनारीश्वर-रूप की उपासना वहाँ लोकप्रिय हो गई । शक संवत् 972 (1050 ई0) के परमेश्वरवर्मा प्रथम द्वारा निर्मित वियतनाम (खानहोआ जनपद) में वर्तमान पोनगर-शिलालेख में, भगवती-वन्दना करते समय उनके अर्द्ध-रूप के चन्द्रकला से सुशोभित एवं जटामुकुट से युक्त होने तथा शिवार्द्ध-काया से संयुक्त होकर सुन्दर छटा धारण करने का विवरण पहले ही श्लोक में उपलब्ध होता है ।[1]

अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमाओं का निर्माण सर्वप्रथम कुषाण-काल से आरम्भ हुआ तथा गुप्तकाल तक यह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया । जहाँ तक कुषाणकाल का प्रश्न है, मथुरा-संग्रहालय में इस प्रकार का एक उदाहरण मिलता है जो कि एक कुषाण-कालीन शिलापट्ट पर अंकित है । ऊर्ध्व-लिंग और योनि का अंकन इस पर साथ-साथ हुआ है । इस द्विभुज अर्द्धनारीश्वर-रूप में उनके हाथों में कोई आयुध प्रदर्शित नहीं है (सं0सं0 15.874) । अर्द्धनारीश्वर की एक दूसरी मूर्ति में जो कि राज-

---

1. "भूताभूतेश-भूता भुवि भव-विभवोद्भाव-भावात्म-भावा ।
भावाभावा स्वभावा भव-भवक-भवाभाव-भावैक-भावा ।
भावाभावा (उ) ग्र-शक्तिः शशि-मुकुट-तनोरर्धकाया सुकाया
काये काये श-काया भगवति नमतोनो (नौं) जयेव स्व-सिद्ध्या ।।"

दि0च0 सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स,
जिल्द 2, पृष्ठ 723.

कीय संग्रहालय मथुरा में ही सुरक्षित है ( सं०सं० 15.800 ) , देव अपने वाहन के साथ प्रदर्शित हैं। स्त्री वाले भाग में पैर में आभूषण है। इस संग्रहालय में अर्द्धनारीश्वर का एक और भी फलक है, जिसमें विष्णु, गज-लक्ष्मी और कुबेर उच्चित्रित हैं। इससे इन धर्मों की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत मिलता है ( सं०सं० 34.220 )।

गुप्तकाल में अर्द्धनारीश्वरपूजा की लोकप्रियता के प्रमाण यदि एक ओर शास्त्रीय विधानों में मिलते हैं जैसा कि वराहमिहिर की बृहत्संहिता में द्रष्टव्य है, तो दूसरी ओर प्रस्तर-मूर्तियों और मृच्चित्रों में भी इस स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है। बसाढ़ के एक गुप्तकालीन मृत्फलक पर अंकित आकृति में उसका वामहस्त नितम्ब पर अवलंबित है और वक्ष का वामार्द्ध दक्षिण की अपेक्षा अधिक उभाड़युक्त है। दाहिना हाथ वरद मुद्रा में प्रदर्शित है और शिरोवेष जटाजूट-तुल्य है। जि०ना० बनर्जी इसे अर्द्धनारीश्वर मूर्ति का अंकन मानते हैं।[1]

अर्द्धनारीश्वर का एक सुन्दर उदाहरण राजकीय संग्रहालय मथुरा में भी प्रदर्शित है ( सं०सं० 13.362 )। यह शिव एवं पार्वती के संयुक्त रूप का वाचक है। इस आकृति के दक्षिणार्द्ध का मस्तक-भाग, शिव-भाग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें चन्द्रलेखा से सुशोभित जटाजूट प्रदर्शित है। पार्वती-भाग के द्योतक वामार्द्ध में कान में कुण्डल और केश-विन्यास पुष्पों से सुसज्जित है। इस प्रकार शिव एवं पार्वती के समन्वित स्वरूप को गुप्तकालीन शिल्पी ने बड़ी कुशलता के साथ प्रदर्शित किया है। इस बात का निर्देश पहले ही किया जा चुका है कि आध्यात्मिक दृष्टि से अर्द्धनारीश्वर-

---

1. डे०हि०आ०, पृष्ठ 98-99.

स्वरूप प्रकृति एवं पुरुष का संयोगवाचक है तथा कालिदास के शब्दों में वाणी एवं अर्थ की भाँति पार्वती-परमेश्वर एक-दूसरे से सम्पृक्त हैं ।[1]

गुप्तकाल के उपरान्त अर्द्धनारीश्वर मूर्तियों का निर्माण अधिक विस्तार से हुआ, जो इसकी पूजा की लोकप्रियता का परिचायक है । उनका चतुर्भुज-रूप सम्बंधित आयुधों और पारस्परिक वाहनों के साथ शिल्पित किया गया । अर्द्धनारीश्वर मूर्तियों में सामान्यतः पार्वती के साथ वाहन का अंकन नहीं हुआ है । मात्र शिव-वाहन वृष ही प्रदर्शित है । परन्तु भवनेश्वर की अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा में एक नई विशेषता यह मिलती है कि शिव-भाग में वाहन-रूप में यदि वृषभ अंकित किया गया, तो पार्वती-भाग में सिंह का उच्चित्रण प्राप्य है ।

गुप्तकाल के उपरान्त की अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं में राजकीय संग्रहालय लखनऊ की 12हवीं शती की अर्द्धनारीश्वर मूर्ति उल्लेखनीय है, जिसमें अर्द्धनारीश्वर चतुर्भुज एंव त्रिनेत्र तथा समभंग-मुद्रा में प्रदर्शित हैं । उनका वाम भाग स्तनयुक्त तथा दाहिने हाथों में अक्षसूत्र ( वरदमुद्रा-सहित ) एवं त्रिशूल तथा वाम करों में दर्पण एवं कमण्डलु मण्डित है । मूर्ति के मस्तक पर जटाभार एवं केशबन्ध प्रदर्शित है । बायें कान, हाथ और पैरों में कुण्डल, केयूर, कंकण एवं नूपुर का उच्चित्रण मिलता है जबकि दायें हाथ-पैर आभूषणविहीन हैं । मूर्ति के दायें कान का आभूषण नष्ट हो चुका है जो कि सम्भवतः सर्प रहा होगा । अर्द्धनारीश्वर के दाहिने ओर वृष-वाहन भी उपस्थित है । इस प्रकार यह प्रतिमा शास्त्रीय नियमों के अनुसार निर्मित ज्ञात होती है ( सं०सं० - एच०

---

1. रघुवंश, सर्ग 1, श्लोक 1.

आकृति संख्या 37 ) । एक अन्य मूर्ति का मस्तक मात्र अवशिष्ट है जिसमें दक्षिणार्द्ध जटामुकुट एवं वामार्द्ध केशविन्यास से सुसज्जित है ( सं०सं० 57-303, आकृति संख्या 38 एवं 39 ) ।

अर्द्धनारीश्वर की कुछ उल्लेखनीय प्रतिमाएँ ओसियाँ के मंदिरों से मिली हैं जो कि प्रकृति एवं पुरूष — इन दो विरोधी शक्तियों के सामंजस्य के द्योतक हैं । इस प्रकार की एक सुन्दर प्रतिमा सचियामाता के मंदिर में उपलब्ध होती है जो कि चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर का वाचक है । इसमें अर्द्धनारीश्वर त्रिभंग-मुद्रा में प्रदर्शित हैं । वामोर्ध्व हस्त में दर्पण और दक्षिणोर्ध्व हस्त में त्रिशूल प्रदर्शित हैं । नीचे के दोनों हाथ खण्डित हैं । शिवार्द्ध मस्तक में जटामुकुट, अर्द्धचन्द्र एवं अन्य आभरण प्रदर्शित हैं । उमार्द्ध में मस्तक केश-विन्यास से मण्डित है एवं इस भाग के आभूषणों में हार, कुण्डल, कंकण एवं पायल आदि सुशोभित हैं । शिवार्द्ध के नीचे नंदी वाहन-रूप में प्रदर्शित है (आकृति संख्या 40) । यह प्रतिमा मत्स्य पुराण एवं विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित चतुर्भुजी अर्द्धनारीश्वर के रूप का उदाहरण है ।[1] एक अन्य उल्लेखनीय चतुर्भुजी अर्द्धनारीश्वर मूर्ति त्रिभंग मुद्रा में आसीन, ओसियाँ के सत्यनारायण मंदिर प्रदर्शित है, में जिसका संभावित काल लगभग आठवीं शताब्दी है (आकृति संख्या 41 ) ।

खजुराहो-संग्रहालय में अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा ललितासन-मुद्रा में उपलब्ध होती है । दक्षिण पार्श्व में शिवार्द्ध जटाजूट, अर्द्धचन्द्र, कुण्डल, त्रिशूल एवं यज्ञोपवीत से सुशोभित है । वाम पार्श्व में उमार्द्ध, दर्पण एवं कमण्डलु, सुन्दर केश-विन्यास, स्त्री

---

1. आशा कालिया, 'दी आर्ट आॅफ ओसियाँ टेम्पुल्स', पृष्ठ 123.

2. खजुराहो, पृष्ठ 25, फलक 89.

वेश-भूषा तथा आभरणों से मण्डित है ( आकृति संख्या 42 ) । थापर महोदय ने दो कांस्य-निर्मित अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमाओं का उल्लेख किया है, जो शास्त्रीय प्रतिमा-लक्षणों से पर्याप्त सादृश्य रखती हैं । खजुराहों के लक्ष्मण-मंदिर के शिखर के मुखमण्डप में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर समभंग मुद्रा में अंकित है । इनके ऊर्ध्व हाथों में त्रिशूल एवं दर्पण तथा निम्न एक हाथ अभय-मुद्रा में तथा दूसरा कमण्डलु से युक्त प्रदर्शित है । मस्तक का दक्षिणार्द्ध भाग जटाजूट एवं वामार्द्ध स्त्री-केशविन्यास से सुशोभित है । निम्न भाग में नंदी एवं परिचारिकाएँ भी सुशोभित हैं ( आकृति संख्या 43 ) ।

अर्द्धनारीश्वर की कुछ भव्य प्रतिमाएँ वंग-भूमि से प्रकाश में आई हैं । वल्लाल-सेन के नौहाटी ताम्र-फलक पर नृत्य करते अर्द्धनारीश्वर का चित्रण उपलब्ध होता है ।[2] बंगला देश में रामपाल स्थान से पाँच मील दक्षिण-पश्चिम में वर्तमान पूरापाडा नामक ग्राम में अर्द्धनारीश्वर की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो कि वहाँ के एक मंदिर के बीच में स्थित कुंड को खोद कर निकाली गई थी और अब राजशाही-संग्रहालय में सुरक्षित है । इस प्रतिमा में दो ही हाथ प्रदर्शित हैं । उनमें से एक हाथ कंधे के पास से और दूसरा कोहनी के पास से खण्डित है । ये प्रतिमाएँ विष्णुधर्मोत्तर में उल्लिखित गौरीश्वर-रूप से पर्याप्त साम्य रखती हैं । इसका दक्षिणार्द्ध भाग शिव-रूप और वामार्द्ध गौरी-रूप का वाचक है । इस प्रतिमा में घुटने के नीचे का भाग खण्डित है।[3]

---

1. थापर डी०आर०, आइकन्स इन ब्रांज, पृष्ठ 91, फलक 57.

2. इन्दुमती मिश्र, प्रतिमाविज्ञान, पृष्ठ 277.

3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 277.

शैव एवं शाक्त धर्मों के समन्वय — वाचक अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के प्रारम्भिक उदाहरण भुवनेश्वर के मंदिरों ( शत्रुघ्नेश्वर एवं परशुरामेश्वर ) में उपलब्ध होते हैं । इसके अतिरिक्त शिशिरेश्वर, वेतालदेउड़, मुक्तेश्वर, ब्रह्मेश्वर, लिंगराज, ईश्वरेश्वर एवं मेघेश्वर मंदिरों में भी अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमाओं के उदाहरण उपलब्ध होते हैं । भुवनेश्वर की अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमाएँ प्रतिमा-लक्षणों के विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । ये प्रतिमाएँ द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज एवं अष्टभुज हैं । शत्रुघ्नेश्वर मंदिर में मिलने वाली नृत्य अर्द्धनारीश्वर-मूर्ति अष्टभुज है जिसका उच्चित्रण छठी शताब्दी ई0 में हुआ था । यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि अन्य केन्द्रों में अर्द्धनारीश्वर की चार से अधिक भुजाओं वाली प्रतिमाएँ नहीं मिली हैं । इस दृष्टि से शत्रुघ्नेश्वर-मंदिर की अष्टभुज-मूर्ति अपने कोटि की प्रारम्भिकतम् मूर्ति मानी जा सकती है ।[1] भुवनेश्वर की अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमाओं के उदाहरणों से स्पष्ट है कि छठी शती ई0 के प्रारम्भ में वहाँ अष्टभुज अर्द्धनारीश्वर मूर्तियाँ निर्मित हुई तथा द्विभुज, चतुर्भुज और षड्भुज मूर्तियाँ भी बनने लगीं ।

शत्रुघ्नेश्वर मंदिर की उक्त अष्टभुजी अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के दोनों दाहिने हाथों में अक्षमाल तथा त्रिशूल सुशोभित हैं तथा अन्य सभी हाथ खण्डित हैं । अर्द्धनारी-श्वर के बायें पैर में एड़ी तक लम्बी साड़ी दिखायी गयी है । शिवार्द्ध में त्रिनेत्र, जटामुकुट एवं सर्पकुण्डल तथा उमार्द्ध में सुन्दर जूड़ा सुशोभित हैं । शिवभाग में उनका वाहन नंदी और पार्वती-भाग में सिंह की आकृतियाँ तराशी गई हैं ।

---

1. देबला मित्रा, भुवनेश्वर, आ0स0आ0इं0, पृष्ठ 31, विद्या दहेजिया, अर्ली स्टोन टेम्पुल्स आफ उड़ीसा, पृष्ठ 86-87

ड

अष्टभुजी अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा का दूसरा उदाहरण परशुरामेश्वर-मंदिर के जगमोहन के जंघा पर रूपायित है । देवकरों में वरदाक्ष, दर्पण एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं । दाहिना एक हाथ कटिप्रदेश पर स्थित है । शेष दो हाथ खण्डित हैं । शिवार्द्ध मस्तक जटामुकुट तथा वामार्द्ध मस्तक जूड़े से सुशोभित हैं । अर्द्धनारीश्वर को भाव-विभोर होकर तन्मयता के साथ नृत्य करते प्रदर्शित किया गया है । दाहिने पार्श्व में कंकाल-रूपी भृंगी तथा बाईं ओर गण आकृतियाँ अर्द्धनारीश्वर के नृत्य को तन्मयता के साथ देखते हुए उच्चित्रित हैं ।[1]

द्विभुज-प्रतिमाओं में तीन उदाहरण उल्लेखनीय हैं, जो कि शिशिरेश्वर, लिंगराज तथा मेघेश्वर के मंदिरों की कला में उत्कीर्ण हैं । शिशिरेश्वर-मंदिर के जगमोहन में जंघा पर अंकित मूर्ति में द्विभुज अर्द्धनारीश्वर त्रिभंग-मुद्रा में प्रदर्शित हैं । उनके दाहिने हाथों में बीजपूरक है तथा बायाँ शरीर के समानान्तर लटक रहा है । शिवार्द्ध में ललाट पर तृतीय नेत्र सुशोभित है तथा पार्श्व भाग में नंदी वाहन भी आकारित है ।[2]

द्वितीय अर्द्धनारीश्वर उदाहरण लिंगराज मंदिर के गर्भगृह के दक्षिण पार्श्व के ऊपरी जंघा पर अंकित है । पद्मपीठ पर स्थित देवता के हाथों में त्रिशूल एवं पद्म सुशोभित हैं । दाहिने पार्श्व में गण की भी आकृति बनी है, जिसके ऊपरी भाग पर वीणा एवं तुरही बजाते हुए वादकों की आकृतियाँ तराशी गई हैं । वाम-पार्श्व में

---

1. देवला मित्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 29, विद्या दहेजिया, अर्ली स्टोन टेम्पुल्स आफ उड़ीसा, पृष्ठ 86.

2. देवला मित्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 37, विद्या दहेजिया, अर्ली स्टोन टेम्पुल्स आफ उड़ीसा, पृष्ठ 109.

दो चामरधारिणी सेविकाएँ बनी हैं, जिनके ऊपर स्त्री-वादकों की आकृतियाँ उच्चित्रित हैं ।[1] तृतीय उदाहरण का प्रतिनिधित्व मेघेश्वर-मंदिर के जंघा की एक रथिका में तराशी द्विभुज अर्द्धनारीश्वर की आकृति द्वारा किया जाता है । उनके दाहिने हाथ में त्रिशूल है, किन्तु बायें का आयुध स्पष्ट नहीं है । पीठिका पर सिंह तथा वृषभ-आकृतियाँ बायें तथा दायें पार्श्वों में उच्चित्रित हैं ।[2]

भुवनेश्वर में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण उपलब्ध होते हैं । इनमें से एक वैतालदेउड़ के पश्चिमी जंघा पर आकारित है । त्रिभंग मुद्रा में खड़े अर्द्धनारीश्वर के दाहिने हाथों में बीजपूरक और अक्षमाल तथा बायें हाथ में दर्पण सुशोभित हैं । एक वाम हस्त शरीर के समानान्तर नीचे लटकता प्रदर्शित है । इस उदाहरण में वृषभ-वाहन पीठिका के स्थान पर अंकित न होकर पृष्ठ भाग में इस प्रकार बना हुआ है, मानो देवता इस वाहन के सहारे खड़े हों ( आकृति संख्या 44 ) । एलिफैण्टा की मूर्ति में भी ठीक इसी शैली में वृषभवाहन का अंकन हुआ है । भुवनेश्वर-मंदिर ( वैताल देउड़ ) के उक्त उदाहरण में देवी का सिंह वाहन अंकित नहीं हुआ है ।

दूसरा चतुर्भुज उदाहरण ब्रह्मेश्वर मंदिर के पश्चिमी जंघा पर रूपायित है । देवता के दक्षिणार्द्ध कर में कपाल-पात्र धृत है । वामाधः कर खण्डित है । दोनों ऊर्ध्व कर शिर के ऊपर उठे हुए हैं । पीठिका पर दक्षिणार्द्ध में वृषभ और वामार्द्ध में सिंह - वाहन की आकृतियाँ तराशी गई हैं ( आकृति संख्या 45 ) ।

---

1. देबला मित्रा, पूर्वोक्त पृष्ठ 53, विद्या दहेजिया, वही, पृष्ठ 37-38.

2. देबला मित्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 57-58.

अर्द्धनारीश्वर की एक अन्य उल्लेखनीय चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर-आकृति भुवनेश्वर के मार्कण्डेश्वर मंदिर की रथिका में उच्चित्रित है । परन्तु दुर्भाग्यवश इसके कई भाग ( सिर, दोनों ऊर्ध्व करों के आयुध, दक्षिणाधः एवं वामाधः हस्त एवं उनके आयुध तथा दक्षिण पद ) खण्डित हो चुके हैं । त्रिपार्श्व भागों में सम्बन्धित परिचर रूपायित हैं ( आकृति संख्या 46) ।

लिंगराज मंदिर के नटमण्डप की पूर्वी भित्ति की एक रथिका में अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा पद्मपीठ पर पद्मासन में विराजमान है । मूर्ति का पहला हाथ खण्डित है और शेष हाथों में अक्षमाल, पद्म और बीजपूरक सुशोभित हैं । शिवभाग में जटामुकुट, तृतीयनेत्र एवं सर्पकुण्डल आकारित हैं । मूर्ति की माला का अंकन कलाकार की सूझ-बूझ का परिचायक है । इस माला के दाहिने भाग में नरमुण्ड तथा बायें भाग में पुष्प गुथे हुए हैं, जो क्रमानुसार शिव एवं पार्वती-भागों के सर्वथा अनुरूप हैं । इसी प्रकार पीठिका पर शिव एवं पार्वती के अपने-अपने वाहन उच्चित्रित हैं ( सिंह एवं वृषभ )।[1] यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि भुवनेश्वर के अर्द्धनारीश्वर उदाहरणों में भिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं । यह विभिन्नता प्रतिमा-शास्त्रीय ग्रंथों में भी देखी जा सकती है । उदाहरणार्थ, बृहत्संहिता में शिव को त्रिनेत्र एवं जटामुकुट से युक्त बताया गया है । उनके आयुध त्रिशूल एवं वाहन वृषभ आदि के अंकन का निर्देश मिलता है । विष्णुधर्मोत्तर में अक्षमाल एवं दर्पण के धारण का उल्लेख मिलता है, जबकि मत्स्य पुराण में कपाल एवं नीलोत्पल के धारण करने तथा शिव के ऊर्ध्वलिंग होने का विवरण मिलता है ।

भुवनेश्वर से अर्द्धनारीश्वर की केवल एक ही षड्भुजी मूर्ति प्रकाश में आई है

---

1. देबला मित्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 53.

जो कि सुप्रसिद्ध मुक्तेश्वर-मंदिर के गर्भगृह के दक्षिणी राहापग पर आकारित है। ललित-मुद्रा में विलसित अर्द्धनारीश्वर का पहला हाथ गजहस्त मुद्रा में सुशोभित है। दूसरे में डमरू तथा तीसरे एवं चौथे हाथों में सर्प धारण किए हुए हैं। पाँचवा हाथ वक्षस्थल के अग्र भाग का स्पर्श करता निरूपित है तथा छठें में पद्म सुशोभित है। अर्द्धनारीश्वर को इस उदाहरण में नंदी-पीठ पर आसीन दिखाया गया है।[1] यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि इस प्रकार की एक षड्भुजी अर्द्धनारीश्वर मूर्ति कांचीपुरम् के कैलासनाथ मंदिर ( 8वीं शती ई0 ) पर भी उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा शिव की नृत्य-मूर्ति के साथ ही गजासुर-संहार के कुछ लक्षणों (( गजहस्त मुद्रा एवं दो हाथों में सर्प ) का स्मरण कराती है।

इलाहाबाद संग्रहालय ( सं0सं0 267, बारहवीं शती ) में, अल्मोड़ा से प्राप्त एक चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर उपलब्ध है। इसके शिवार्द्ध एवं उमार्द्ध अपने अपने आभूषणों से अलंकृत हैं। मस्तक-भाग लाक्षणिक विशेषताओं से संयुक्त हैं। मूर्ति के चारों हाथ खण्डित हैं। नीचे वृषभ एवं सिंह वाहन के रूप में अंकित हैं ( आकृति संख्या 47 )।

कन्नौज-संग्रहालय ( सं0सं0 79/251; 8वीं शताब्दी ) में श्वेत शिलापट्ट पर त्रिभंग मुद्रा में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर रूपायित हैं। शिवार्द्ध मस्तक अर्द्धचन्द्र से विभूषित एवं जटाजूट से मण्डित है तथा उमार्द्ध घुँघराले बालों से युक्त लाक्षणिक केश-विन्यास से मंडित है। मस्तक की पृष्ठभूमि में कमलदल से अलंकृत प्रभामण्डल उच्चित्रित है। ललाट पर अर्द्धलोचन एवं अर्द्धतिलक सुशोभित हैं। दाहिना वक्ष विशाल एवं बायाँ वक्ष पीन पयोधरों से युक्त है। शिव-भाग में कान में सर्पकुण्डल तथा

---

1. देबला मित्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 41-42.

पार्वती-भाग कमनीय परिधान से सुसज्जित, नूपुर-युक्त एवं महावर से विभूषित है। प्रतिमा-विधान के शास्त्रीय नियमों को अभिव्यक्त करते हुए इस उदाहरण में बायाँ पैर विविध आभरणों से सुशोभित प्रदर्शित है। समन्वय-बोधक देव का दक्षिणोर्ध्व कर त्रिशूलधारी एवं अक्षमालयुक्त तथा दक्षिणाधः कर अभय-मुद्रा में प्रदर्शित है। वामोर्ध्व कर दर्पणधारी एवं वामाधः में कोई पुष्प लटकता प्रदर्शित है। शिवार्द्ध में नागोपवीत एवं भस्म-विभूषित तनु तथा उमार्द्ध में कुंकुम एवं हारविभूषित संयुक्त वपु प्रदर्शित है। निम्न भाग में पैरों के दोनों पार्श्वों में सम्बन्धित अनुचर रूपायित हैं ( आकृति संख्या 48) ।

वाराणसी ( द्विवेदी-संग्रह ) में 10वीं शताब्दी ई0 का एक अर्द्धनारीश्वर उदाहरण प्राप्य है। यह बिन्दकी ( फतेहपुर, उत्तर प्रदेश ) से उपलब्ध हुआ था। इसमें देवता का मस्तक-भाग मात्र अवशिष्ट है। शिव एवं देवी की अभिन्नता के इस प्रतीक में अर्द्धोन्मीलित नेत्र तथा शिवार्द्ध एवं वामार्द्ध अपनी लाक्षणिक विशेषताओं से सुशोभित हैं ( आकृति संख्या 49 ) ।

इन्दौर,-संग्रहालय में एक चतुर्भुजी अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा पद्मासीन प्रदर्शित है। प्रतिमा के दोनों ऊर्ध्व हाथ खण्डित हैं, परन्तु शिरश्चक्र के पास एक ओर त्रिशूल तो दूसरी ओर दर्पण अंकित है। दक्षिणाधः कर भी टूटा है, परन्तु वामाधः कर में कमण्डलु अंकित है। दक्षिण पार्श्व में देवगण एवं वाम पार्श्व में परिचारिका अंकित हैं। फलक के ऊपर दोनों ओर उड़ते विद्याधर अंकित हैं ( आकृति संख्या 50 )

यहाँ पर द्विभुजी अर्द्धनारीश्वर का एक अन्य उदाहरण भी उल्लेखनीय है जो हरिसिंह गौड़ संग्रहालय, सागर-परिसर में प्रदर्शित है। शिलापीठ पर बैठी इस प्रतिमा के दोनों ही हाथ खण्डित हैं। उनका वाम पद शिलापीठ पर मुड़ा हुआ तथा खण्डित दक्षिण पद नीचे लटकता हुआ प्रदर्शित है। देवता के दक्षिणार्द्ध मस्तक - भाग में जटा के बाल कंधे पर नीचे लटकते हुए तथा उमार्द्ध मस्तक-भाग में घुंघराले बालों

से मण्डित केश-पाश रूपायित है । मस्तक प्रभामण्डल से युक्त है (आकृति संख्या 51) ।

श्रीनगर (एस0पी0एस0 संग्रहालय सं0 2668) में समपाद चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर की एक भव्य प्रतिमा सुरक्षित अवस्था में प्राप्य है । यह प्रतिमा वेरिनाग (अनन्त-जम्मू-काश्मीर, 15हवीं शती) से उपलब्ध हुई थी । शैवों एवं शाक्तों के पारस्परिक सद्‌भावना-बोधक इस अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा में शिवार्द्ध अर्द्धचन्द्रांकित जटामुकुट से सुशोभित एवं कानों में सर्पकुण्डल धारण किए हुए प्रदर्शित है । ऊर्ध्व कर त्रिशूल-धारी तथा अधः कर अक्षमालधारी अभय-मुद्रा में प्रदर्शित है । नारी वक्षस्थल-बोधक वामार्द्ध घुंघराले बालों से युक्त, जूड़ा के भार से विभूषित, पीनपयोधर एवं तीन लड़ियों वाली मेखला से सुशोभित है । उमा-भाग के ऊर्ध्वकर में दर्पण एवं अधः कर में कमण्डलु सुशोभित हैं । दाहिना पैर नीचे पद्मपीठ पर अवलम्बित है एवं बायाँ पैर नूपुरों से अलंकृत एवं क्षौम वस्त्रधारी है । दक्षिण पद के पार्श्व में वाहन नंदी एवं वाम पद के पार्श्व में स्त्री परिचारिका रूपायित है (आकृति संख्या 52) ।

आशापुरी से प्राप्त एवं भोपाल बिरला संग्रहालय (सं0सं0 144; 10वीं शती) में एक चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर समपाद मुद्रा में प्रदर्शित हैं । रक्त शिलापट की रथिका पर उच्चित्रित इस उदाहरण में दक्षिणोर्ध्व कर त्रिशूलधारी एवं अक्षमाल-युक्त तथा दक्षिणाधः अभय-मुद्रा में प्रदर्शित है । उमार्द्ध में वामोर्ध्व दर्पणधारी एवं वामाधः कमण्डलुयुक्त है । पुरुषाकार दक्षिणाधः मस्तक जटाजूट एवं वामाधः केश-विन्यास से मण्डित है । समन्वयपरक अर्द्धनारीश्वर के इस उदाहरण में प्रतिमा-विधान के शास्त्रीय नियमों की अभिव्यक्ति मिलती है (आकृति संख्या 53) ।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने हरसत माता मंदिर (आवनेरी, राजस्थान) में चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर मूर्ति के मिलने का उल्लेख किया है जो इस समय जयपुर महाराज के व्यक्तिगत संग्रह में है । यह एक चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर का उदाहरण है जिसमें

दक्षिणार्द्ध के दो भुजाओं में पद्म एवं त्रिशूल हैं । त्रिशूल सर्पकुण्डल से युक्त है । पार्श्व में वृषभ एवं अनुचर आकारित हैं । उमार्द्ध का एक हाथ दर्पणधारी तथा दूसरा नितम्ब पर अवलम्बित है । पार्वती के वाम पार्श्व में एक अनुचरी का अंकन हुआ है ।[1]

अन्य विशिष्ट अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं में झालरापाटन से प्राप्त (झालावाड़ संग्रहालय; सं० 88, 8वीं शती) चतुर्भुजी अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में खड़ी प्रदर्शित है । दक्षिणाधः शिव-रूप एवं वामधः पार्वती-रूप का वाचक है । दक्षिणाधः मस्तक अर्द्धचन्द्रविभूषित एवं जटाभार से मण्डित है, तथा वामाधः घुंघराले बालों से युक्त जूड़ा के भार से विभूषित है । ललाट में अर्द्धलोचन एवं अर्द्धतिलक सुशोभित हैं । दाहिना वक्ष विशाल एवं बायाँ पीन पयोधर से युक्त है । दक्षिणोर्ध्व त्रिशूलधारी तथा दक्षिणाधः कर गण के मस्तक पर अवलम्बित है । वामोर्ध्व कर खण्डित एवं वामाधः विभिन्न आभूषणों से अलंकृत पुष्पधारी एवं नीचे लटकता प्रदर्शित है । इसके नीचे स्त्री परिचारिका रूपायित है । मस्तक के पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल की उकेरी मिलती है (आकृति संख्या 54) ।

8वीं-9वीं शताब्दी ई० की शैव अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा ग्वालियर-संग्रहालय में प्रदर्शित है । यह चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर का उदाहरण है, परन्तु इसके चारों ही हाथ खण्डित हैं जिसमें आयुधों का पता नहीं चलता । मस्तक के पीछे शिलापट्ट पर एक अत्यंत भव्य प्रभामण्डल उच्चित्रित है, जिसमें शंख, पद्म एवं मुक्तादाम आदि

---

1. अग्रवाल, वी०एस०, स्कल्पचर्स फ्राम आवनेरी, राजस्थान, ललितकला, संख्या 1-2, 755-56, पृष्ठ 30-31.

विभिन्न मांगलिक प्रतीकों से युक्त मण्डलाकार शोभापट्टिकाएँ रूपायित हैं। हवा में उड़ते विद्याधर, मध्य भाग में देवी आकृतियाँ तथा निम्न भाग में सम्बन्धित आयुध - धारी परिचर आकारित हैं (आकृति संख्या 55)।

विवेच्यकाल में शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की आराधना की उत्तरोत्तर महत्ती लोकप्रियता के प्रतिबिम्ब इस समय के अभिलेखों, महाकाव्यों एवं सुभाषित संग्रहों में प्रचुर रूप में देखने को मिलते हैं। वल्लालसेन का नौहाटी-ताम्रलेख वस्तुतः अर्द्धनारीश्वर-स्तुति से आरम्भ होता है; - 'अर्द्धनारीश्वर, जिनके शरीरार्द्ध (स्त्री-भाग) से ललित अंग-संचार प्रस्फुटित होते हैं तथा द्वितियार्द्ध (पुरुषभाग) से भयंकर भाव प्रकट होते हैं, जिनके शरीर के दोनों ही भाग एक ही समय दो परस्पर विरोधी भावनाओं का अभिनय करते हैं तथा जो प्रलय की सांध्यबेला में नान्दी रूपी लहरों से युक्त निस्सीम अर्णवों की भाँति प्रसन्नता को व्यक्त करते हैं; आपकी रक्षा करें।'[1] विजयसेन के देवपाड़ा लेख में भी अर्द्धनारीश्वर की स्तुति इसी भाँति रोचक

---

1. "सन्ध्या-ताण्डव-सम्विधान्-विलसन् नान्दी-निनादोर्मिम्,
   निम्मर्यादिर-सार्णवो दिशतु वः श्रेयोऽर्धनारीश्वरः।
   यस्यार्धे ललितांगहार-वलयै-रर्धे च भीमोद्भटै-
   नाट्या रम्भरयैर्ज्जयित्यभिनयैर्द्वैधानुरोधश्रमः ॥"

   वल्लालसेन का नैहाटी ((24 परगना, पश्चिमी बंगाल) का ताम्रलेख, इंस्क्रिप्शंस ऑफ बंगाल, जिल्द 3, पृष्ठ 71.

एवं काव्यात्मक ढंग से की गई है - 'अर्द्धनारीश्वर जो कि नारी के अर्द्धभाग के ही स्वामी हैं, एकसत सुन्दरियों की शोभा को व्यक्त करने वाले आभरणों के द्वारा अपने अर्द्धांग ( उमार्द्ध ) भाग से युक्त हैं तथा जिसका निवास श्मशान-भूमि है, किन्तु जो अनेक पुरों की शोभा को धारण करने वाली कैलासपुरी में वास करते हैं एवं जो भिक्षाटन करने पर भी महाभाग हैं, जगत् की रक्षा करें ।"[1] उक्त स्तुतियों में प्रसंगत: शिव एवं पार्वती के संयुक्त प्रतिमालक्षणों का भी संकेत मिलता है ।

सुप्रसिद्ध काव्य ग्रंथों में कल्हणकृत राजतरंगिणी ( 12हवीं शती ई0 ) उल्लेखनीय है जिसके सभी आठ तरंग अर्द्धनारीश्वर की स्तुति से आरम्भ होते हैं । यह तथ्य काश्मीर में भी अर्द्धनारीश्वर-पूजा की लोकप्रियता का द्योतक है । आरेल स्ताइन[2] ने इसकी ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा था कि इस ऐतिहासिक ग्रंथ के विभिन्न तरंगों के मंगलाचरण शिव की अर्द्धनारीश्वर-स्तुति से प्रारम्भ होते हैं, जिसमें शिव एवं पार्वती के संयोग का प्रतिनिधित्व मिलता है । उदाहरणार्थ, इसके सातवें तरंग में अर्द्धनारीश्वर को गौरीश्वर की अभिधा से सम्बोधित करते हुए

---

1. विजयसेन का देवपाड़ा-लेख, इन्स्क्रिप्शंस ऑफ बंगाल, जिल्द 2, पृष्ठ 49.

2. आरेल स्ताइन, राजतरंगिणी, जिल्द 1, पृष्ठ 1, पादटिप्पणी 2.

इस देव की वन्दना की गई है ।[1] यहाँ पर भी हम शैवों एवं शाक्तों के पारस्परिक धर्म-सामंजस्य एवं सद्भावना का एक सुन्दर दृष्टांत पाते हैं ।

सुभाषित ग्रंथों में सुभाषित-रत्न-भाण्डागार उल्लेखनीय है, जिसमें अर्द्धनारीश्वर की स्तुति से सम्बन्धित ऐसे श्लोक प्राप्य होते हैं जो कि दैनिक पूजा के अवसर पर प्रयुक्त होते हुये । इसमें एक श्लोक में इस देव की स्तुति करते हुए कहा गया कि "उस शिव को शिरसा नमस्कार है, जिसके मस्तक पर अंधकार को दूर करने वाला अर्द्धचन्द्र सुशोभित है तथा जिनके संयुक्त रूप में नाग-यज्ञोपवीत धारण किया गया है एवं जिसका फण पार्वती के कुच-प्रदेश पर कंचुक का उद्देश्य पूर्ण करता है ।" यह काव्यात्मक विवरण शिव के उस अर्द्धनारीश्वर रूप से साम्य रखता है जिसमें कि प्रतिमाशास्त्रीय नियमों के अनुसार नागयज्ञोपवीत सुशोभित होना चाहिए ।[2] इसी

---

1. "मातुस्तेऽजनि निर्मिति पितृकुले श्लाघ्या तनुर्वेधसा
त्वं संध्याहितसंनिधिर्मम जयारक्तोऽधरे सेऽसि ।
सन्ध्यावदनसाम्यसूर्यगिरिजास्तुत्येशैवांकैले-
र्य: सन्ध्यामपि वन्दते स्म स जगत्प्रीणातु गौरीश्वरं।।"

राजतरंगिणी, तरंग 7, श्लोक 1.

2. "यस्योपवीत गुण एव फणावृतैक
वक्षोरुह: कुच पटीयति वामभागे ।
तस्मैममास्तु तमसामवसान-सीम्ने
चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसे नमस्या ।।"

सुभाषितरत्न भाण्डागार, पृष्ठ 11, 163.

भाँति इस ग्रंथ के एक अन्य श्लोक में शिव के अर्द्धनारीश्वर के रूप का वर्णन करते हुए कहा गया कि "शम्भु-स्वरूप ( तनु ) जो कि व्याकरण की दृष्टि से न स्त्रीलिंग है और न ही पुंसक लिंग अथवा नपुंसक लिंग का बोधक है, परन्तु अपनी एक चतुर्थी प्रकृति का द्योतक है, जिसमें वामार्द्ध वक्ष में चन्दनांग-राग का लेप मिलता है तथा जिसके स्वेदविन्दु एवं भस्म-रेणु ऋषियों द्वारा संशोषित हैं; मंगलमय सिद्ध होते हैं ।[1] इस विवरण में भी शिव-पार्वती के उस सम्पृक्त स्वरूप का उदाहरण मिलता है जो कि शैव एवं शाक्त धर्मों के समन्वय का एक सुन्दर प्रतीक है ।

## शक्ति-गणपति ( शाक्त अर्द्धनारीश्वर)

शाक्त-अर्द्धनारीश्वर :- यहाँ उल्लेखनीय है कि अर्द्धनारीश्वर के एक अन्य रूप का प्रतिनिधित्व शक्ति-गणपति के द्वारा किया जाता था, जिसका वर्णन मिश्र-मूर्तियों के प्रसंग में शिल्परत्न में उपलब्ध होता है -

"अथ शक्ति - गणपतिः ।
द्वाभ्यां विभ्राजमानं द्रुतकनकमहाश्रृंखलाभ्यां कराभ्यां
बीजपूरादिशुम्भद्दशभुजललितं पंचबीजस्वरूपम् ।

---

1. "स्वेदार्द्रं वामकुच-मंडन-पत्र-भंग
संशोषि दक्षिणकरांगुलि भस्म-रेणुः ।
स्त्री-पुं-नपुंसक-पद-व्यतिलंघिनी वः
शंभोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ।।"

सुभाषित-रत्नभाण्डागार, पृष्ठ 11, श्लोक 164.

सन्ध्यासिन्दूरवर्णं स्तनभारनमितं तुण्दिलं सन्नितम्बं
कण्ठादूर्ध्वं करीन्द्रं युवतिमयमधो(तं) नौमि देवं गणेशं ।।"

(उत्तरभाग, अध्याय 25, श्लोक 74)

उक्त पंक्तियों में शक्ति-गणपति की मिश्रमूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया कि उनके दस सुन्दर हाथ हैं, जिनमें अक्षमाल (बीजपूर) आदि सुशोभित हैं। इनके ऊपर की दो बाहों में सोने की दो महा-श्रृंखलाएं शोभायमान हैं। वे पंच-तत्वों (बीज) के प्रतीक हैं। इनका वर्ण संध्याकालीन लालिमा के तुल्य सिन्दूर वर्ण का है। वे अपने स्तनों के भार से अवनत हैं। उनका मुख हाथी के सूंढ़ की भाँति (तुण्डिल) है। उनके नितम्ब भाग सुगठित हैं। उनके वपु का निम्न भाग सुन्दर युवती की भाँति है, परन्तु कंठ से ऊपर का भाग हस्तितुल्य है। इस प्रकार के देवता गणेश को बारम्बार नमस्कार है।[1] स्पष्ट है कि यहाँ पर एक ऐसी संयुक्त प्रतिमा का वर्णन मिलता है जो कि किसी अर्द्धनारीश्वर स्वरूप का चित्रण करता है, जिसमें शक्ति एवं गणपति के सम्पृक्त वपु का विवरण प्राप्त है। यद्यपि यह शिल्प-शास्त्र (शिल्परत्न) 16वीं शती का है तथापि यह पूर्वकालीन परम्परा का प्रति-निधित्व करता है जैसा कि मध्य प्रदेश के नीमाड़ जिले के मान्धाता मंदिर में उत्कीर्ण एक लेख (1063 ई0) से अभिव्यंजित होता है।

शैव अर्द्धनारीश्वर में शिव एवं पार्वती के अर्द्ध भाग प्राप्त होते हैं तथा वैष्णव अर्द्धनारीश्वर में विष्णु एवं लक्ष्मी के अर्द्ध भाग प्राप्त होते हैं। शक्ति गणपति अर्द्ध-नारीश्वर रूप में भी पृथमार्द्ध पुरुष एवं द्वितीयार्द्ध नारी के रूप का प्रतिनिधित्व

---

1. शिल्परत्न, भाग 2, अध्याय 25, श्लोक 74.

करता है, परन्तु उनसे यह मिश्र-मूर्ति प्रतिमाशास्त्रीय दृष्टि से एक अद्वितीय विभिन्नता रखती है । शैव एवं वैष्णव अर्द्धनारीश्वर में शैर्षिक विभाजन मिलता है जिसमें दक्षिणार्द्ध शिव/विष्णु तथा वामार्द्ध उमा/लक्ष्मी का अंकन प्राप्त होता है, परन्तु शक्ति-गणपति अर्द्धनारीश्वर रूप में क्षैतिज विभाजन उपलब्ध होता है । इस मिश्रित मूर्ति में कण्ठ के ऊपर का भाग (कण्ठादूर्ध्वम्) गणेश के प्रतिमा-लक्षणों से युक्त हुआ करता था तथा उसमें हाथी का मुख प्रदर्शित होता था (करीन्द्रम्), किन्तु नीचे वाला भाग (अधस्तलम्) शक्ति के प्रतिमा-लक्षणों से युक्त होता था जिसमें कि स्त्री-रूप (युवतीमयम्) दिखाया जाता था । यह अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा गाणपत्य एवं शाक्त धर्मों के समन्वय का प्रतीक है ।

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि मध्यप्रदेश के नीमाड़ जिले के जिस मान्धाता-अमरेश्वर मंदिर (1063 ई0) की ऊपर चर्चा की गई है तथा जिसमें हलायुध-स्तोत्र उत्कीर्ण है, इस स्थान पर विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है । इसकी पंक्तियों के अनुसार गणपति ने अपने माँ-बाप (शिव-पार्वती) के अर्द्धनारीश्वर रूप को देखकर अपना भी अर्द्धनारीश्वर रूप धारण कर लिया था, जिसमें उसका आधा रूप स्त्री और आधा पुरूष का वाचक था (दृष्ट्वा नूनं स्वयमपि दधात्यर्द्धनारीश्वरत्वम्) ।[1]

शक्ति-गणपति के दृष्टांत का एक उदाहरण भेड़ाघाट (जबलपुर म0प्र0) के

---

1. एपिग्राफिका इंडिका,
   जिल्द 36,
   पृष्ठ 92 तथा आगे ।

गौरी-शंकर मंदिर में प्राप्य है जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान एलिस गेटी ने आकृष्ट किया था । इस प्रतिमा में गणेश का मुख हस्तिशुण्ड की भाँति प्रदर्शित है परन्तु उनके वक्षस्थल भाग में स्त्रीरूप प्रदर्शित है (वे स्तनों के भार से अवनत दिखाये गये हैं) ।[1] इस कोटि का दूसरा उदाहरण सतना से मिला है, जिसमें गणेश का सिर हाथी के सूँड़ की भाँति, परन्तु वक्षस्थल स्त्री-स्तन-रूप में प्रदर्शित है ।[2] इस प्रकार की विशेषताएँ तांत्रिक बौद्ध देवी गणपतिहृदया में भी प्राप्य हैं; जिसकी ओर विद्वानों और आचार्यों का ध्यान डी०सी० भट्टाचार्य ने आकृष्ट किया था ।[3]

-----::0::-----

---

1. एलिस गेटी, गणेश, आक्सफोर्ड, 1936, फलक 40.

2. ऐनुअल रिपोर्ट, आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1925-26, फलक 59.

3. आ०क०इ०, डी०सी० भट्टाचार्य, आकृति संख्या 25.

# अध्याय 7

## 'वासुदेव-कमलजा'

## अध्याय 7

### 'वासुदेव-कमलजा'

वैष्णव भेद :- शैव अर्द्धनारीश्वर का वैष्णव समकक्ष 'वासुदेव-कमलजा' है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान विगत वर्षों में आकृष्ट हुआ है। इस स्वरूप में विष्णु एवं लक्ष्मी के संयुक्त रूप उसी भाँति मिलते हैं, जैसा कि शैव अर्द्धनारीश्वर में महेश्वर एवं उमा के सम्पृक्त रूप की अवधारणा में प्राप्य है। ऐतिहासिक महत्त्व से परिपूर्ण वैष्णव अर्द्धनारीश्वर की उपासना वासुदेव-कमलजा के अतिरिक्त कमलार्द्धांग-नारायण[1], लक्ष्म्यर्द्ध-विष्णु[2] एवं हृषीकेश-मोहिनी[3] आदि नामों से भी होती थी। इस समन्वयवादी देव के उद्भव की अवधारणा की ओर संकेत करते हुए शिल्परत्न में कहा गया कि पुण्डरीकाक्ष एवं लक्ष्मी एक ही वपु में मिश्रित हो गए थे ( एकीभूत-वपुः ) ।[4] इसके प्रतिमालक्षणों का विवरण देते हुए कहा गया है कि पुण्डरीक ( विष्णु ) की भुजाओं में शंख, चक्र, पद्म एवं गदा, तथा बादलों में चमकने वाली विद्युत-कांति को धारण करने वाली एवं उन्नत स्तनों से युक्त लक्ष्मी के हाथों में

---

1. दि०च० सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शंस, जिल्द 2, पृष्ठ 104.

2. एम०सी० जोशी, पुरातत्त्व, 1979-80
   ( बुलेटिन आफ दि इंडियन आर्क्यालॉजिकल सोसायटी, नवम्बर अंक )

3. डी०सी० भट्टाचार्य, आ०क०इ०, पृष्ठ 30.

4. "एकीभूतवपुर्वतौ वः पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्यौ",
   शिल्परत्न, भाग 2, अध्याय 22, श्लोक 23.

स्वर्ण कलश, पुस्तक एवं दर्पण सुशोभित हैं । दोनों के ही परस्पर संयुक्त हो जाने का कारण इसमें सर्वदा के लिए एक हो जाना निर्दिष्ट किया गया है । इस प्रकार का एकीभूत लक्ष्मी-नारायण रूप जगत् की रक्षा के लिए सर्वदा सक्षम हैं ।[1]

प्रतापादित्य पाल[2], दि०च० सरकार[3] ( 'अर्द्धनारी नारायण' शीर्षक लेख )

---

1. "हस्ते विभ्रत् सरसिजगदाशंखचक्राणि विद्या
पद्मदर्शौ कनककलशं मेघविद्युद्विलासम् ।
वामोत्तुंगस्तनमविरलाकल्पमाश्लेषशोभा-
देकीभूतं वपुरवतु वः पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः ।।"

शिल्परत्न, उत्तरभाग, अध्याय 23, श्लोक 23, भाग 2.

तुलनाई

"चक्रं विद्यादरघटगदादर्पणान् पद्मयुग्मं
दोर्भिर्बिभ्रत् सुरुचिरतरं मेघविद्युन्निभाभम् ।
गाढोत्कण्ठाविवशमनिशं पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्यो-
रेकीभूतं वपुरवतु वः पीतकौशेयकान्तम् ।।"

शिल्परत्न, उत्तरभाग, अध्याय 25, श्लोक 75.

2. पी०पाल, 'वैष्णव आइकोनोलॉजी ऑफ नेपाल', अध्याय 7.

3. दि०च० सरकार, 'फॉरेनर्स इन ऐंशेंट इंडिया' ; लक्ष्मी ऐण्ड सरस्वती इन आर्ट एण्ड लिटरेचर, पृष्ठ 132 तथा आगे

एस0बी0 देव[1] ('सम-अर्द्धनारी फार्म्स आॅफ विष्णु' शीर्षक लेख)), डी0सी0 भट्टाचार्य[2] ('दी काम्पोजिट इमेज आॅफ लक्ष्मी ऐण्ड विष्णु' शीर्षक लेख) तथा एम0सी0 जोशी[3] ('कम्पोजिट इमेजेज आॅफ लक्ष्मी ऐण्ड विष्णु' सम आब्जर्वेशंस' शीर्षक - लेख) आदि ने वैष्णव अर्द्ध-नारीश्वर की अवधारणा के उद्भव एवं साक्ष्यों पर विचार प्रकट किया ।

प्रतापादित्य पाल ने वैष्णव अर्द्धनारीश्वर के उद्भव का मूल सांख्य-दर्शन के द्वैत (प्रकृति एवं पुरुष) के उपाय एवं प्रज्ञा में निर्दिष्ट करने का प्रयास किया है ।[4] इस दार्शनिक व्याख्या के अतिरिक्त विद्वानों ने इसका कारण मध्यकालीन शाक्त तंत्रवाद माना है जिसके अनुसार वैष्णव धार्मिक अवधारणाएँ एवं स्वरूप शाक्त-शैव अवधारणाओं एवं विषयों में समाविष्ट होने लगीं । यही कारण है कि ग्यारहवीं शताब्दी ई0 से तंत्र साहित्य एवं भारतीय कला में वैष्णव अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा के प्रमाण मिलने लगते हैं । 11वीं शती का शारदातिलक शीर्षक तांत्रिक-ग्रंथ ((काश्मीरी तांत्रिक तंत्र) पहला ग्रंथ है जिसमें विष्णु के लक्ष्म्यर्द्ध रूप का उल्लेख मिलता

---

1. भारती; 10-11, 1966-68, पृष्ठ 125-133.
2. आ0क0इ0, पृष्ठ 29-31.
3. पुरातत्व, नवम्बर, अंक 1979-80.
4. एम0सी0 जोशी, पुरातत्व, 1979-80 (अंक)
   बुलेटिन आॅफ दि इंडियन आर्कियोलाॅजिकल
   सोसायटी, नवम्बर अंक ।

है । इसमें वैकुण्ठ एवं कमलजा की एकता का विवरण प्राप्य है । इसका काव्यात्मक वर्णन करते हुए इसमें कहा गया है कि वैष्णव अर्द्धनारीश्वर का 'वपु' विद्युत एवं चन्द्र की भाँति छटायुक्त है तथा नानारत्नों एवं भूषणों से अलंकृत है । उनके हाथों में पुस्तक, कमल, दर्पण, मणिमय कुंभ, कमल, गदा, शंख-चक्र तथा कौस्तुभ मणि आदि सुशोभित हैं ।[1] शारदा देवी की पूजा में अर्द्धनारीश्वर शिव एवं अर्द्धनारीश्वर विष्णु को समान रूप से महत्व दिया गया है ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा सबसेपहली बार ।।हवीं शती से मिलनी आरम्भ होती हैं तथा इस विषय में सबसे प्रारम्भिक आभिलेखिक प्रमाण ।।हवीं शती का यक्षपाल का गया का शीतला-मंदिर-लेख ( 1075-85 ई0 ) है, जिसके अनुसार इस नरेश ने गया में स्थित इस मंदिर में 'कमलार्द्धांगिण-नारायण' की प्रतिमा स्थापित की थी । इससे तात्पर्य वैष्णव अर्द्धनारीश्वर से है । इसके अतिरिक्त इसने मौनादित्य सहस्रलिंग, सोमेश्वर, फल्गुनाथ, विजयादित्य एवं केदार की प्रतिमाओं की भी स्थापना की थी । यहाँ पर हम धर्म-समन्वयवादी भावना का

---

1. "विद्युच्चन्द्रनिभं वपुः कमलजावैकुण्ठयोरेकताम्
प्राप्तं स्नेहवशेन रत्नविलसद्भूषाभिरलंकृतम् ।
विद्यापंकजदर्पणं मणिमयं कुंभं सरोजं गदां
शंखं चक्रमणिविभ्रदमितं दिश्यात्श्रियं वः सदा ।।"

शारदातिलक, पटल 13, श्लोक 1.

प्रतिबिम्ब पाते हैं ।[1]

बृहत्तंत्रसार में भी 'वैकुण्ठकमलजा' के मिश्रित स्वरूप का वर्णन मिलता है (वपु: कमलजा-वैकुण्ठयोरेकतां प्राप्तं)[2] । यह पंक्ति शारदातिलकतंत्र की पंक्ति से पर्याप्त साम्य रखती है, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । उल्लेखनीय है कि 'वासुदेव-कमलजा' का दृश्यांकन एक नेपाली पट के ऊपर हुआ है जो कि रामकृष्ण इंस्टीट्यूट कलकत्ता में सुरक्षित है तथा जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान सबसे पहली बार प्रतापादित्य पाल ने आकृष्ट किया था । इस पट में एक नेवाड़ी लेख संयुक्त है तथा बृहद्तंत्रसार की उक्त पंक्ति भी इस पर उद्धृत है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है । उक्त पट पर उद्धृत नेवाड़ी-लेख में 'वैष्णवम्-कमलान्वितम्' के उल्लेख द्वारा 'वासुदेव - कमलजा' के मिश्रित स्वरूप की ओर संकेत किया गया है ।[3] शारदातिलकतंत्र में इस कोटि की प्रतिमा को 'अर्द्धनारीश्वर-हरि' के रूप में उल्लिखित करते हुए

---

1. "मौनादित्य-सहस्रलिंग कमलार्द्धांगीण-नारायण-
   द्वि (द्वा) सोमेश्वर-फल्गुनाथ-विजयादित्याह्वयानां कृती ।
   स प्र (प्रा) सादमचीकरद्दिविषदां केदारदेवस्य च'
   ख्यातस्योत्तरमानसस्य खननं तत्र (त्रं) वटे चाक्षये ।।"

   दि0च0 सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, जिल्द 2, पृष्ठ 104.

2. बृहत्ततंत्रसार, पृष्ठ 191-192 (बंगवासी संस्करण);
   डी0सी0 भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 30.

3. जर्नल आॅफ एशियाटिक सोसायटी,
   संख्या 3-4, 1963, पृष्ठ 73 एवं आगे ।

कहा गया कि इस प्रकार के मूर्त्तन में हरि एवं लक्ष्मी का संयुक्त रूप होना चाहिए तथा शैव अर्द्धनारीश्वर की भाँति इसमें 'वपु' दो समान भागों में विभाजित होना चाहिए (देहार्द्धविभागेन)।[1]

प्रतापादित्य पाल ने 'वासुदेव-कमलजा' की एक मिश्रित प्रतिमा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया, जो काश्मीर से उपलब्ध हुई थी, परन्तु अब पान एशियन संग्रह (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) में सुरक्षित है। श्री पाल के अनुसार यह प्रतिमा 12हवीं शती की है, जिसमें वैष्णव गरुड़ अर्द्धनारीश्वर गरुड़ के ऊपर आरूढ़ हैं इस उदाहरण में विष्णु एवं लक्ष्मी के मिश्रित स्वरूप में प्राप्य आठों ही आयुधों का दृश्यांकन हुआ है। लक्ष्म्यर्द्ध भाग में ऊपर से नीचे क्रमानुसार पुस्तक, दर्पण, कलश एवं पद्म हैं तथा विष्ण्वर्द्ध में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित हैं।[2]

प्रतापादित्य पाल ने नेपाल की एक कांस्य-प्रतिमा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है जो कि पहले नेपाल से मिली थी। यह सम्प्रति वसेल-संग्रहालय स्विटजरलैंड में सुरक्षित है। इस वासुदेव-कमलजा उदाहरण में अर्द्धनारीश्वर एक गरुड़-आकृति सदृश पद्मपीठ पर समपाद मुद्रा में दृश्यांकित है। दक्षिण भाग में नीचे की ओर एक महीन अधोवस्त्र (धोती) सुशोभित है, जबकि वामार्द्ध पुष्प स्वरूपों की कढ़ाई से युक्त साड़ी पहने उच्चित्रित है। हर्यर्द्ध भाग में चक्र, गदा,

---

1. शारदातिलकतंत्र, ए एवोलोन द्वारा (सम्पादित), भाग 2, 17 (तांत्रिक टेक्स्ट) कलकत्ता 1933, पृष्ठ 618.

2. एम०सी० जोशी, पुरातत्व, अंक 1979-80.

शंख एवं पद्म तथा लक्ष्म्यर्द्ध में पुस्तक, दर्पण एवं कलश सुशोभित हैं । चौथा हाथ खण्डित है । इस प्रतिमा के दक्षिणार्द्ध भाग में विष्णु के प्रतिमा-लक्षण एवं वामार्द्ध में लक्ष्मी-प्रतिमा के लक्षण उपलब्ध होते हैं जिसका वर्णन बृहद्तंत्रसार, शारदातिलक तंत्र, शिल्परत्न एवं नेवाड़ी-लेख में मिलता है ।[1]

'वासुदेव-कमलजा' की एक अन्य मिश्रित प्रतिमा वैद्यनाथ (कांगड़ा हिमाचल प्रदेश)में प्राप्य है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान श्री एम०सी० जोशी ने आकृष्ट किया है । यह प्रतिमा प्रस्तर-निर्मित है तथा अपनी शैली-गत विशेषताओं के आधार पर 13हवीं शती ई० की मानी जा सकती है । इसमें वैष्णव अर्द्धनारीश्वर गरूड के ऊपर समपादमुद्रा में प्रदर्शित हैं । इनके दोनों पार्श्वों में पुरूष एवं स्त्री अनुचर भी दृश्यांकित हैं । विष्णवर्द्ध भाग चारों हाथों में क्रमानुसार शंख, चक्र, पद्म एवं गदा तथा किरीटमुकुट से युक्त पुरूष-वेश में सुशोभित है तथा लक्ष्म्यर्द्ध भाग दर्पण, कलश, पुस्तक एवं कमल हाथों में लिए तथा कर्णपूर एवं चूड़ियों से सुशोभित स्त्रीवेष में दृश्यांकित है । इस मिश्रित प्रतिमा के पुरूष-भाग में धोती एवं लक्ष्मी भाग में साड़ी अधो-वस्त्र के रूप में उच्चित्रित है ।[2]

'<u>वासुदेव-कमलजा</u>' की एक उल्लेखनीय प्रतिमा हाल ही में राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली द्वारा प्राप्त की गई । यह अष्टधातु-निर्मित उदाहरण 15हवीं शती का है जो कि अपने मूलकाल में नेपाल में वर्तमान था । पंखुड़ियों की दो मालाओं से अंकित

---

1. डी०सी० भट्टाचार्य, आ०क०इ०, पृष्ठ 30.

2. एम०सी० जोशी का लेख, पुरातत्त्व, अंक 1979-80.

प्रफुल्ल पद्मपीठ पर समपाद मुद्रा में प्रदर्शित इस उदाहरण में वाम भाग साड़ी ( विभिन्न आकर्षक आकृतियों से सुशोभित) पहने तथा दायाँ भाग धोती पहने उच्चित्रित है, जो एड़ियों तक लटकते प्रदर्शित है। शैर्षिक रूप में दो भागों में विभाजित दक्षिणार्द्ध, वासुदेव का द्योतक है, जबकि वामार्द्ध कमलजा ( लक्ष्मी ) का वाचक है। लक्ष्म्यर्द्ध में एक स्तन तथा इस ओर के चारों हाथों में क्रमानुसार ऊपर से नीचे पुस्तक, सनालपद्म, दर्पण एवं कुंभ सुशोभित हैं। प्रतिमाशास्त्रीय नियमों के अनुसार ये लक्ष्मी के आयुध हैं। हर्यर्द्ध में ऊपर से नीचे क्रमानुसार सनालपद्म, गदा, शंख एवं चक्र सुशोभित हैं। आभरणों में वनमाल, हार, कमरपेटी, बाजूबंध एवं कंकण यथोचित स्थानों पर निरूपित हैं। किरीटमुकुट में दक्षिणार्द्ध पुरुषवेश तथा वामार्द्ध स्त्रीवेश में प्रदर्शित हैं ( आकृति संख्या 56 )। यहाँ उल्लेखनीय है कि ये उदाहरण भी शारदातिलकतंत्र एवं बृहद्तंत्रसार आदि तांत्रिक ग्रंथों में निरूपित सिद्धान्तों के अनुकूल निर्मित हैं। उल्लेखनीय है कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में तांत्रिक प्रभाव के कारण शैव-शाक्त पूजा-प्रतीकों एवं अवधारणाओं में वैष्णव पूजा-प्रतीक समाहित हो चुके थे। यही कारण है कि इस समय से वैष्णव अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाएँ अधिक संख्या में मिलने लगीं। नेपाल में, जो तांत्रिक अवधारणाओं एवं धार्मिक सद्भावना से विशेष रूप से प्रभावित हो रहा था, इस प्रकार की संयुक्त प्रतिमा प्रचुर रूप में उपलब्ध होती हैं।

-----::0::-----

## अध्याय 8

## संघाट प्रतिमाएँ : हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ

## अध्याय 8

## संघाट प्रतिमाएँ : हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ

जिन मिश्रित मूर्तियों में दो से अधिक देवताओं के संयुक्त प्रतिमा-लक्षण उपलब्ध होते हैं, उनके लिए 'संघाट' शब्द का प्रयोग मिलता है । इसका उल्लेख विश्वकर्मा के अप्रकाशित ग्रंथ वास्तुविद्या में उपलब्ध होता है ।[1] शिल्परत्न[2] में संयुक्त मूर्तियों के लिए सामान्य रूप से 'मिश्रमूर्त्तयः' शब्द का प्रयोग मिलता है जो कि दो से अधिक देवताओं की सम्पृक्त प्रतिमाओं का बोधक था । इस कोटि की मिश्रित मूर्तियों में हरिहर-पितामह, हरिहर-हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, पंचायतन लिंग, द्वादश मन्वन्तर-विष्णु, गुह्येश्वरी-पद्ममोहनी, अष्टलोकपाल विष्णु आदि उल्लेखनीय हैं । संघाट-कोटि का शिल्प-विधान एक दूसरे रूप में भी देखने को मिलता है, जिसमें एक ही फलक पर कई देवी-देवताओं को एकत्र प्रदर्शित किया गया । उदाहरणार्थ, त्रिमूर्ति, विराटरूप अथवा विश्व-प्रदर्शन आदि । इस कोटि के असंयुक्त मूर्तिविधान में भी धर्मसमन्वयवादिता का प्रतिबिम्ब मिलता है ।

हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ :- ब्रह्मा, विष्णु शिव (त्रिदेव) एवं सूर्य की संयुक्त प्रतिमा को प्रतिमा-शास्त्रीय ग्रंथों में हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ की संज्ञा प्रदान की गई है । मार्कण्डेय पुराण[3] में इन चारों देवताओं के सम्पृक्त रूप की अव-

---

1. एम०ए० ढाकी-प्रदत्त सूचना ; पी०पाल, वै०आ०इ०ने०, पृष्ठ 126.
2. शिल्परत्न, उत्तर भाग, अध्याय 25, श्लोक 73.
3. "ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।
   त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वं प्रसीदतु ।।"

   मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 109, श्लोक 71.

धारणा प्राप्य है । शारदा-तिलकतंत्र[1] में भी ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव की संयुक्त प्रतिमा के साथ सूर्य के तादात्म्य का विवरण प्राप्य है । उक्त ग्रंथ के अनुसार इस कोटि की मिश्रित मूर्तियों में खट्वांग, पद्म, चक्र, शक्ति, पाश, स्रुक, अक्षमाल एवं कपाल आयुध के रूप में हाथों में धारण किए हुए प्रदर्शित होना चाहिए । इसमें त्रिदेव एवं सूर्य के आयुधों का स्पष्ट विवरण उपलब्ध होता है । अपराजितपृच्छा में भी इन चारों देवताओं की मिश्रित मूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें देव को चार मुख एवं आठ बाहों से सुशोभित संयुक्त रूप में प्रदर्शित होना चाहिए । सूर्य के दोनों हाथ पद्म धारण किए हुए, शिव ( रुद्र ) खट्वांग एवं त्रिशूलधारी, पितामह, कमंडलु एवं अक्षसूत्र हाथों में लिए हुए तथा विष्णु शंख और चक्रधारी शिल्पित हों ।[2]

---

1. "वदेत्पादं चतुर्थ्यन्तं ब्रह्माविष्णुशिवान्तकम् ।
   सौराय योगपीठाय पादां तदनन्तरम् ।।
   पीठमंत्रोर्यमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ।।"

   शारदातिलकतंत्र, अध्याय 14, श्लोक 41-42.

2. "चतुर्वक्त्रं चाष्टबाहुं चतुष्कैकंनिवासनम् ।
   अज्वागतोमुखः कार्य पद्महस्तो दिवाकरः।।
   खट्वाङ्गं त्रिशूलहस्तो रुद्रो दक्षिणतः शुभः ।
   कमण्डलु-चाक्षसूत्रमपरे स्यात् पितामहः ।
   वामे तु संस्थितश्चैवं शंखचक्रधरो हरिः ।

   अपराजितपृच्छा, 213, 32-34.

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि देवतामूर्तिप्रकरण में भी विष्णु, शिव, ब्रह्मा एवं सूर्य की समन्वित प्रतिमा का वर्णन हरिहर-हिरण्यगर्भ नाम से किया गया है । इस ग्रंथ के अनुसार यह देवता चतुर्मुख, अष्टभुज और एक चतुष्क ( चतुष्कोण स्थान ) पर आसीन हों । पूर्वाभिमुख सूर्य के दोनों हाथों में पद्म, दक्षिणाभिमुख रुद्र के दोनों हाथों में खट्वाङ्ग एवं त्रिशूल, पश्चिमामुख पितामह के हाथों में कमण्डलु एवं अक्षसूत्र तथा उत्तराभिमुख विष्णु के हाथों में शंख और चक्र आयुधरूप में अंकित होना चाहिए ।[1] देवतामूर्तिप्रकरण का यह विवरण अपराजितपृच्छा के प्रतिमाशास्त्रीय विधान से समीकरणीय है ।

शिल्पशास्त्रों में वर्णित उपर्युक्त मिश्रित प्रतिमाओं का उच्चित्रण कला में किंचित् परिवर्तनों के साथ हुआ है । इस प्रकार की मूर्तियों के उदाहरण चिदम्बरम् , लिम्बोजीमाता मंदिर ( देलमल, गुजरात ), खजुराहो तथा हाल ही में मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में भैरमगढ़ नामक नगर के पास डोंगर-रासपाड़ा से प्रकाश में लाये गये हैं । चिदम्बरम्-प्रतिमा में सूर्य के तीन मुख एवं आठ बाहें प्रदर्शित हैं और उनके हाथों में कमण्डलु, चक्र, त्रिशूल एवं गदा निरूपित हैं जो कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सूर्य के आयुध हैं । सूर्य, सात अश्वों से जुते हुए रथ में आरूढ़ हैं ।[2]

इसी प्रकार की एक अन्य सूर्य-प्रतिमा लिम्बोजीमाता मन्दिर के दक्षिण-पूर्व

---

1. देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 44-46.

2. बनर्जी, जे0एन0, डे0हि0आ0, पृष्ठ 551.

कोने पर प्राप्त है । यह एक त्रिमुख प्रतिमा है जिसमें शिव वाम पार्श्व, सूर्य-नारायण केन्द्रीय भाग तथा ब्रह्मा दक्षिण पार्श्व में प्रदर्शित हैं । इस संयुक्त प्रतिमा में गरुड, हंस एवं वृषभ-आकृतियाँ भी अंकित हैं, जो क्रमानुसार विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव के वाहन हैं ।[1] इस कोटि की एक अष्टभुजी संयुक्त प्रतिमा खजुराहो के दूलादेव के मंदिर के केन्द्रीय भद्र के पश्चिमी पार्श्व में वर्तमान है । इस देव के हाथों में सनाल पद्म, त्रिशूल, अक्षमाल, सर्प, चक्र तथा कमण्डलु सुशोभित हैं, जो कि सूर्य, शिव विष्णु एवं ब्रह्मा के आयुध हैं । विष्णु का एक आयुध तथा इसी प्रकार ब्रह्मा का भी एक आयुध ( संभवतः पुस्तक ) प्रतिमा से खण्डित हो चुके हैं । इस प्रतिमा के आसन में सात अश्वों से जुते हुए रथ में अरुण सारथी के रूप में प्रदर्शित है[2] ( आकृति संख्या 57 ) । इन संयुक्त प्रतिमाओं के निर्माण की पृष्ठभूमि में तत्कालीन धर्म-समन्वयवादिता एवं साम्प्रदायिक सद्भावना के आदर्श क्रियाशील थे ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जिन उपर्युक्त दृष्टांतों की चर्चा की गई, उनमें हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ समान रूप से एक शरीर वाले, त्रिमुख अथवा चतुर्मुख और अष्टभुज देवता के रूप में प्रदर्शित हैं । परन्तु इस देवता के उच्चित्रण का एक दूसरा प्रकार वह था जिसमें चारों देवता ( ब्रह्मा, विष्णु सूर्य और शिव ) जैन सर्वतोभद्रिकाओं के समान एक ही चतुष्क पर चार दिशाओं की ओर मुख करके खड़े उच्चित्रित हैं । मूर्तिकला में इस देवता के शिल्पांकन का एक तृतीय प्रकार भी था, जिसमें इस देव को एक ही देह वाले, एकमुख और आठ भुजाओं से संयुक्त दिखाया गया है ।

---

1. बनर्जी, जे०एन०, डे०हि०आ०, पृष्ठ 551-552.

2. बनर्जी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 552.

इस प्रकार की एक ही प्रतिमा अब तक प्रकाश में आयी है जो कि बस्तर जिले के भैरमगढ़ नगर के पास डोंगररासपाड़ा के मंदिर में विद्यमान है जिसकी चर्चा इस परिच्छेद में ही आगे की गई है ।

प्रथम कोटि की मूर्तियों के कुछ अन्य उदाहरणों में खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर में वर्तमान प्रतिमा, गुजरात के महेसाणा जिले में प्राप्य प्रतिमा, देवास जिले के राज्य-संग्रहालय गन्धर्वपुरी-निधि में वर्तमान प्रतिमा, प्रताप संग्रहालय उदयपुर में वर्तमान मूर्ति एवं महाराष्ट्र के चाँदा जिले में स्थित मार्कण्डेय मंदिर की प्रतिमा उल्लेखनीय हैं । खजुराहो के लक्ष्मण-मंदिर ( 953-54 ई० ) के दक्षिण-पूर्व कर्ण-प्रासाद के पूर्वी जंघा पर स्थापित 'हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ' के उदाहरण में इस देवता को त्रिमुख एवं अष्टभुज तथा पद्मपीठ पर समपाद मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है । उनका केन्द्रीय मुख किरीट-मुकुट से सुशोभित तथा दोनों पार्श्व जटामुकुट से मंडित हैं । वे कुण्डल, केयूर, कंकण, श्रीवत्स, हार एवं मेखला आदि भी धारण किए हुए हैं । उनके चार दायें हाथों में अक्षमाल ( वरदमुद्रा में ) , चक्र, त्रिशूल तथा सनाल पद्म ( जिसका केवल नाल भाग ही बचा हुआ है ) अलंकृत हैं । उनके चार वाम करों में सर्प, शंख, कमण्डलु एवं सनालपद्म आयुध के रूप में प्रदर्शित हैं । पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व रथ का अंकन भी प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट है कि इसमें प्रधान देवता सूर्य हैं । स्पष्ट है कि आठ हाथों एवं उनमें धृत आयुधों का चित्रण पूर्णतया शास्त्रीय विवरण के अनुकूल है ( आकृति संख्या 58) ।

गुजरात के महेसाणा जिले में प्राप्त इस कोटि की प्रतिमा में देवता त्रिमुख एवं अष्टभुज तथा पद्मपीठ पर पद्मासन मुद्रा में आसीन हैं । पद्मपीठ पर सप्ताश्व रथ का उच्चित्रण भी मिलता है, जिससे सूर्यदेव ( हिरण्यगर्भ ) का प्रतिनिधित्व स्पष्ट है । खजुराहो के लक्ष्मण-मन्दिर की प्रतिमा की भाँति उनके केन्द्रीय मुख पर किरीट मुकुट और पार्श्व मुखों पर जटामुकुट का उच्चित्रण द्रष्टव्य है । आभरणों में कुण्डल, हार, श्रीवत्स एवं मेखला आदि उल्लेखनीय हैं । मूर्ति के हाथों में पद्म,

शंख, सर्प, खट्वांग, पुस्तक एवं चक्र आयुध-रूप में प्रदर्शित हैं । इस मूर्तिविधान में प्रतिमा-लक्षण शास्त्रीय नियमों के अनुकूल हैं । पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व रथ का उच्चित्रण सूर्य की प्रधानता का द्योतक है । यह मूर्ति शैलीगत विशेषताओं के आधार पर 12हवीं शताब्दी की हैं । देवास जिले के गन्धर्वपुरी नामक स्थान से प्रकाशित इस कोटि की एक अन्य प्रतिमा सम्प्रति राज्य-संग्रहालय गन्धर्वपुरी ( सं0 जी0डी0 पी0 103 ) में सुरक्षित है । इसमें देवता एकदेह, त्रिमुख एवं अष्टभुज और समभंग खड़े शिल्पित हैं । उनके केन्द्रीय मस्तक पर किरीटमुख तथा पार्श्वमस्तकों पर जटामुकुट का उच्चित्रण प्राप्य है । उनके आभरणों में कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, मेखला एवं वनमाल उल्लेखनीय हैं । आयुधों में पद्म, चक्र, त्रिशूल, खटवांग एवं कमण्डलु उल्लेखनीय हैं । शिरश्चक्र ( प्रभावली ) में शीर्ष-विन्दु पर चतुर्भुज योगासन विष्णु, दाईं ओर त्रिमुख, चतुर्भुज एवं लम्बकूर्च ब्रह्मा तथा बाईं ओर चतुर्भुज शिव का उच्चित्रण द्रष्टव्य है । इस मूर्तन में प्रतिमालक्षण शिल्पशास्त्रों के वर्णन के अनुकूल हैं । यह प्रतिमा जंघ से नीचे नष्ट है । अतएव वाहनों की कल्पना असंभव है । शैलीगत विशेषताओं के आधार पर इस काल प्रतिमा का 11हवीं शताब्दी ई0 है ( आकृति संख्या 59 )।

प्रताप-संग्रहालय उदयपुर में प्रदर्शित इस कोटि की देव-प्रतिमा भी उल्लेखनीय है, जिसमें भी प्रमुख एवं अष्टभुज देव का मूर्तन समभंग मुद्रा में हुआ है । इसके शिरश्चक्र-रूप में पद्माकृति प्रभामण्डल द्रष्टव्य है । प्रतिमा-लक्षणों में केन्द्रीय मस्तक पर किरीट-मुकुट और पार्श्वमुकुटों पर जटामुकुट का शिल्पांकन शास्त्रीय नियमों के अनुकूल हैं । आभरणों में कुण्डल, हार, केयूर, वनमाल तथा वाहनों में वृष, हंस, गरुड एवं सप्ताश्व युक्त रथ उच्चित्रित हैं । पैरों के उपानह की अवस्थिति सूर्य की प्रधानता का बोधक है ।

इस कोटि की एक अन्य विशिष्ट प्रतिमा महाराष्ट्र के चाँदा जिले में स्थित

मार्कण्डेय-मंदिर में वर्तमान है, जिसमें देवता के त्रिमुख एवं अष्टभुज शिल्पांकित हैं। सारथी अरुण द्वारा वाहित सप्ताश्व रथ पर समभंग मुद्रा में विराजमान होना एवं पैरों में उपानह का धारण, हिरण्यगर्भ ( सूर्य ) की उपस्थिति का द्योतन करता है। उनके केन्द्रीय मस्तक पर किरीटमुकुट और पार्श्व मस्तकों पर जटामुकुटों का उच्चित्रण प्राप्य है। कुण्डल, हार, केयूर, कंकण, यज्ञोपवीत एवं मेखला आदि उनके आभूषण हैं। उनके हस्तायुधों में सनाल पद्म, अक्षसूत्र, त्रिशूल, स्रुवा, चक्र और कमण्डलु द्रष्टव्य होते हैं। उदीच्य वेश में भूषित सूर्य-प्रतिमाओं के सदृश यहाँ देवता के उभयपार्श्वों में लेखनी, पुस्तक एवं खड्ग-धारी दण्डी एवं पिंगल के रूप में उनके दोनों प्रतीहारों का मूर्तन शिल्पविधान के अनुसार हुआ है।[1] चरणों में समक्ष भू-देवी का परम्परित उच्चित्रण प्राप्य है।[2]

---

1. "प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डपिंगलौ।
   कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ।।

   लेखनी कृतहस्त च पार्श्वे धातारमव्ययम्।"

   अपराजितपृच्छा, अध्याय 260, श्लोक 5-6.

2. जी०बी० देगुलकर, टेम्पुल आर्किटेक्टर ऐण्ड स्कल्पचर आफ महाराष्ट्र, पृष्ठ 149, फलक 55, आकृति।

ओसियाँ के सचियामाता मंदिर (लगभग 1025 ई0) के दक्षिण पूर्व जंघा पर रूपायित 'हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ' के इस उदाहरण में इस देवता को त्रिमुख, अष्टभुज एवं समपाद-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनका केन्द्रीय मुख किरीट-मुकुट से सुशोभित तथा दोनों पार्श्व जटामुकुट से मंडित हैं। उनके आभारणों में कुण्डल, श्रीवत्स, हार, यज्ञोपवीत, मेखला एवं वनमाल उल्लेखनीय हैं। सभी हाथ खण्डित हैं। आयुधों में सनालपद्म, त्रिशूल एवं चक्र स्पष्ट हैं। पार्श्व में ब्रह्मा का वाहन हंस एवं देव-अनुचर आकारित हैं (आकृति संख्या 60)। इसी कोटि की एक अन्य प्रतिमा ओसियाँ के ही सचियामाता मंदिर के उत्तर पूर्वाभिमुख जंघा के दक्षिण छोर पर आकारित रथिका में उच्चित्रित है। यह प्रतिमा भी त्रिमुख एवं खण्डित अष्ट-भुज है। आयुधों में सनालपद्म, त्रिशूल एवं सर्प स्पष्ट है, जो कि सूर्य एवं शिव के आयुध हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु के आयुध खण्डित हैं। आभरणों में भी समरूपता है। शिलापट्ट के ऊर्ध्व भाग में हवा में उड़ते विद्याधर, भी शिल्पांकित है। निम्न भाग में करबद्ध एवं श्रद्धावनत पूजाभाव मुद्रा में देव-परिचर-समूह दोनों पार्श्वों में आका-रित है (आकृति संख्या 61)।

मूर्तिकला में हरिहर पितामह-हिरण्यगर्भ के उच्चित्रण का द्वितीय प्रकार वह है जिसमें चारों देवता (विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्य) जैन सर्वतोभद्रिकाओं के समान एक ही चतुष्क पर चारों दिशाओं की ओर अभिमुख शिल्पांकित है। इस प्रकार का भी संयुक्त मूर्ति-विधान चार प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों (प्राजापत्य, वैष्णव, सौर एवं शैव) के समन्वयवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

इस प्रकार के दो उल्लेखनीय उदाहरण राजस्थान संग्रहालय, अजमेर में प्रदर्शित हैं। दोनों ही प्रतिमाएँ भरतपुर के कामा नामक स्थान से प्रकाश में लाई गई थीं। प्रथम उदाहरण में चतुर्मुख शिवलिंग के चारों मुखों पर चार देवता (सूर्य, शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा) उच्चित्रित हैं। इनमें सूर्य पूर्वाभिमुख, विष्णु पश्चिमाभिमुख, ब्रह्मा

उत्तराभिमुख एवं शिव दक्षिणाभिमुख प्रदर्शित हैं। ब्रह्मा त्रिमुख, जटामुकुटधारी, लम्बोदर और पदमासन पर विलसित हैं। उनका केन्द्रीय मुख सकूर्च प्रदर्शित है। विष्णु अष्टभुज एवं गरुडासीन तथा शिव चतुर्भुज, त्रिनेत्र एवं नन्दीवाहन पर आसीन हैं। सूर्य को द्विभुज, सनालपद्मधारी, कुण्डल, कवच एवं उपानह से युक्त उदीच्य वेश में दिखाया गया है। सप्ताश्व रथ पर चाबुक एवं लगाम लिए अरुण सारथी के रूप में प्रदर्शित हैं।

द्वितीय उदाहरण में भी चार देवता चतुर्मुख शिवलिंग के चारों ओर अंकित हैं। इसमें सूर्य, उदीच्यवेश में द्विभुज और पद्महस्त प्रदर्शित हैं। उनके साथ अरुण सारथी के रूप में तथा उनकी दोनों पत्नियाँ (उषा-प्रत्युषा) भी शिल्पांकित हैं। ब्रह्मा जटामुकुटधारी, त्रिमुख एवं पद्मपीठ पर समभंग विलसित हैं। उनके सभी मुख कूर्चरहित हैं तथा वे यज्ञोपवीत और प्रलम्ब हार से अलंकृत हैं। विष्णु चतुर्भुज, किरीटमुकुट एवं वनमाल से विभूषित हैं। नागोपवीतधारी शिव भी चतुर्भुज हैं तथा उनके पद्मपीठ पर नंदीवाहन उत्कीर्ण हैं।[1] इन उदाहरणों में उक्त चार देवताओं का एक ही चतुष्क पर एकत्र उच्चित्रण उनकी संयुक्त प्रकृति तथा साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रतीक है।

तृतीय कोटि की प्रतिमा जो कि मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में भैरमगढ़ नगर के डोंगररास-पाड़ा नामक मंदिर में प्रतिष्ठित है, उक्त सभी प्रतिमाओं से विभिन्नता रखती है और इस अर्थ में अब तक अपने वर्ग के एक अद्वितीय मूर्तिविधान के अंतर्गत आती

---

1. भट्टाचार्य यू०सी०, कैटलॉग ऐण्ड गाइड टू राजपूताना-म्यूजियम, अजमेर, पृष्ठ 15-17, फलक 1, 2.

है । इसमें सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव को एक ही मुख के अतंर्गत् प्रदर्शित किया गया जबकि उपर्युक्त उदाहरणों में चतुर्मुख या त्रिमुख रूप में उन्हें प्रदर्शित किया गया । इस उदाहरण में चतुर्देव की संयुक्त प्रतिमा एक रथ पर समभंग मुद्रा में विलसित है, जिसमें सात दौड़ते अश्व जुते हुए हैं । सारथी अरूण अपने ऊपर उठे दाहिने हाथ से लगाम (रश्मि ) पकड़े हुए हैं । प्रमुख देव किरीटमुकुटधारी एवं कर्ण-कुण्डल, कौस्तुभमणि से सुशोभित हार, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, अभ्यंगमेखला एवं लम्बे उपानह धारण किए हुए हैं । एक देही एवं अष्टभुज इस देवता के ऊपर उठे दोनों बाहों में पूर्ण विकसित सनालपद्म उनके कंधे के ऊपर उठे हुए विराजमान हैं । अन्य छह बाहों में दाहिने तीन में स्रुवा, त्रिशूल एवं शंख तथा तीन वाम हस्तों में वेद, खट्वांग एवं चक्र सुशोभित हैं । स्पष्ट है कि यह सूर्य, ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु के आयुध हैं । सूर्य-अनुचर दंड वाम पार्श्व में तथा पिंगल दक्षिण पार्श्व में सुशोभित हैं । इस उदाहरण में सूर्य का प्रतिनिधित्व सनालपद्म उपानह एवं उनके अनुचरों तथा सारथी आदि के द्वारा होता है । ब्रह्मा का प्रतिनिधित्व स्रुक् एवं वेद द्वारा, शिव की अवस्थिति त्रिशूल एवं खट्वांग द्वारा तथा विष्णु का प्रतिनिधित्व शंख एवं चक्र द्वारा होता है ( आकृति संख्या 62 ) । शिल्पशास्त्रों में ये चारों ही देवता अभेद्य ( अभिन्न ) माने गये हैं । इस मूर्ति की अप्रतिम प्रकृति इसके एक मुख के अंकन द्वारा स्पष्ट है । शिल्पशास्त्रों में भी इस प्रकार के उच्चित्रण का कोई विधान नहीं मिलता, जिससे इसकी अविरलता प्रतिपादित हो जाती है । इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए इस उदाहरण को हम हरिहर-हिरण्यगर्भ-पितामह कह सकते हैं ।[1]

-----::0::-----

---

1. विवेकदत्त झा, यूनीक सिनक्रिटिक इमेजेज फ्राम बस्तर, प्राच्य-प्रतिभा, जिल्द 5, संख्या 2, पृष्ठ 35-38.

## अध्याय 9

## हरिहर-पितामह

## अध्याय 9

## हरिहर - पितामह

धार्मिक समन्वयवादिता को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से भारतीय शिल्प और पूजा-विधान में जिन संघाट मूर्ति-स्वरूपों की कल्पना की गयी उनमें हरिहर पितामह का भी उल्लेखनीय स्थान है। इसमें विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव - इन तीन देवताओं को उनके आयुधों, वाहनों एवं लक्षणों सहित संयुक्त रूप में प्रदर्शित किया गया। यह समन्वित प्रतिमा न केवल वैष्णव, शैव एवं प्राजापत्य सम्प्रदायों के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति ही करती है, अपितु इन तीनों धर्मों के अवलंबियों के पारस्परिक सद्-भावपूर्ण सम्बन्धों का भी प्रतिनिधित्व करती है।

यह स्वरूप सृष्टि के तीन प्रमुख कार्यों (रचना, पालन एवं संहार) से सम्बंधित प्रमुख ब्राह्मण देवों - ब्रह्मा, विष्णु और शिव का संघाट रूप है। पुराण साहित्य इन तीनों की एकता प्रदर्शित करने में अपनी सार्थकता मानता है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण का कथन है कि 'एक ही ईश्वरीय शक्ति तीन गुणों के रूप में स्पष्ट होती है।[1] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार इस ईश्वरीय शक्ति की सृष्टि करने वाली ब्राह्मी-

---

1. 'एकमूर्तिरपि भिन्नरूपिणी या जगज्जनपालन क्षये'

विष्णु पुराण 1/6-35-36.

मूर्ति राजसी, पालन करने वाली वैष्णवी मूर्ति सात्त्विकी और संहार करने वाली रौद्री मूर्ति तामसी कहलाती है ।[1]

विष्णु पुराण का कथन है कि 'स्वयं विष्णु रजोगुण में ब्रह्मा बन जाते हैं और तमोरूप में शिव या रुद्र बन जाते हैं परन्तु सतोगुण रूप में वे विष्णु ही कहलाते हैं ।' इस प्रकार वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव – इन तीनों संज्ञाओं को धारण करते हैं ।[2] वे सृष्टा होकर प्रजापति के रूप में अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक रूप में विष्णु-रूप-धारी होकर अपना ही पालन करते हैं और अंत में शिव के रूप में संहारक बनकर अपना ही संहार कर लीन हो जाते हैं ।[3]

---

1. "ब्राह्मी तु राजसी मूर्तिस्तस्य सर्वप्रवर्तिनी ।
   सात्त्विकी वैष्णवी ज्ञेया संसारपरिपालिनी ।।
   तामसी च तथा रौद्री ज्ञेया संहारकारिणी ।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 45, श्लोक 2-4.

2. 'सृष्टि स्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।'

   विष्णु पुराण, 1, 2, 66.

3. "सृष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
   उपसंह्रियेत चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः ।।"

   विष्णु पुराण, 1,2, 67.

वैष्णवों के दृष्टिकोण के अनुसार स्वयं विष्णु त्रिदेव की सत्ता के मूल में स्थित हैं ।[1] संसार उन्हीं से उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित है । वे ही इसकी स्थिति और लय के कर्त्ता हैं तथा जगत् के रूप में हैं ।[2] परन्तु वे मूलरूप में एक ही हैं ( जनार्दन ) ।[3] शैवों की दृष्टि में भी 'त्रिदेव' मूलरूप में एक ही थे । इस अवधारणा को व्यक्त करने वाली एक साहित्यिक परम्परा का प्रतिबिम्ब शिव पुराण में उपलब्ध होता है जिसमें तीनों ही देवताओं की एकता का उल्लेख है ।[4] मार्कण्डेय पुराण से ज्ञात होता है कि इन तीनों देवताओं ने कुशिक ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ में जन्म लिया था ।[5] ऐसा प्रतीत होता है कि मध्ययुगीन शिल्पियों

---

1. 'सृंस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थिति-संयमान् ।।'

   विष्णु पुराण, 1, 7, 46.

2. 'विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
   स्थितिसंयमकर्त्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ।।'

   विष्णु पुराण 1, 31.

3. 'स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः' ।।

   विष्णु पुराण 1, 2, 66.

4. शिव पुराण, 7, 1, 10, 25.

5. शिव पुराण, 3, 12, 2-24, मार्कण्डेय पुराण 16, 12.

ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एकत्र तथा समन्वित रूपों में उच्चित्रित करने की प्रेरणा विष्णु पुराण, शिव पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण की उपर्युक्त कथा से ली थी ।

यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के अभेद पर बल देते हुए कहा गया कि इन तीनों देवों में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है । ये तीनों ही समस्त लोकों की सृष्टि एवं स्थिति के कर्त्ता हैं । पुरा काल में लोकनाथ जगत्-व्यापी कृष्ण ने पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा से कैलास की यात्रा की थी, जहाँ भूतनाथ उमापति शिव की चिरकाल की आराधना के बाद उन्होंने पुत्र की प्राप्ति की थी । अतएव इन देवों में कोई भेद नहीं है ।[1] बृहन्नारदीय पुराण में त्रिदेव (हर-हरि-विधाता) में अभेद को महत्व देते हुए कहा गया कि इन तीनों में एक ही रूप जो व्यक्ति देखता है वह परमानन्द की प्राप्ति करता है।

---

1. ब्रह्माविष्णु-महेशानां भेदः कुत्रापि न प्रभो ।
   कर्तारो ह्ययं लोकानां सृष्टिस्थितिलयेषु च ।।

   त्वया दृष्टः पुरा कृष्णो लोकनाथो जगन्मयः ।
   कैलासयात्रामकरोत्पुत्रार्थे भरतर्षभ ।।

   तत्राराध्य चिरं कालं भूतनाथमुमापतिम् ।
   ईप्सितं प्राप्तवान्पुत्रं तस्मादभेदो न विद्यते ।।"

   हरिवंश जिल्द 2, श्लोक 5600.

ऐसा शास्त्रों का निर्णय है ।[1] रुद्र ही विष्णु रूप में अखिल जगत् का पालन करते हैं और स्वयं हरि ब्रह्म रूप में जगत् की सृष्टि करते हैं ।[2] जो व्यक्ति हरि, शंकर एवं ब्रह्मा इन तीनों में भेद करता है, वह जब तक चन्द्र तथा तारागण स्थित हैं तब

---

1. "हरं हरिविधातारं यः पश्येदेकरूपिणम् ।
   स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निर्णयः ।।"

   बृहन्नारदीय पुराण, अध्याय 6, श्लोक 46.

2. "रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलं जगत् ।
   ब्रह्मरूपेण सृजति तदत्येवं स्वयं हरिः ।।"

   वही, अध्याय 6, श्लोक 44.

तक नरक का वास करता है ।[1]

ब्रह्म पुराण में भी ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की एकता पर बल देते हुए कहा गया कि पुरूष निराकार और साकार दोनों ही है । साकार रूप में पुरूष गुणों

---

1. "हरिशंकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चाऽपि यो नरः ।
   भेदकृन्नरकं भुङ्क्ते यावदाचन्द्रतारकम् ।।"

   बृहन्नारदीय पुराण, 6, 45.

   वामन पुराण में भी हरिहरपितामह में अभेद निम्नोक्त रूप में उल्लिखित है -

   "अथोवाच सुरान्विष्णुरेष तिष्ठति शंकरः ।
   मद्देहे किं न पश्यध्वं योगश्चायं प्रतिष्ठितः ।।

   ततो व्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पंकजशायिनम् ।
   दर्शयामास देवानां मुरारिर्लिंगमैश्वरम् ।।"

   वामन पुराण, 36, 21-23.

की व्याप्ति के कारण तीन रूप धारण करता है । ये ही तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं ।[1] पुराणों में जिस त्रिदेव की कल्पना मिलती है, उसका आधार त्रिगुणवाद है जो कि सांख्यदर्शन के त्रिगुणवाद से समीकरणीय हो जाता है । इसके अनुसार सत्व, रज और तम के वैषम्य से सृष्टि संभव होती है । भारतीय कला में व्यापक त्रिदेव की कल्पना का आधार पौराणिक त्रिदेववाद तथा सांख्यदर्शन का त्रिगुणवाद है । विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा रज, विष्णु सत् और शिव तम गुणों के प्रतीक माने गये जो क्रमशः सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं ।[2]

---

1. "यो मूर्तः स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते ।
   गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तो सौ त्रिविधो भवेत् ।।

   ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते ।

   xxxxx xxxxx xxxxx xxxxx

   एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः ।
   लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत् ।।"

   ब्रह्म पुराण, 130, 9, 11.

2. "सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ।
   ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वरः ।।"

   विष्णु पुराण 1, 30, 10.

वायु पुराण में भी त्रिगुण या त्रिदेव को मूल रूप में एक ही निर्धारित किया गया ।[1] इसी अवधारणा का प्रतिबिम्ब ब्रह्माण्ड पुराण में भी मिलता है । इसमें उल्लिखित एक साहित्यिक परम्परा के अनुसार विष्णु, ब्रह्मा से निवेदन करते हैं कि शिव आदि फल हैं, स्वयं ब्रह्मा बीज है तथा विष्णु सनातन योनि हैं ( "एष वीजी भवान् वीजमहं योनिः सनातनः" ; ब्रह्माण्ड पुराण 22, 36 ) । इसमें तीनों ही देवताओं की सम्पृक्तता की अवधारणा मिलती है ।

हरिहर-पितामह की पूजा के विषय में उक्त पौराणिक अवधारणा का प्रभाव भारतीय साहित्य, शिल्पशास्त्र एवं मूर्तिविज्ञान — इन तीनों में ही दृष्टिगोचर होने लगता है । कालिदास ने कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में त्रिमूर्ति की आराधना करते हुए कहा है कि 'आप ही संसार को रचने से पहले एक ही रूप में रहने वाले और संसार रचते समय सत्व, रज और तम, तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश नाम से तीन रूप धारण कर लेते हैं । आपके इस रूप ( त्रिमूर्ति ) का मैं अभिवादन करता हूँ ।[2] आपने सबसे पहले जल उत्पन्न करके उसमें ऐसा बीज बो दिया

---

1. "एकात्मा स त्रिधा भूत्वा संमोहयति यः प्रजाः ।"

वायु पुराण, 3, 66, 117.

2. "नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ।।"

कालिदास, कुमारसंभव, सर्ग 2, श्लोक 4.

जो कभी व्यर्थ नहीं जाता । इस जगत् में एक ओर पशु, पक्षी एवं मनुष्य आदि चलने वाले जीव, तो दूसरी ओर वृक्ष, पहाड़ आदि न चलने वाले रूप उत्पन्न हुए हैं । इसी लिए आप ही समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली महिमा को धारण करते हैं ।[1] आप ही शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा – इन तीन रूपों से अपनी शक्ति प्रकट करके संसार का नाश, पालन और उत्पादन करते हैं ।[2]

इस समन्वयवादी दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा की समन्वित मूर्ति बनाने के सम्बन्ध में भारतीय शिल्पशास्त्रों में नियम एवं विधान मिलने लगते हैं । इस समन्वित मूर्ति को इनमें 'हरिहर पितामह' के नाम से सम्बो-

---

1. "यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज त्वया ।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे ।।"

कालिदास, पूर्वोक्त, सर्ग 2, श्लोक 5.

2. "तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ।।"

वही, पूर्वोक्त, सर्ग 2, श्लोक 6.

थित किया गया है। अपराजितपृच्छा[1] में उल्लेख मिलता है कि हरिहर-पितामह-प्रतिमा एक ही देहवाली और एक ही पीठ पर स्थित होनी चाहिए। यह प्रतिमा षड्भुजी, चतुर्मुखी और समस्त लक्षणों से युक्त होकर अपने दायें हाथों में अक्षमाल, त्रिशूल एवं गदा तथा बायें हाथों में कमण्डलु, खट्वांग एवं चक्र धारण किये हो। अपराजितपृच्छा में हरिहर-पितामह के जिन प्रतिमालक्षणों का विवरण मिलता है, उनका अनुकरण बाद में सूत्रधार मण्डन ने रूपमण्डन[2] और देवतामूर्ति प्रकरण[3] में किया है।

---

1. "एकपीठसमारूढमेकदेह-निवासिनम् ।
   षड्भुजं च चतुर्वक्त्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ।।

   अक्षसूत्रं त्रिशूलं च गदां चैव तु दक्षिणे ।
   कमण्डलुं च खट्वांगं चक्रं वामभुजे तथा ।।"

   अपराजितपृच्छा, अध्याय 213, श्लोक 30-31.

2. "एकपीठसमारूढमेकदेहनिवासिनम् ।
   षड्भुजं च चतुर्वक्त्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ।।

   अक्षमालां त्रिशूलं च गदां कुर्याद्दक्षिणे ।
   कमण्डलुं च खट्वांगं चक्रं वामभुजे तथा ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 4, श्लोक 32-33.

3. देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 42.

इन दोनों में भी थोड़े ही अन्तर के साथ ये प्रतिमालक्षण निर्दिष्ट हैं। अपराजित-पृच्छा में जहाँ 'समारूढ़मेकदेहं' का उल्लेख मिलता है, वहाँ रूपमण्डन में 'एकदेह-निवासिनम्' का सन्दर्भ प्राप्त है। अपराजितपृच्छा में जहाँ 'अक्षसूत्र' का उल्लेख मिलता है, वहाँ रूपमण्डन में 'अक्षमाला' पाठ मिलता है। अपराजितपृच्छा में जहाँ 'गदाचैव तु दक्षिणे' का उल्लेख मिलता है, वहाँ रूपमण्डन में 'गदां कुर्याद्-दक्षिणे' पाठ मिलता है। अन्यथा, अन्य स्थलों पर सूत्रधारमण्डनरचित इन दोनों ही शिल्पग्रन्थों (रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण) में, अपराजितपृच्छा की शब्दा-वलियों का अनुकरण किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कम से कम पश्चिमी भारत में जहाँ ये तीनों ही शिल्पशास्त्र लिखे गये, हरिहरपितामह-प्रतिमा के निर्माण में उक्त प्रतिमा-लक्षणों को प्रामाणिक एवं आदर्श माना गया है।

पुराणों एवं आगम-साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की मूर्ति (त्रिमूर्ति) को दो प्रकार से बनाने का विधान मिलता है :-(1) वैष्णव त्रिमूर्ति (हरिहर-पितामह) तथा (2) शैव त्रिमूर्ति (हरिहर-पितामह)।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वैष्णव त्रिमूर्ति बनाने का विधान प्राप्य है, जिसमें विष्णु मध्य में तथा ब्रह्मा और शिव उनके वाम पार्श्वों में शिल्पित होते हैं।[1] शैव त्रिमूर्ति में शिव या शिवलिंग प्रतिमा के मध्य में विराजमान होते हैं तथा उनके दोनों पार्श्वों में ब्रह्मा एवं विष्णु होते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरकामिकागम् में

---

1. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 45, श्लोक 46 एवं 47.

त्रिमूर्ति को बनाते समय ब्रह्मा एवं विष्णु को उनके दोनों पाश्वों में निर्मित करने का निर्देश मिलता है ।[1]

त्रिमूर्ति का एक उल्लेखनीय उदाहरण मानकोट की पहाड़ी शैली की चित्रकला में देखने को मिलता है जो कि चण्डीगढ़-संग्रहालय में सुरक्षित है । इसमें एक पुरुष देव कमलासन पर न्यस्त गजाजिन पर आसीन प्रदर्शित हैं । कमलपीठ के नीचे एक पुरुषाकृति अपने पीठ के बल लेटी देवभार का वहन करते हुए प्रदर्शित है । देवता के कुल दसमुख चित्रित हैं जो कि तीन क्षैतिज तलों में विभाजित है । निम्नतम तल-विधान में शिव के पंचमुख दिखाये गये हैं । प्रत्येक मुख जटामुकुट, त्रिनेत्र एवं सर्पमाल से युक्त है । मध्यवर्ती तलविधान में ब्रह्मा के चार सकूर्चमुख प्रदर्शित हैं । शीर्षस्थतल में विष्णुमुख दिखायी देता है, जो वैष्णव तिलक एवं किरीटमुकुट से मण्डित है । सिर के ऊपर एक छत्र द्रष्टव्य है तथा समस्त मुख एक प्रभामण्डल के भीतर अंकित है । इस उदाहरण में त्रिदेव के 18 हाथ दिखाये गये जिसमें 9 वामपार्श्व और 9 दक्षिण पार्श्व में प्रदर्शित है । प्रधान दायें और बायें हाथों में अक्षमाल एवं कमण्डलु दिखायी देते हैं, जो कि प्रतिमाशास्त्रीय नियमानुसार ब्रह्मा के आयुध हैं । अवशिष्ट दक्षिण करों में त्रिशूल खड्ग, मुण्डमाल, कपाल एवं परशु दर्शित हैं जो कि शिवायुध हैं । इसी भाँति अवशिष्ट वाम करों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म प्रदर्शित हैं जो कि वैष्णव

---

1. "अथवा मध्यमे लिंग-पृथगालयसंस्थितम् ।
   तस्यसव्येऽप्यसव्ये च ब्रह्माविष्णु तथा मतौ ।।"

   उत्तरकामिकागम् , 38, 39.

अभिप्राय हैं । जहाँ तक आभूषणों का प्रश्न है इस उदाहरण में सर्पालंकार, वनमाल और रुद्राक्ष अंकित हैं जो कि क्रमानुसार शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं ।[1] यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि कभी-कभी त्रिमूर्ति के साथ सूर्यरूप को भी संयुक्त किया जाता था । इस प्रकार के संयुक्त रूप को लक्ष्य में रखते हुए मार्कण्डेय पुराण में एक रोचक विवरण मिलता है जो निम्नोक्त है :-

"ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।
त्रिधा यस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्विन् प्रसीदतु ।।"

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 109, श्लोक 71 )

उदाहरणार्थ, सारनाथ संग्रहालय ( सं0 623 10वीं सदी ) में प्रदर्शित एक उदाहरण में शिव एवं ब्रह्मा के साथ सूर्य-रूप को संयुक्त किया गया है ( आकृति संख्या 63 ) । इसी प्रकार विक्रम कीर्ति मन्दिर उज्जैन में शिव एवं विष्णु के साथ सूर्यदेव की संयुक्त प्रतिमा (10वीं शती0 ई0 ) प्राप्य है (आकृति संख्या 64 ) ।

हरिहर-पितामह-स्वरूप को व्यक्त करने वाली कई मूर्तियाँ विभिन्न क्षेत्रों से उपलब्ध हुई हैं । लगभग तीसरी शताब्दी ई0 की एक त्रिमूर्ति प्रतिमा पेशावर संग्रहालय (पाकिस्तान ) में प्रदर्शित है । इस मूर्ति में त्रिमुख देवता के तीन सिर,

---

1. डी0सी0 भट्टाचार्य, आ0क0इ0, हरिहर-पितामह - त्रिमूर्ति ,
आकृति 31.

क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का द्योतन करते हैं। तीनों की वेश-भूषा से ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप स्पष्ट हो जाता है। यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के त्रिमूर्ति-विवरण से मिलती जुलती है।[1]

जहाँ तक उक्त चर्चित अन्य शिल्पशास्त्रों ( अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण और रूपमण्डन ) का प्रश्न है उनके विवरण से साम्य रखनेवाली प्रतिमाएँ गुजरात, राजस्थान और मध्यप्रदेश से मिली हैं। गुजरात ( सौराष्ट्र ) की मूर्ति में त्रिमुख एवं षड्भुज हरिहर-पितामह गरुड़ पर आरूढ़ हैं। इनके हाथ क्रमशः अक्षमाल, कमण्डलु, चक्र, शंख, सर्प एवं त्रिशूल से युक्त हैं तथा वे सामान्य आभूषणों से विभूषित हैं।[2] गरुड़ वाहन से ज्ञात होता है कि इस मूर्ति में प्रधान देवता विष्णु हैं, जिनके दो दायें हाथों में ब्रह्मा और दो दायें हाथों में शिव के आयुध प्रदर्शित हैं। गुजरात के थान के मुनिभव मंदिर में उत्कीर्ण हरिहर-पितामह-मूर्ति भी त्रिमुखी और षड्भुजी है। हाथ में धारण किये गये आयुधों में केवल अक्षमाल एवं कमण्डलु ही स्पष्ट हैं।[3] गुजरात के बनासकाँठा के कसरानी नामक स्थान से प्राप्त हरिहर-पितामह-मूर्ति भी उपर्युक्त दोनों मूर्तियों के सदृश लक्षणों से युक्त है।[4]

---

1. बृन्दावन भट्टाचार्य, इंडियन इमेजेज़, पृष्ठ 17.

2. दवे, क०मा०, गुजरात नुं मूर्तिविधान, पृष्ठ 314.

3. दवे, क०मा०, गुजरात नूं मूर्तिविधान, पृष्ठ 313-314.
   कंजिस, पूर्वोक्त, फलक 62 तथा 67.

4. दवे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 314.

भोपाल-संग्रहालय में प्रदर्शित 10वीं शती ई0 की मानखड ( जबलपुर, म0प्र0) से प्राप्त एक त्रिमूर्ति में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की स्वतंत्र आकृतियों के माध्यम से हरिहर-पितामह का अंकन प्राप्य होता है । इस मूर्तन में विष्णु केन्द्र में, ब्रह्मा उनके दक्षिण पार्श्व में एवं शिव वाम पार्श्व में अपने-अपने आयुधों के साथ उच्चित्रित किए गए हैं । जटामुकुट से युक्त, चतुर्भुज एवं त्रिमुख ब्रह्मा के दो हाथों में स्रुक एवं जल-पात्र सुशोभित हैं तथा दो के आयुध स्पष्ट नहीं है । किरीटमुकुट से युक्त चतुर्भुज विष्णु के हाथों में चक्र, शंख, गदा ( जिसका ऊपरी हिस्सा खण्डित है ) तथा एक हाथ वरद-मुद्रा में वर्तमान् है । चतुर्भुज शिव के दो हाथ खण्डित हैं, शेष दो हाथों में एक अक्षमाल-धारी अभय-मुद्रा में तथा दूसरा सर्प लिए प्रदर्शित है । वे सामान्य आभूषणों से विभूषित हैं । शिलापट्ट के ऊर्ध्व-भाग में हवा में उड़ते विद्याधर-युग्म अंकित हैं । प्रतिमा के पैरों के पास हंस, गरुड़ तथा देव-परिचर एवं परिचारिका अंकित हैं । निम्न भाग में वाद्यधारिणी स्त्रियाँ रूपायित है ( आकृति संख्या 65 )।

भुवनेश्वर के मार्कण्डेश्वर-मंदिर के शिखर पर अंकित रथिका में एक उल्लेखनीय उच्चित्रण प्राप्य है । इसमें वह पौराणिक दृश्यांकन उपलब्ध होता है, जिसके अनुसार ब्रह्मा, शिव को श्रद्धाभाव अभिव्यक्त करते हैं ।( आकृति संख्या 66 ) ।

चित्तौड़गढ़-विजयस्तम्भ की दूसरी मंजिल के अभ्यन्तर में उत्कीर्ण मूर्ति के ऊपर 'श्री हरिहर-पितामह' लेख उत्कीर्ण है, जिससे इसका हरिहर-पितामह होना निर्विवाद है । यह त्रिमूर्ति त्रिमुखी एवं षड्भुजी है तथा ललितासन-मुद्रा में आसीन है । इसका केन्द्रीय मुख, जटामुकुट, सकूर्च एवं श्मश्रुयुक्त है । दोनों पार्श्व-मुखों पर किरीटमुकुट का प्रदर्शन किया गया है । इसके दायें हाथ क्रमशः पुस्तक, चक्र एवं त्रिशूल से युक्त हैं । वामोर्ध्व कर खण्डित है । अन्य दो वामाधः में क्रमशः शंख और कमण्डलु आयुध के रूप में प्रदर्शित हैं । आभरणों में कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, श्रीवत्स

यज्ञोपवीत, मेखला, कंकण और पादकटक विभूषित हैं । आसन के नीचे केन्द्र में हंस, दक्षिण पार्श्व में वृष और वामपार्श्व में गरूड की आकृति उत्कीर्ण है । केन्द्रीय मुख का जटामुकुट एवं श्मश्रुकूर्च युक्त होना तथा केन्द्रीय स्थान पर वाहन रूप में हंस का प्रदर्शन सिद्ध करता है कि प्रधान मूर्ति ब्रह्मा की है तथा दायें एवं बायें क्रमशः शिव एवं विष्णु प्रदर्शित हैं । यह प्रतिमा 15हवीं शती ई0 की है तथा रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण का समकालीन भी है । इस रूप में उक्त शिल्पांकन का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है ।

इस त्रिमूर्ति प्रतिमा को गोपीनाथ राव[1] ने 'महेशमूर्ति' सिद्ध करने की चेष्टा की थी, परन्तु इस उदाहरण में उपर्युक्त लेख ( हरिहर-पितामह ) का प्राप्य होना एवं उक्त तीनों शिल्पशास्त्रों के विवरण से साम्य रखना स्पष्ट करता है कि इसे हरिहर-प्रतिमा मानना ही सर्वथा उचित होगा । चित्तौड़गढ़-संग्रहालय में हरिहर-पितामह-प्रतिमा ( सं0सं0 509; 11हवीं शती ई0 ) भी उल्लेखनीय है । यह त्रिमुख, समपाद एवं षड्बाहु कोटि का उदाहरण है । लाक्षणिक विशेषताओं से युक्त इस प्रतिमा के खण्डित बाहों में त्रिशूल, शंख एवं अक्षमाल आदि दिखाई देते हैं (आकृति संख्या 67 ) ।

पटना-संग्रहालय में प्रदर्शित 10वीं शताब्दी ई0 की वाराणसी से प्राप्त एक त्रिमूर्ति ( संग्रहालय संख्या 7.584 ) में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की तीन स्वतंत्र आकृतियों के माध्यम से हरिहर-पितामह के अंकन का उदाहरण प्राप्त होता है । इस मूर्तन में विष्णु केन्द्र में, ब्रह्मा उनके वाम पार्श्व एवं शिव दक्षिण पार्श्व में अपने अपने

---

1. गोपीनाथ राव, ए0आ0हि0आ0, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 385.

आयुधों के साथ उच्चित्रित किए गए हैं । विष्णु गदा एवं शंखधारी वरद मुद्रा में, ब्रह्मा पद्म, स्रुक एवं जलपात्रधारी किरीटमुकुट से युक्त तथा शिव त्रिशूल एवं वरद से युक्त प्रदर्शित हैं ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि दक्षिण भारत से प्राप्त हरिहर-पितामह प्रतिमाओं में भी समान लक्षणों के उल्लेख मिलते हैं । यहाँ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से उदाहरण-स्वरूप एलौरा में प्राप्त दो हरिहर-पितामह प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं । प्रथम, शिल्पांकित उदाहरण एलौरा की गुफा सं0 27 में प्राप्त होती है जिसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की स्वतंत्र आकृतियाँ एकस्थ उच्चित्रित हैं । इनमें वे ही विशेषताएँ प्राप्त हैं जो कि भोपाल-संग्रहालय की उपर्युक्त प्रतिमा (आकृति संख्या 65) में उपलब्ध है (आकृति संख्या 68) ।

-----::0::-----

# अध्याय 10

## धर्मसमन्वय एवं एकस्थ देवमूर्ति

## अध्याय 10

## धर्मसमन्वय एवं एकस्थ देवमूर्ति

भारतीय प्रतिमा-विज्ञान की एक अन्य विशेषता समस्त आराध्य देवी-देवताओं के समग्र रूप की पूजा की अवधारणा थी, जिसका प्रतिबिम्ब शास्त्रों में उल्लिखित विश्वरूप की अवधारणा में प्राप्य है । उदाहरणार्थ, श्रीमद्भगवतगीता के 10वें एवं 11वें अध्याय में कृष्ण ( विष्णु ) के विराट् रूप का सन्दर्भ यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है । इसमें कृष्ण अर्जुन से कहते निरूपित हैं कि 'मेरे इस शरीर में समस्त चराचर जगत् एकत्र स्थित हैं, जिसे हे अर्जुन ! यदि तुम चाहो तो देख सकते हो ।'[1] इस प्रकार सम्बोधन करने के पश्चात् महायोगेश्वर एवं समस्त पापों के नाश करने वाले भगवान् ने अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप को प्रदर्शित किया ।[2] उस विराट् स्वरूप परमदेव परमेश्वर में अर्जुन ने अनेक मुख और नेत्रों से युक्त विविध अद्भुत दर्शनों वाले एवं दिव्य आभूषणों से समन्वित, नाना दिव्य शस्त्रों

---

1. "इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
   मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ।।"

   श्रीमद्भगवत्-गीता, अध्याय 11, श्लोक 7.

2. "एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
   दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।"

   पूर्वोक्त, अध्याय 11, श्लोक 9.

को अपने हाथों में उठाये, दिव्यमाला और वस्त्रों को धारण किए हुए, अलौकिक गंधों का अनुलेप किए हुए एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त सीमारहित तत्त्व को देखा ।[1] आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न प्रकाश भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश की तुलना में आ नहीं सकता था ।[2] देवताओं के देव कृष्ण के उस आश्चर्यमय विराट् रूप में अर्जुन ने अनेक प्रकार से विभक्त सम्पूर्ण जगत् को एकत्र देखा ।[3] आश्चर्य से युक्त अर्जुन कृष्ण से कहते हैं कि 'हे देव आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों, भूत-समुदायों, कमलासन पर विराजमान ब्रह्मा एवं महादेव और सम्पूर्ण

---

1. "अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
   अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।

   दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
   सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तविश्वतोमुखम् ।।"

   श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 11, श्लोक 10-11.

2. "दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
   यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।

   पूर्वोक्त, अध्याय 11, श्लोक 12.

3. "तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
   अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।"

   पूर्वोक्त, अध्याय 11, श्लोक 13.

ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को मैं देख रहा हूँ ।[1] हे विश्वरूप विश्वेश्वर । आपको अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ । मैं आपके न आदि को देखता हूँ और न ही मध्य तथा अंत को देखा रहा हूँ।[2] मैं आपको मुकुटयुक्त, गदा एवं चक्र को धारण किए, सब ओर से प्रकाशमान् तेज का पुंज, प्रज्वलित अग्नि एवं सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अतिगहन अप्रमेयस्वरूप xxxxx×हूँxx[3]

---

1. "पश्यामि देवांस्तव देव देहे ।
   सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
   ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
   मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।।"

   श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 11, श्लोक 15.

2. "अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
   पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
   नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
   पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।"

   पूर्वोक्त, अध्याय 11, श्लोक 16.

पाता हूँ ।[1]

स्पष्ट है कि इस विवरण में विष्णु के महत्वपूर्ण एवं व्यापकरूपसूचक विश्वरूप-प्रदर्शन की अवधारणा प्राप्य है । महाभारत में भीष्म युधिष्ठिर-संवाद के प्रसंग में (विष्णुसहस्रनाम में ) विष्णु को विश्वमूर्ति, महामूर्ति, दीप्तमूर्ति, अनेकमूर्ति, शत-मूर्ति और सनातन कहा गया है -

"विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।"

विष्णुसहस्रनाम, श्लोक 90.

इस विराट् स्वरूप के लक्षणों का विस्तृत विवरण श्रीमद्भगवद्गीता में उपलब्ध होता है । इसके अनुसार उनके मुख से वाणी, अग्नि आदि सभी देवता, सात धातुओं से सात छन्द, ग्रीवा से देवताओं एवं पितरों के भोजन करने युक्त अमृत, रस-नेन्द्रिय जिह्वा से अन्न तथा रस, नासिका से अश्विनीकुमार, भुजाओं से संसार की रक्षा करने वाले लोकपाल तथा दाढ़ी, मूँछों एवं नखों से मेघ, बिजली, शिला तथा

---

1. "किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्य समन्ता-
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।।"

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 11, श्लोक 17.

लोहा आदि उत्पन्न हुए ।[1] उस विराट् स्वरूप की हड्डियों में पर्वत, नाड़ियों में नदी, उदर में मूल प्रकृति समुद्र और समस्त प्राणिजगत् समाविष्ट हैं । वस्तुतः, ये सभी उस विराट् विश्वपुरुष के ही स्वरूप के अंग हैं ।[2]

मार्कण्डेय-पुराण के देवी-माहात्म्य-खण्ड में इस प्रकार की अवधारणा देवी के प्रसंग में की गई है ( सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ) देवी-भागवत में विष्णु के विराट् रूप के सम्बन्ध में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं सूर्य आदि देवों के अतिरिक्त गौरी, ब्राह्मणी एवं वैष्णवी आदि मातृकाओं की भी कल्पना प्राप्त होती है ।[3] विश्वरूप से सम्बन्धित प्रतिमा-शास्त्रीय लक्षणों के विवरण प्राविधिक ग्रंथों में मिलते हैं, जो कि धर्म-समन्वयवादिता के परिचायक हैं । विष्णुधर्मोत्तर में प्रश्न उठाया गया है कि विश्वरूपधारी विष्णु का रूप-निर्माण किस प्रकार होना चाहिए ? हे ऋषि ! मेरे

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2, 6, 1-5.

2. वही, 2, 6, 6-21.

3. "ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च ।
   ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ।।"

   श्रीमद्देवीभागवत् , स्कन्ध 7, अध्याय 33, श्लोक 13.

इस संशय का आप कृपया निवारण करें ।[1] इस प्रकार की जिज्ञासा के उत्तर में मार्कण्डेय कहते हैं कि 'उनके चार मूल मुख वैष्णवमुख होते हैं (नृसिंह, वराह, सौम्य एवं कापिल ) । उन मुखों के ऊपर चार माहेश्वर मुख (सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरुष ) अंकित होते हैं । ईशान मुख नहीं बनाया जाता, क्योंकि वह मुखहीन होता है । इन माहेश्वर मुखों के ऊपर चार ब्राह्म मुखों का निर्माण होना चाहिए । उन मुखों के ऊपर आगे और पीछे सम्पूर्ण देवताओं एवं जीवों के मुख निर्मित किए जाएं ।[2] प्रत्येक मुख में आँखों की दृष्टि उसी प्रकार दिखाई जाय,

---

1. "रूपेण केन कर्तव्यो विश्वरूपधरो हरिः ।
   एतं मे संशयं छिन्दि त्वं हि सर्वविदुच्यसे ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 83, श्लोक 1.

2. "आदौ देवस्य कर्तव्याश्चत्वारो वै स्तवोन्मुखाः ।
   तेषामुपरि कर्तव्यास्तथा माहेश्वराः पुनः ।।

   ईशानं वक्रहीनास्ते तथा प्रोक्ता मया पुरा ।
   तेषामुपरि कर्तव्या मुख्या ब्राह्मी यथेरिता ।।

   ततश्चान्यमुखाः कार्यास्तिर्यगूर्ध्वे तथैव च ।
   सर्वेषामपि देवानां तथान्यानपि कारयेत् ।।

   ये मुखाः सत्वजातानां नानारूपा विभागशः ।।"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3, 83, श्लोक 3-5.

जिस प्रकार चित्रसूत्र में निर्दिष्ट है ।[1] उनका मुख इस प्रकार फैला हुआ दिखाया जाय, जिस प्रकार भयंकर जीवों के मुखों के साथ वे सम्पूर्ण संसार को ग्रसित करते हुए आभासित हों ।[2]

विष्णु का यह रूप बड़ा ही भयानक होता है । उनकी भुजाओं की कोई संख्या निश्चित नहीं होती है । जितनी अधिक भुजाएँ कलाकार बना सकता है, उतनी अधिक भुजाएँ प्रदर्शित करनी चाहिए । नृत्तशास्त्र में वर्णित हस्तमुद्राओं का चित्रण उनके हाथों द्वारा निर्दिष्ट होना चाहिए । उनके कुछ हाथों में सभी आयुध, कुछ में यज्ञ, दण्ड, कुछ में शिल्पभाण्ड, कलाभाण्ड एवं वाद्यभाण्ड सुशोभित

---

1. "यावन्तो दृष्टयः प्रोक्ताश्चित्रसूत्रे महात्मभिः ।
दर्शनीयास्तु ताः सर्वास्तस्य मूर्धसु भागशः ।।"

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 83, श्लोक 5-6.

2. "नानाविधानि सत्वानि मुखैरन्यैस्तथैव च ।
ग्रसमानः स कर्त्तव्यः सर्वैः सत्वभयंकरैः ।
कार्याण्युद्वमानानि मुखाः केचन ते शुभाः ।।"

वही, 3, 83, 6-7.

हों ।[1]

विश्वरूप के शरीर में शास्त्रनियमों के अनुसार तीनों ही लोकों का चित्रण करना चाहिए । इस बहुरूप देव के बहुमस्तकों का भी निर्माण करना चाहिए ।[2] विश्वरूप का आकार इतना विशाल है कि उसके पूरे स्वरूप का वर्णन

---

1. "हस्तानि यानि दृष्टानि नृत्तशास्त्रे महात्मभिः ।
तानि सर्वाणि कार्याणि तस्य देवस्य बाहुषु ।।
हस्ताः कार्यास्तथैवान्ये सर्वायुधविभूषणाः ।।

यन्त्रदण्डधराश्चान्ये शिल्पभाण्डधरास्तथा ।
कालभाण्डधराश्चान्ये वाद्यभाण्डधराः परे ।।"

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 83, श्लोक 8-10.

2. "त्रैलोक्यं सकलं राजन्यथाशास्त्रानुसारतः ।
दर्शनीयानि वर्णानि सर्वाण्येव महात्मनः ।।

बहुरूपस्य देवस्य बहुमस्तकगानि तु ।।"

वही, तृतीय खण्ड, अध्याय 83, श्लोक 12-13.

नहीं हो सकता, पूर्ण प्रतिमा-निर्माण की तो बात ही दूर ठहरी ।[1]

धर्म-सामंजस्य की प्रवृत्ति के विकास के साथ विश्वरूप की अवधारणा दूरतर लोकव्यापी होने लगी, जिसका प्रतिबिम्ब मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में वर्णित प्रतिमाविधान में उपलब्ध होता है । उदाहरणार्थ, अपराजितपृच्छा में विश्वरूप विष्णु चतुर्मुख, बीस भुजाओं वाले, पताका, हल, शंख, बीजपूर, दण्ड, पाश, स्रुक एवं पद्म हाथों में धारण किए हुए गरुड पर आरूढ़ होते हैं ।[2]

सूत्रधारमण्डन के रूपमण्डन में प्राप्य विश्वरूप का विवरण अपराजितपृच्छा के विवरणों से प्रभावित है । इसके अनुसार भी विश्वरूप के चार मुख और 20 हाथ होते हैं । उनके दाहिने हाथों में पताका, हल, शंख, वज्र, अंकुश, बाण, चक्र, बीजपूरक और शेष एक हाथ वरद मुद्रा में वर्तमान होता है । बायें हाथों में क्रमशः पताका, दण्ड, पाश, गदा, धनुष, कमल, श्रृंगी, मूसल और अक्ष वर्तमान होते

---

1. "कात्स्न्येंन रूपं पुरुषोत्तमस्य वक्तुं न शक्यं कुत एवं कर्तुम् ।।"

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 83, श्लोक 14.

2. "पताका दण्डपाशौ च गदाशार्ङ्गौ तथैव च ।
पद्मं श्रृंगी च मुसलमक्षं वामभुजेषु च ।।"

अपराजितपृच्छा, 219, 28-32.

हैं ।[1] शेष दो हाथ योगमुद्रा में निरूपित होना चाहिए । विश्वरूप गरुड पर स्थित होते हैं । उनके चारों मुख क्रमानुसार नर, नृसिंह, स्त्री और वाराह मुख की तरह हैं ।[2] अपराजितपृच्छा में यही विवरण प्राप्य है ।[3]

---

1. "विशंत्या हस्तकैर्युक्तो विश्वरूपश्चतुर्मुखः ।
   पताका हलशंखौ च वज्रांकुशशरांस्तथा ।।

   चक्रं च बीजपूरश्च वरो दक्षिणबाहुषु ।
   पताका दण्डपाशौ च गदाशाङ्गोत्पलानि च ।।
   श्रृंगी मुशलमक्षं च क्रमात् स्युर्वामबाहुषु ।।"

   रूपमण्डन, अध्याय 3, श्लोक 55-56.

2. "हस्तद्वये योगमुद्रा वैनतेयोपरि स्थितः ।
   क्रमान्नर - नृसिंह - स्त्रीवराहमुखवन्मुखः ।।"

   वही, अध्याय 3, श्लोक 57.

3. "करयुग्मे योगमुद्रा वैनतेयोपरिस्थितः ।
   नरश्च नारसिंहश्च श्रीमुखः शूकराननः ।।"

   अपराजितपृच्छा, 219, 28-32.

विश्वरूपप्रदर्शन का उदाहरण सर्वप्रथम गुप्तकालीन कला से मिलना आरम्भ होता है । मथुरा-संग्रहालय में विश्वरूप विष्णु की दो आकृतियाँ प्रदर्शित हैं । प्रथम आकृति ( सं०स० 42-43, 2989 ) में विष्णु के विराट् अथवा विश्व-रूप के दर्शन होते हैं, जिसका विशद् वर्णन भगवद्गीता के ।।हवें अध्याय में उपलब्ध होता है । प्रधानमूर्ति के मुख के पीछे अंकित प्रभामण्डल में उन देव-आकृतियों का निरूपण मिलता है, जिनका वर्णन गीता में प्राप्य है ( आकृति संख्या 69 ) । विश्वरूप-प्रदर्शन का एक अन्य उदाहरण मथुरा-संग्रहालय में प्राप्य है ( सं०स० 54, 3837 ) । इस प्रतिमा में प्रधान मूर्ति के तीन मुख प्रदर्शित हैं, जो विष्णुधर्मोत्तर से साम्य रखते हैं । सिरों के पीछे विशाल प्रभामंडल, सप्तर्षि, नवग्रह, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन इन चारों ऋषि कुमारों की प्रतिमाएँ बनी हैं । प्रतिमा में चार भुजाएँ अंकित हैं, जिनमें शंख, पद्म, चक्र एवं गदा-आयुध प्रदर्शित हैं ।

विश्वरूप-प्रदर्शन का एक अन्य उल्लेखनीय उदाहरण खजुराहो-संग्रहालय में उपलब्ध है ; जिनमें तीन मुख (नर, सिंह तथा वराह ) अंकित हैं । चौथा मुख प्रदर्शित नहीं किया गया है । नर, सिंह और वराह-मुखों के ऊपर अनेक अर्द्धचन्द्राकार मुख हैं तथा पीछे छोटे-छोटे मत्स्य और कूर्म आदि के मुख अंकित हैं जो विष्णुधर्मोत्तर के विवरण से साम्य रखते हैं ।[1]

---

1. अवस्थी रामाश्रय, खजुराहो, फलक 66, विवरण पृष्ठ 140-141.

जि०ना० बनर्जी ने राजशाही-संग्रहालय की एक विश्वरूप-प्रतिमा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है जिसमें उसके चार मुख एवं 20 भुजाएँ प्रदर्शित हैं। इसके प्रतिमा-लक्षण रूपमण्डन की तत्सम्बन्धी संस्तुतियों के अनुकूल हैं। ।।हवीं शती की इस प्रतिमा के 20 हाथों में जिन आयुधों का अंकन हुआ है, वे भी रूपमण्डन के अनुकूल हैं। विष्णु समपाद स्थानक मुद्रा में विराजमान हैं। उनके दोनों पैरों के पार्श्वों में पद्मासन पर ललितासन में दो अन्य देव-आकृतियाँ अंकित हैं, जो कि मंजुश्रीबोधिसत्त्व का स्मरण दिलाती हैं।[1] इस प्रकार यह प्रतिमा भी धर्मसमन्वयपरक प्रवृत्ति की परिचायिका है।

विश्वरूप विष्णु का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण नेपाल के छांगु-नारायण मंदिर (8वीं शती) में मिलता है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान डी०सी० भट्टाचार्य ने आकृष्ट किया है। मंदिर के विश्वरूपविष्णु के उदाहरण में तीन प्रमाण उपलब्ध होते हैं :- (1) स्वर्ग, (2) मर्त्य एवं (3) पाताल। सबसे निम्नतम् प्रभाग में अनन्तशायी विष्णु शेषनाग को शय्या बनाकर लेटे हुए हैं। यह प्रभाग पाताल लोक का प्रतिनिधित्व करता है। सबसे बीच वाले खण्ड में पृथ्वी देवी की आकृति अंकित है, जिसके दोनों ओर नाग आकृतियाँ अंकित हैं। इसके अतिरिक्त दो दिग्गजों की आकृतियाँ अंकित मिलती हैं, जो कि दिग्पालों के द्योतक हैं। यह प्रमाण मर्त्यलोक का द्योतक है। सबसे ऊपर वाले प्रभाग में स्वर्ग-लोक का प्रदर्शन मिलता है। इसमें विष्णु के कई शिर एवं भुजाएँ दिखाई गई हैं। इनके पैरों की वन्दना एक ओर पृथ्वी देवी, तो दूसरी ओर नाग-आकृति करती हुई प्रदर्शित है। उनके दाहिने ओर शिव की आकृति अंकित है। इसके अतिरिक्त ।। रुद्र, 8 वसु, 4 दिग्पाल और अश्विनकुमारों की आकृतियाँ दिखाई गई हैं। इसका दायाँ भाग टूटा हुआ है।[1] यह प्रतिमा श्रीमद्भागवत् में वर्णित विष्णु के

---

1. भट्टाचार्य डी०सी०, आ०क०इ०, आकृति 39, पृष्ठ 49-50.

विश्वरूप का एक उदाहरण मानी जा सकती है, जो धार्मिक सामंजस्य का बोधक है। विश्वरूप-विष्णु के दो सटीक उदाहरण ( आकृति संख्या 70 एवं आकृति संख्या 71 ) आक्यालाजिक म्यूज़ियम कन्नौज में भी द्रष्टव्य हैं। दुर्भाग्यवश दोनों ही उच्चित्रित शिलापट खण्डित हैं, किन्तु इन पर विष्णु के विराट् स्वरूप में विविध रूप समाहित देखे जा सकते हैं।

कालान्तर में शैवों ने विश्वरूप विष्णु के आधार पर विश्वरूप-शिव की अवधारणा विकसित की, जिसका एकमात्र उद्देश्य साम्प्रदायिक सद्भावना का सृजन था। इस दिशा में मध्यकालीन पुराणों की उल्लेखनीय भूमिका थी, जिसमें ब्रह्माण्ड पुराण का उल्लेख किया जा सकता है।[1] ईशानगुरुदेवपद्धति[2] में विश्वरूप-शिव का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत् में प्राप्य विश्वरूप-विष्णु की अवधारणा से साम्य रखने वाले ग्रंथ शिवगीता का शैवों ने प्रणयन किया, जिसमें शिव के विश्वरूप की अवधारणा विष्णु के विश्वरूप के लक्षणों पर आधारित है।

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय 22, श्लोक 23.

2. "नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
   शिवाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतए नमः।।"

   ईशानगुरुदेवपद्धति, अध्याय 36, श्लोक 67.

भारतीय कला में एक स्थान पर विश्वरूप-शिव का उल्लेखनीय उदाहरण प्राप्य होता है । काँगड़ा( पंजाब ) की एक चित्रकारी में विश्व रूप का दृश्यांकन हुआ है, जिसमें केन्द्रीय देव के कई शिर दिखाये गये हैं । प्रत्येक के ललाट पर तृतीय नेत्र और जटाजूट पर अर्द्धचन्द्र की छटा सुशोभित है । प्रधान देवता की बाहों में शैव आयुध चित्रित हैं जिससे इसका विश्वरूप-शिव होना स्पष्ट है । प्रभामण्डल में विविध देवों एवं जीवजन्तुओं का चित्रण देखने को मिलता है ।[1] राजकीय संग्रहालय मथुरा के खण्डित शिलापट्ट के केन्द्रीय भाग में शिव, दक्षिण पार्श्व में सकूर्च ब्रह्मा एवं भृंगी उच्चित्रित हैं । टूटे हुए वाम पार्श्व में संभवतः विष्णु रूपायित थे । इस प्रकार यह शैल फलक भी विश्वरूप-शिव का ही उदाहरण माना जा सकता है । ( आकृति संख्या 72 ) ।

धर्म-सहिष्णुता के सिद्धान्त पर आधारित शिल्पांकन के एक अन्य उल्लेखनीय स्वरूप के अनुसार देवालयों के प्रवेश-द्वार के चौखटे के सिरदल पर अधिष्ठातृ देव के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं के समूह का भी अंकन किया जाता था । मध्यकाल में यह प्रथा सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थी । उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय-संग्रहालय दिल्ली में प्रदर्शित शिव-मंदिर के चौखटे ( हम्पी, मैसूर, 12वीं शती ) के शिरापट्टी पर शिव, ब्रह्मा एवं विष्णु के अतिरिक्त विविध देवी-देवताओं के अंकन देखने को मिलते हैं ( आकृति संख्या 73 ) । राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में हम्पी के एक

---

1. शिवगीता, अध्याय 6, 7;
   भट्टाचार्य डी०सी०, आ०क०इ०, पृष्ठ 52, आकृति 41.

दूसरे चौखटे के सिरदल पर केन्द्र में नटराज शिव प्रदर्शित हैं । उनके दोनों पार्श्वों में ब्रह्मा एवं विष्णु की आकृतियाँ उच्चित्रित हैं । इसके अतिरिक्त अन्य विविध देवी-देवताओं, नक्षत्रों एवं राशियों की आकृतियाँ बड़े ही भव्य ढंग से आकारित हैं (सं०स० 50-159; आकृति संख्या 74 ) सारनाथ-संग्रहालय में वाराणसी से प्राप्त चौखटे (10वीं शती ) के सिरदल में विविध देवों का अंकन प्राप्य है जो कि धर्म-सामंजस्य का परिचायक है ( आकृति संख्या 75 ) ।

-----::0::-----

## परिशिष्ट ।

## युग्म-देवियों की अवधारणा

## परिशिष्ट 1

## युग्म-देवियों की अवधारणा

धर्म-समन्वयवादिता के उत्तरोत्तर विकास के परिणामस्वरूप देवियों के भी युग्म-रूप की अवधारणा के साहित्यिक एवं प्रतिमा-शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध होने लगते हैं। यह प्रवृत्ति पूर्वमध्यकाल में स्पष्ट परिलक्षित होती है। साहित्यिक प्रमाणों में ब्रह्मवैवर्तपुराण उल्लेखनीय हैं, जिसमें लक्ष्मी एवं राधिका के सम्पृक्त स्वरूप का उल्लेखनीय विवरण मिलता है। इसके अनुसार किसी समय कृष्ण ने अपने वपु को दो समान भागों में विभक्त कर दिया जो कि एक दूसरे के परिपूरक थे। वामार्द्ध लक्ष्मी का द्योतक एवं दक्षिणार्द्ध राधिका का द्योतक था। लक्ष्मी-बोधक वामार्द्ध चतुर्भुज से युक्त था, जबकि राधिका-वाचक दक्षिणार्द्ध द्विभुज था। कृष्ण ने अपने वपु का इस प्रकार का विभाजन अपनी दोनों पत्नियों को संतुष्ट करने के लिए किया था।[1] इस साहित्यिक परम्परा में विष्णुमार्गियों एवं कृष्णमार्गियों में पारस्परिक सद्भावना का प्रतिबिम्ब मिलता है।

जिन देवियों के युग्म रूप से सम्बन्धित साहित्यिक एवं पुरातत्वीय-दोनों

---

1. "तद्वामांशो महालक्ष्मिर्दक्षिणांशश्च राधिका।
   कृष्णस्तद् गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥
   दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजो ॥"

   ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय 32, श्लोक 10-12.

हैं प्रमाण उपलब्ध होते हैं, । उनमें पार्वती-लक्ष्मी तथा लक्ष्मी-सरस्वती दोनों ही उल्लेखनीय हैं । पार्वती-लक्ष्मी के सम्बन्ध में मार्कण्डेय पुराण का देवी-महात्म्य उल्लेखनीय हो जाता है, जिसमें शैवी-शक्ति ( गौरी अथवा पार्वती ) तथा वैष्णवी शक्ति ( लक्ष्मी ) , देवी के दो व्यक्त रूप माने गये हैं :- "कैटभ के शत्रु भगवान चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं ।" देवी के इस समन्वित रूप में वैष्णवों एवं शैवों के धर्म-सामंजस्य का प्रमाण उपलब्ध होता है ।

पार्वती-लक्ष्मी के संयुक्त रूप का एक पुरातत्वीय उदाहरण कम्बुज के एक वैष्णव मंदिर ( प्रसत क्रवण ) में उपलब्ध होता है । 10वीं शताब्दी के ईंटों के बने मंदिर में एक देवी प्रतिमा उत्कीर्ण है, जिसमें वैष्णवी शक्ति एवं शैवी शक्ति के लक्षण उपलब्ध होते हैं । शैवी भाग में त्रिशूल तथा वैष्णवी भाग में चक्र के उदाहरण प्राप्य हैं ।[2]

---

1. "श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
   गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ।"

   मार्कण्डेय पुराण, देवी-माहात्म्य, अध्याय 4, श्लोक 10 ( उत्तरार्द्ध )।

2. रॉसन पी0, दी आर्ट ऑफ साउथ ईस्ट एशिया, लन्दन, 1967, पृष्ठ 60.

लक्ष्मी-सरस्वती के सम्पृक्त रूप के साहित्यिक प्रमाणों में मार्कण्डेय पुराण का देवी-माहात्म्य उल्लेखनीय है, जिसमें ब्राह्मी-शक्ति ( सरस्वती अथवा मेधा ) तथा शैवी शक्ति ( गौरी ) के तादात्म्य का साक्ष्य उपलब्ध होता है । इसमें देवी की स्तुति करते हुए कहा गया है कि मेधा शक्ति ( सरस्वती ) भी आप ही हैं जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है तथा दुर्गम भवसागर से पार उतरने वाली नौका-रूप दुर्गा देवी भी आप ही हैं ।[1] इस साहित्यिक परम्परा में ब्रह्मोपासकों तथा शैवोपासकों में पारस्परिक सद्भावना की ओर संकेत मिलता है ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि बौद्ध देव-समूह में वसुधारा नामक एक देवी की अवधारणा का विकास हुआ, जिससे लक्ष्मी एवं सरस्वती के संयुक्त रूप का साक्ष्य प्राप्त होता है । यह एक षड्भुजी देवी थीं, जिसमें उसके दो स्वरूप प्राप्त होते हैं ( एक ओर ऐश्वर्य एवं समृद्धि तथा दूसरी ओर मेधा एवं विवेक ) । लक्ष्म्यर्द्ध भाग में बाहों में धान्यमंजरी ( धान की बाली ) तथा मंगलघट प्राप्य है जो कि ऐश्वर्य एवं समृद्धि के प्रतीक हैं तथा सरस्वती-भाग में हाथों में पुस्तक सुशोभित है जो कि बुद्धि का प्रतीक है ।[2]

-----::0::-----

---

1. 'मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
   दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।'

   मार्कण्डेय पुराण, देवी माहात्म्य, अध्याय 4, श्लोक 11 पूर्वार्द्ध ।

2. द्रष्टव्य, डी0सी0 भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 37.

## परिशिष्ट 2

## पंचायतन लिंग

## परिशिष्ट 2

## पंचायतन लिंग

संघाट-प्रतिमाओं का एक अन्य उल्लेखनीय स्वरूप पंचायतन लिंग प्रकार था, जिसमें सूर्य, देवी, विष्णु, शिव और गणेश - ये पाँच देवता एक ही पंचमुखी लिंग में पृथक् मुखों में अलग-अलग दर्शाये जाते थे। यह संघाट शिल्पांकन पाँच प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों (शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य सम्प्रदायों) के पारस्परिक सद्भाव एवं धर्म-सामंजस्य के परिचायक हैं। इस धर्म-समन्वयपरक प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब स्मार्तों की पंचायतन-पूजा अथवा पंचोपासना में उपलब्ध होता है, जिसमें पंचदेव की पूजा का भाव अभिव्यंजित होता है। उल्लेखनीय है कि प्रारम्भिक स्मृतियों में इस भावना का कोई संकेत नहीं है; उदाहरणार्थ, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद-स्मृति। तथापि गीता में एक स्थान पर विभिन्न देवों के समूह के पूजन का उल्लेख मिलता है। परन्तु उसमें भी प्रधानता वासुदेव-कृष्ण की ही परिलक्षित होती है। इसमें कहा गया है कि 'हे अर्जुन। यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो श्रद्धान्वित भक्त दूसरे देवता की आराधना करते हैं, वे भी वस्तुतः मुझको ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक है।[1] वस्तुतः धर्मसमन्वयवादिता की प्रवृत्ति के विकास के साथ कालान्तर में मध्यकालीन स्मृतिकारों ने पंचायतनपूजा अथवा पंचोपासना की भावना को प्रतिपादित किया, जिसमें

---

1. "येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
   तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।

   भगवद्गीता, अध्याय 9, श्लोक 23.

पाँच स्वीकृत ब्राह्मण देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं गणपति )आराधना के विषय थे ।[1] इसी पंचायतनपूजा का एक दूसरा स्वरूप मध्यकालीन हिन्दू मंदिरों में देखा जा सकता है, जिसमें किसी एक प्रमुख देवता की प्रतिमा केन्द्रीय मंदिर में प्रतिष्ठित की जाती थी और इस देवालय के चारों कोनों पर चार छोटे मंदिर बनाकर चार अन्य देवों की भी प्रतिमा अलग-अलग स्थापित की जाती थी ।[2]

19वीं शताब्दी की एक प्रचलित पंचदेवोपासना का उल्लेख मोनिअर विलियम ने किया है । इस पूजाविधि के अनुसार पाँच देवों की आराधना के पंच प्रतीक एकत्र स्थापित किये जाते थे, जो पाँच शालिग्रामों के रूप में थे :-

1. कृष्ण शिला, विष्णु - बोधक ;
2. श्वेत शिला, शिव - द्योतक ;
3. रक्त शिला, गणेश - वाचक ;
4. अयस्क धातु, उमा - बोधक ;
5. स्फटिक, सूर्य - सूर्य वाचक ।

इन पाँच प्रतीकों को धातु-निर्मित एक फलक पर सजाकर लोग पूजते थे ।

---

1. 1. बनर्जी, जे०एन०, डे०हि०आ०, पृष्ठ 541.

2. बनर्जी, जे०एन०, पूर्वोक्त, पृष्ठ 542.

यह पंचायतन-पूजा का ही एक प्रकार था, जो कि स्मार्तों की धर्म-सहिष्णुता एवं साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रतिनिधित्व करता है । इस प्रकार स्मार्तों की एक उल्लेखनीय भूमिका धर्मसमन्वय के क्षेत्र में रही है ।[1] इस पूजा-विधि का एक उल्लेखनीय दृष्टान्त शाहाबाद (हरदोई जनपद) से डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा प्रकाश में लाई गई, जो कि उनके व्यक्तिगत संग्रह में प्राप्य है । शिला-पट (3.5 x 2.5 से०मी० ) पर शालिग्रामों के अंकन स्पष्ट देखे जा सकते हैं । इस उच्चित्रित शिल्पांकन का काल सातवीं शती ई०, बहुधा, मानी जाती है (आकृति संख्या 76

स्मृतियों के अतिरिक्त पंचायतन-पूजा या पंचोपासना की पूजा का प्रतिपादन पुराणों में भी मिलता है; उदाहरणार्थ, पद्म-पुराण में कहा गया है कि सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु एवं शक्ति के आराधकों की पूजा परमात्मा के पास उसी प्रकार पहुँचती है, जिस प्रकार वर्षा का जल नदियों के माध्यम से केन्द्रीय स्थान सागर में पहुँचता है ।[2] यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि पंचायतन लिंग चतुर्मुख शिवलिंग से

---

1. मोनियर विलियम, 'रेलिजस थॉट ऐण्ड लाइफ इन इंडिया'
   पृष्ठ 411-412.
   देखिए ; बनर्जी, जे०एन०, डे०हि०आ०, पृष्ठ 242.

2. "सौराश्च शैवा गणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ।
   मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा ।।"

   पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय 9, श्लोक 63.

विभिन्न है, जिसमें कि शिव के विभिन्न स्वरूप दिखाये जाते थे । पंचायतन लिंग वस्तुतः उक्त पाँच हिन्दू देवों के अंकन से युक्त हुआ करता था, जो कि धार्मिक समन्वयवादिता का परिचायक था । यहाँ उल्लेखनीय है कि डी0सी0 भट्टाचार्य ने एक ऐसे दुर्लभ शिवलिंग का उल्लेख किया है, जिसके चारों मुखों पर क्रमानुसार विष्णु, देवी, सूर्य एवं गणेश की आकृतियों का अंकन हुआ है । बिहार प्रान्त से प्राप्त यह शिवलिंग भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहीत है, जो पंचदेवोपासना का ही वाचक माना जा सकता है ।[1] पंचोपासना या पंचायतन-पूजा के ये स्मार्त एवं पौराणिक स्वरूप धर्मसहिष्णुता एवं साम्प्रदायिक सद्भावना के प्रतीक थे ।

-----:: 0 ::-----

---

1. आ0क0इं0, आकृति 33.

## परिशिष्ट 3

## चन्द्रार्क - पितामह

## परिशिष्ट 3

## चन्द्रार्क-पितामह

तीन देवताओं के संयुक्त मूर्तन का एक प्रकार चन्द्रार्क-पितामह भी था, जिसका उल्लेख अपराजितपृच्छा एवं देवतामूर्तिप्रकरण में प्राप्त होता है । इस प्रकार का शिल्पांकन भी संघाट-मूर्तन के अन्तर्गत आता था । अपराजितपृच्छा के अनुसार चन्द्रार्क-पितामह (चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा) प्रतिमा षड्भुज, चतुर्मुख एवं समस्त आभूषणों से मण्डित होना चाहिए । इस देवता के दो हाथ कमण्डलु एवं अक्षसूत्र, दो में पद्म एवं दो ऊर्ध्व करों में मृणाल सुशोभित होना चाहिए ।[1] इस विवरण में कमण्डलु एवं अक्षसूत्र ब्रह्मा का, पद्म सूर्य का तथा मृणाल चन्द्रमा का प्रतिनिधित्व करते हैं । देवतामूर्तिप्रकरण का चन्द्र-पितामह-विषयक विवरण समान लक्षणों से युक्त है ।[2]

---

1. "षड्भुजं च चतुर्वक्त्रं सर्वाभरणभूषितम् ।
   कमण्डलुं चाक्षसूत्रमुभयोः एकजट्टक्करम् ।।

   मृणालमूर्ध्वकरयोः कर्त्तव्यं शुभलक्षणम् ।
   सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वकामफलप्रदम् ।।"

   अपराजितपृच्छा, अध्याय 213, श्लोक 35-36.

2. देवतामूर्तिप्रकरण, 6, 47, 48.

रतन चन्द्र अग्रवाल ने अपने एक लेख में राजस्थान से प्राप्त चन्द्रार्क-पितामह प्रतिमाओं के दो उदाहरणों का उल्लेख किया है । इनमें से एक का उच्चित्रण चित्तौड़गढ़ के विजयस्तम्भ में उपलब्ध होता है जिसमें अंकित 'श्री चन्द्रार्क-पितामह-मूर्तिः' लेख से स्पष्ट होता है कि यह मूर्तन इस संयुक्त देवता का ही है । इस शिल्पांकन में देवता के तीन मुख एवं छह भुजाएँ प्रदर्शित हैं । पद्मासन-मुद्रा में विराजमान इनके तीनों मस्तकों पर किरीटमुकुट का प्रदर्शन प्राप्त होता है । वे कुण्डल, हार, श्रीवत्स, केयूर, कंकण, मेखला तथा पाद-कटकों से सुशोभित हैं । उनके दोनों अधः करों में कमण्डलु एवं वरद-मुद्रा का प्रदर्शन उपलब्ध होता है । दोनों मध्यवर्ती कर कुण्डलित कमलनालों ( मृणाल ) तथा दोनों ही ऊर्ध्वकर पूर्ण-विकसित पद्मों से सुशोभित हैं । मूर्ति के नीचे अश्व की एक आकृति भी उच्चित्रित है । यह उच्चित्रण 15हवीं शती का है तथा अपराजितपृच्छा एवं देवतामूर्तिप्रकरण से प्रभावित लगता है । इस उदाहरण में छह हाथों एवं पाँच आयुधों का उच्चित्रण प्राप्त होता है । उपर्युक्त उच्चित्रण उक्त दोनों ही शिल्पशास्त्रों के अनुरूप लगते हैं । इस उदाहरण में चौथे मुख के पीछे होने के कल्पना की गयी होगी । विजय-स्तम्भ की तीसरी मंजिल के अभ्यन्तर में उत्कीर्ण इस दुर्लभ 'चन्द्रार्क-पितामह-मूर्ति' का नामांकन एवं इसके आकार की विशालता के कारण कला के क्षेत्र में यह शिल्पांकन एक उल्लेखनीय स्थान रखता है ।[1]

दूसरी, चन्द्रार्क-पितामह-मूर्ति रणकपुर ( राजस्थान ) के सूर्य-मंदिर में

---

1. अग्रवाल रतन चन्द्र 'राजस्थान की सूर्य-प्रतिमाएँ तथा कतिपय सूर्य-मंदिर', शोध-पत्रिका, 72, पृष्ठ 7-8.

प्राप्य है और अपराजितपृच्छा तथा देवतामूर्तिप्रकरण के तत्सम्बन्धी विवरणों के अनुरूप है। इस प्रतिमा में भी त्रिमुख तथा षड्भुज देवता पद्मासन मुद्रा में प्रदर्शित हैं। अधः करों में से एक पात्रधारी और दूसरा भूमिस्पर्शमुद्रा में सुशोभित है। दोनों मध्यवर्ती हाथ पद्म से युक्त और दोनों ऊर्ध्व कर मृणाल धारण किए हुए हैं, जिनके द्वारा चन्द्रमा-सूर्य एवं ब्रह्मा का प्रतिनिधित्व किया जाता है।[1] यद्यपि ये दोनों उदाहरण पंद्रहवीं शती ई० के लगभग के हैं तथापि इनमें पूर्व प्रचलित धार्मिक परम्परा का प्रतिबिम्ब मिलता है, जिसके अनुसार उक्त तीनों देवताओं (चन्द्र, सूर्य एवं पितामह) में सामंजस्य की अवधारणा परिलक्षित होती है। यही कारण है कि तेरहवीं शती के ग्रंथ (अपराजितपृच्छा) में तत्सम्बन्धी प्रतिमा-शास्त्रीय विधान प्राप्य होता है।

-----::0::-----

---

1. अग्रवाल रतन चन्द्, पूर्वोक्त, पृष्ठ 8.

## परिशिष्ट 4

## संघात-मूर्तन की अन्य विधाएँ

## परिशिष्ट 4

## संघाट-मूर्तन की अन्य विधाएँ

मध्यकाल की भारतीय मूर्तिकला में सामंजस्यवादी देव-स्वरूपों के उच्चित्रण की अन्य विधाएँ भी यत्र तत्र देखने को मिलती हैं। इनमें से कतिपय का बीजरूप भगवद्गीता में ही परिलक्षित होता है। इसमें एक स्थान पर कृष्ण कहते हैं कि 'हे अर्जुन, मैं अदिति के 12 पुत्रों में विष्णु और ज्योतियों में अंशुमान सूर्य हूँ। मैं ही 49 वायु-देवताओं में मरीच नामक वायु-देवता और नक्षत्रों में उनका अधिपति चन्द्रमा भी हूँ।[1] एकादश रुद्रों में मैं ही शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर भी हूँ। आठ वसुओं में मैं अग्नि हूँ तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरू पर्वत भी हूँ।[2] मैं ही पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति हूँ तथा सेनापतियों में स्वामी

---

1. "आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
   मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥"

   भगवद्गीता, अध्याय 10, श्लोक 21.

2. "रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
   वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

   पूर्वोक्त, अध्याय 10, श्लोक 23.

कार्तिकेय तथा जलाशयों में समुद्र हूँ।[1] भगवद्‌गीता के इन उल्लेखों में विविध देवी-देवताओं के सामंजस्यवादी रूप को देखा गया है जो कि धार्मिक सहिष्णुता का वाचक है।

कृष्ण के विष्णु-आदित्य रूप ( गीता में उल्लिखित ) का प्रतिनिधित्व करने वाली पीतल-निर्मित एक प्रतिमा असम के कछाड़ के करीमगंज नामक स्थान से प्रकाश में आई है जिसमें पूर्ण विकसित कमल के ऊपर एक पुरुष प्रतिमा प्रदर्शित की गई है। आपाततः इस प्रतिमा से बोधिसत्व या बुद्ध-प्रतिमा का बोध होता है; उदाहरणार्थ, इसका व्यावर्तनयुक्त उत्तरीयवस्त्र बोधिसत्व या बुद्ध-प्रतिमाओं के एकांसिक अथवा उभयांसिक नीचे लटकते प्रावारक से साम्य रखता है। परन्तु यह बौद्ध प्रतिमा किसी रूप में नहीं मानी जा सकती, क्योंकि इसके किरीटमुकुट पर 12 अतिरिक्त सिर उच्चित्रित किये गये हैं।[2] इस प्रकार का उच्चित्रण बौद्ध मूर्तिकला में अप्राप्य है। वस्तुतः, किरीटमुकुट पर द्वादश-शिरों का अंकन द्वादश आदित्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि सूक्ष्मरूप से विचार किया जाय तो यह शिल्पांकन गीता में उल्लखित कृष्ण के <u>'द्वादशादित्य विष्णु'</u> का बोधक है जो कि धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है।

---

1. "पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥"

भगवद्‌गीता, अध्याय 10, श्लोक 24.

2. भट्टाचार्य, डी०सी०, आ०क०इ०, पृष्ठ 42-43, आकृति 35.

विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित 'अष्ट-लोकपाल विष्णु' भी संघाट-कोटि की समन्वयवादी प्रतिमा का परिचायक है। इस पुराण के अनुसार 'शार्ङ्गिण' (विष्णु) की आठ बाहें बनाई जायें जो कि आठ लोकपालों की शक्ति के द्योतक हैं।[1] इन आठों में आठों लोकपालों के आयुध प्रदर्शित होना चाहिए।[2] मनुस्मृति में इन आठों दिकपालों के नाम भी उपलब्ध होते हैं - सोम, अग्नि, अर्क, अनिल, इन्द्र, वित्तपति, अप्पति एवं यम।[3] परन्तु यह अष्ट-लोकपाल-सूची अन्य ग्रंथों में कुछ अन्तर के साथ उल्लिखित है; उदाहरणार्थ, लिंग पुराण में अप्पति के स्थान पर वरुण और अर्क के स्थान पर निऋति का उल्लेख मिलता है। अष्टलोकपाल विष्णु की अद्वितीय प्रतिमा कम्बुज (पनोम दा) से उपलब्ध हुई है जिसमें विष्णु अष्टभुज

---

1. "दिशश्चतस्रो धर्मज्ञ तावत्यो विदिशास्तथा।
   बाह्वोऽष्टौ विनिर्दिष्टास्तस्य देवस्य शार्ङ्गिणः॥"

   विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 47, श्लोक 8.

2. "सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च।
   अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥"

   मनुस्मृति अध्याय 5, श्लोक 95.

3. लिंग पुराण, 1, 35, 5.

प्रदर्शित हैं । उनके शिर पर किरीटमुकुट सुशोभित है । उनकी आठ भुजाओं में मात्र छह अवशिष्ट हैं, जिनमें गदा, मृगचर्म, कमण्डलु, वज्र, अग्नि एवं दण्ड आयुध के रूप में अंकित हैं । ये आयुध क्रमानुसार विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि और यम के द्योतक हैं ।[1] इस प्रकार विविध देवों का प्रतिनिधित्व करने वाली यह प्रतिमा संयुक्त देव-प्रतिमा का एक विलक्षण उदाहरण मानी जा सकती है ।

जि0ना0 बनर्जी ने अपने पांडित्यपूर्ण ग्रंथ ( डे0हि0आ0 ) में कुछ ऐसे समन्वित देवों की प्रतिमा का उल्लेख किया है, जिनमें पंचदेव-समूह के किसी देव-विशेष एवं बौद्ध तत्वों का सम्मिश्रण उपलब्ध होता है । इस कोटि की प्रतिमाएँ पूर्वी भारत ( प्रायशः बंगाल ) से उपलब्ध हुई हैं, जिनमें वैष्णव एवं बौद्ध धर्मों के सम्मिश्रण का प्रतिबिम्ब मिलता है । यह उस काल की अवस्था का द्योतक है जब महायान बौद्ध धर्म उस प्रदेश में विशेष रूप से प्रचलित हो चला था । इस कोटि की एक प्रतिमा ( विष्णुलोकेश्वर ) सुरोहर दीनाजपुर ( बंगलादेश ) से प्राप्त है । सात सर्पफणों के आवरण के नीचे एक चतुर्भुज देव समभंग-मुद्रा में प्रदर्शित हैं । पूर्ण-विकसित सनाल-पद्म उनके दायें एवं बायें करों के द्वारा धारण किए गये हैं, जिन पर गदा एवं चक्र न्यस्त हैं । उनके दोनों ओर दो आयुध-पुरुष भी परिलक्षित होते हैं । केन्द्रीय फण के ठीक ऊपर ध्यानी बुद्ध की एक लघु आकृति प्रदर्शित है । चरण चौकी पर नृत्य शिव की अंकित आकृति इस संयुक्त प्रतिमा में शैव तत्व का अभि-व्यंजन करती है ( फलक 48, आकृति 4 ) ।[2]

---

1. भट्टाचार्य डी0सी0, आ0कं0इ0, पृष्ठ 47.

2. बनर्जी, जि0ना0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 554.

सुरोहर-प्रतिमा से साम्य रखने वाली एक अन्य विष्णुलोकेश्वर-प्रतिमा कलन्दरपुर ((बोगरा, बंगलादेश) से प्राप्य है । इसमें विष्णु के 'श्रीधरप्रकार' की आकृति द्रष्टव्य है ; जिसमें सामने के वाम एवं दक्षिण हस्तों में पद्म एवं शंख तथा पीछे के दोनों हाथों में चक्र एवं गदा सुशोभित हैं । आयुधों का यह क्रम श्रीधरविष्णु के सम्बन्ध में रूपमण्डन में भी उपलब्ध होता है ।[1] इस मूर्ति के ऊर्ध्वभाग में ध्यानी बुद्ध और अधोभाग में नृत्यशिव का दृश्यांकन मिलता है ।[2] यह प्रतिमा भी धर्मसमन्वयपरक शिल्पांकन का विशिष्ट दृष्टान्त मानी जा सकती है ।

-----::0::-----

---

1. "श्रीधरो वारिजं चक्रं गदां शंखं दधाति च ।।"
   रूपमण्डन, अध्याय 3, श्लोक 17.

2. बनर्जी, जे०एन०, डे०हि०आ०, पृष्ठ 555.

# सहायक ग्रंथ सूची

## सहायक ग्रन्थ-सूची

### (क) साहित्यिक (मूलभूत संस्कृत, पाली तथा प्राकृत आदि ग्रन्थ)

अथर्ववेद — चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1962.

अग्निपुराण — चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1966.

अपराजितपृच्छा — (आचार्य भुवनदेव), गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़, बड़ौदा, 1950.

अष्टाध्यायी — (पाणिनि) चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1950.

ऋग्वेद संहिता — चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, आफिस, वाराणसी, 1966.

काश्यपशिल्प — (महर्षि कश्यप), सम्पादक वी०जी० आप्टे, आनन्दाश्रम, मुद्रणालय, पूना, 1926.

कालिका पुराण — चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1972.

कुमारसम्भव — भारद्वाज गंगाधर शास्त्री, विद्याविलास प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण।

गरुड़ पुराण — पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी, 1963.

देवतामूर्तिप्रकरण — (सूत्रधारमण्डन), कलकत्ता संस्कृत सीरीज़, कलकत्ता, 1936

देवीभागवत पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1925.

दुर्गासप्तशती — गीताप्रेस गोरखपुर, वि०सं० 2020.

नाट्यशास्त्र — सम्पादक-रामकृष्ण कवि, ओरियेण्ट इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 193

| | |
|---|---|
| पंचविंश ब्राह्मण | बिब्लिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1931. |
| प्रतिमामानलक्षणम् | फणीन्द्रनाथ बोस, मोतीलाल, बनारसीदास, बनारस, 1929. |
| ब्रह्मवैवर्त पुराण | श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1925. |
| ब्रह्माण्ड पुराण | श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1925, शक सं0 1857. |
| बृहत्संहिता | (वराहमिहिर ) सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, 1880. |
| बृहन्नारदीय पुराण | चौखम्बा अमरभारती, वाराणसी, 1975. |
| भगवद्गीता | गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2023. |
| भागवत पुराण | गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 1997, 2033. |
| मत्स्य पुराण | आनन्द आश्रम मुद्रणालय, पुण्याख्यपत्तन, 1907. |
| महाभारत | भण्डारकर ओरियेण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1929-33. |
| महाभाष्य | (पतंजलि ) ज्ञानमण्डल प्रेस, काशी, 1938-39.<br>सम्पादक-कीलहार्न, द्वितीय संस्करण, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल प्रेस, बम्बई । |
| मनुस्मृति | सम्पादक गंगानाथ झा, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1932. |
| मयमतम् | सम्पादक, गणपति शास्त्री, बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी, 1924.<br>गवर्नमेण्ट प्रेस त्रिवेन्द्रम् , 1919. |
| मृच्छकटिक | शूद्रक , चौखम्बा सीरीज़ आफिस, 1962. |

मानसार — सम्पादक प्र0कु0 आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

मानसोल्लास — (सोमेश्वरदेव), गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़, बड़ौदा, 1939.

याज्ञवल्क्य स्मृति — सम्पादक नारायण शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस.

रघुवंश — सम्पादक रघुवंश रघुनाथ नन्दरगिकर, पंचम संस्करण, दिल्ली, 1982.

राजतरंगिणी — दुर्गाप्रसाद, बम्बई संवत्, 1984.

रामायण — गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2017.

रूपमण्डन — (सूत्रधारमण्डन) बलराम श्रीवास्तव, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वि0सं0 2021.

लिंग पुराण — ऐन्शेण्ट इण्डियन ट्रेडिशन एण्ड माइथॉलॉजी सीरीज़, नई दिल्ली, 1973.

वायु पुराण — श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई, 1933.

वास्तु विद्या — सम्पादक गणपति शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1913.

विष्णु पुराण — सम्पादक गणपति शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1889.

विष्णुधर्मोत्तर पुराण — क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1934.

शतपथ ब्राह्मण — बिब्लिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1931.

शिल्परत्न — सम्पादक, गणपतिशास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1922.

शिव पुराण — श्री वेंकटेश्वर, यन्त्रालय, बम्बई, वि0सं0 1982.

समरांगणसूत्रधार — सम्पादक गणपतिशास्त्री, बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी, 1924.

साम्ब पुराण — श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बंबई, वि0सं0 1889.

स्कन्द पुराण — श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई, वि0सं0 1966.

हर्षचरितम् — सम्पादक ए0ए0 फूहरर, गवनमिण्ट सेण्ट्रल प्रेस, बम्बई ।

हरिवंश — सम्पादक एम0एन0 दत्त, चित्रशाला प्रेस, पूना, 1936.


(ख) <u>पुरातत्वीय (आभिलेखिक, मुद्राशास्त्रीय एवं स्मारकीय)</u>


आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट्स — कनिंघम

एपिग्रैफिका इण्डिका, जिल्द 36.

ए गाइड टू दी गांधार स्कल्पचर्स इन द इंडियन म्यूजियम–एन0जी0 मजूमदार.

ए गाइड टू दी सारनाथ म्यूजियम जे0 फोगेल और डी0आर0 साहनी ।

ए शार्ट गाइड-बुक इन दी आर्क्यालॉजिकल, सेक्शन ऑफ दी प्रोविंशियल म्यूजियम, लखनऊ .

ऐनुअल रिपोर्ट, आक्यालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1925-26, जे0 मार्शल

एनाल्स आफ द भण्डारकर ओरियेन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट

क्वायन्स आफ ऐशेण्ट इण्डिया, ए0 कनिंघम् ।

कैटलॉग आफ गुप्त क्वाएन्स इन दी ब्रिटिश म्यूजियम, जे0 एलेन ।

जर्नल आफ दी एपिग्रैफिकल सोसाइटी आफ इण्डिया, जिल्द 10.

जर्नल आफ बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी ।

जर्नल आफ दी ओरियेण्टल इंस्टीट्यूट, जिल्द 18, 1 एवं 2, पृष्ठ 157-159, आकृति 1.

जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी, संख्या 3-4, 1963, पृष्ठ 73.

जर्नल आफ दी मध्य प्रदेश इतिहास परिषद्, भोपाल ।

जर्नल आफ बाम्बे ब्रांच आफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ।

जर्नल आफ दी न्यूमिस्मेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, वाराणसी ।

प्राची ज्योति, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र ।

बुलेटिन आॅफ दि इण्डियन आर्क्यालाॅजिकल सोसायटी, पुरातत्व, नवम्बर अंक, 1979-80.

ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाॅग आॅफ क्वाइन्स आॅफ दी ग्रीक ऐण्ड सिथिक किंग्स आॅफ इण्डिया, पी० गार्डनर ।

भारती, 10-11, 1966-68, पृष्ठ 125-33.

मथुरा, म्यूजियम कैटलाॅग, जे० फोगेल.

स्कल्पचर्स फ्राम आवनेरी, राजस्थान, ललितकला, सं० 1-2, 755-56, पृष्ठ 30-31, वी०एस० अग्रवाल ।

स्टोन स्कल्पचर्स इन दी प्रिंस आॅफ वेल्स, म्यूजियम, प्रमोद चन्द्र, बम्बई ।

(ग) आधुनिक लेखकों के ग्रंथ

अग्रवाल, वासुदेव शरण,

- भारतीय कला, वाराणसी, 1966.
- मथुरा कला, अहमदाबाद, 1964.
- गुप्त कला, लखनऊ, 1948.

- शिव-महादेव, दी ग्रेट गॉड शिव, वाराणसी, 1968.

- देवी-माहात्म्य : दी गलोरिफिकेशन आॅफ दी ग्रेट गॉडेसेज़, वाराणसी, 1963.

- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् पटना, 1953.

अवस्थी, अवधबिहारी लाल,

- स्टडीज़ इन स्कन्द पुराण, भाग 4 ; ब्रह्मैनिकल आर्ट ऐण्ड आइकोनोग्रैफी, लखनऊ, 1976.

अवस्थी, रामाश्रय,

- खजुराहो की देव-प्रतिमाएँ, आगरा, 1967.

अग्रवाल, यू0,

- खजुराहो स्कल्पचर्स ऐण्ड देयर सिगनिफिकेन्स, न्यू दिल्ली, 1964.

अग्रवाल, पी0के0,

- सम वाराणसी इमेजेज़ आॅफ गणपति ऐण्ड देयर आइकोनोग्रैफिक प्राॅब्लेम, आर्टिबस एशियाए, 39, 2, 1970.

अग्रवाल वासुदेवशरण,

- टेराकोटा फिगरिन्स आॅफ अहिच्छत्रा, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1982.

आचार्य पी०के०,

- ए डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, आक्सफोर्ड ।

- मानसार आन आर्किटेक्चर ऐण्ड स्कल्पचर्स, संस्कृत टेक्स्ट विथ क्रिटिकल नोट्स, आक्सफोर्ड ।

आप्टे, वी०एस०,

- दी प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, भाग 1-2, पूना, 1957-59.

एजाजुद्दीन, एफ०एस०,

- पहाड़ी पेन्टिंग ऐण्ड सिख प्रोटैट्स इन दी लाहौर म्यूजियम लन्दन, 1972.

एलिस बोनर ऐण्ड सदाशिवरथ,

- न्यू लाइट आन दी सन टेम्पुल आफ कोणार्क, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1972.

ओहरी, वी०सी०,

- आर्ट्स आफ हिमाचल, शिमला, 1975.

कुमारस्वामी, आ०,

- कैटलाग आफ इंडियन कलेक्शन इन दी म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स, बॉस्टन, भाग 2, स्कल्पचर, बॉस्टन, 1923.

- डांस आफ शिव, नई दिल्ली, 1974.

- हिस्ट्री आफ इण्डियन ऐण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लन्दन, 1927.

- ओरिजन आफ दी बुद्ध इमेजेज़ बॉस्टन म्यूजियम आफ आर्ट बुलेटिन

कजिन्स, जेम्स एच0,

- डिस्क्रिप्टिव लिस्ट आफ एक्जहिबिट्स इन दी आक्यो-लाजिकल सेक्शन आफ दी नागपुर म्यूजियम, इलाहाबाद, 1914.

कृष्ण देव,

- टेम्पुल्स आफ खजुराहो, ऐशेंट इण्डिया, सं0 15, 1959.

- टेम्पुल्स आफ नार्थ इण्डिया, दिल्ली, 1969.

- गाइड टू खजुराहो, म्यूजियम, आ0सं0इं0, दिल्ली ।

काला, एस0सी0,

- स्कल्पचर्स इन दी इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद, 1946.

कँवर लाल,

- इम्माार्टल खजुराहो, एशिया प्रेस, दिल्ली, 1965.

क्रैमरिक, स्टेला,

- दी हिन्दू टेम्पुल, भाग 1, 2, कलकत्ता, 1946.
- दी आर्ट ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1955.
- इण्डियन स्कल्पचर्स, कलकत्ता, 1933.
- इण्डियन स्कल्पचर्स इन दी फिलाडेल्फिआ म्यूजियम ऑफ आर्ट, फिलाडेल्फिआ, 1960.

कृष्णा, नन्दिता,

- दी आर्ट ऐण्ड आइकोनोग्रैफी ऑफ विष्णु-नारायण, बम्बई, 1980.

कुमार, पुष्पेन्द्र,

- शक्ति कल्ट इन ऐंशेण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1974.

कालिया, आशा,

- दी आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स, अभिनव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982.

गंगवार, क्षेत्रपाल,

- हरिहरोपासना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य, इलाहाबाद, 1979.

गेटी, एलिस,

- दी गॉड्स आॅफ नार्दर्न बुद्धिज्म, नई दिल्ली, 1978.

- गणेश, नई दिल्ली, 1972.

गांगुली, डी०सी०,

- कोणार्क, कलकत्ता, 1956.

- उड़ीसन स्कल्पचर ऐण्ड आर्किटेक्चर, कलकत्ता, 1956.

गोयट्ज़, एच०,

- सूर्य ऐज़ दी सुप्रीम गॉडहेड, प्रोफेसर गोड़े कमेमोरेशन, वाल्यूम; सम्पादक एच०एल० हरियप्पा ऐण्ड एम०एम० पटकर पूना, 1960.

गांगुली, मनमोहन,

- उड़ीसा ऐण्ड हर रिमेन्स, कलकत्ता, 1912.

गोंडा, जे०,

- आस्पेक्ट्स आॅफ अर्ली विष्णुइज्म, नई दिल्ली, 1969.

गुप्ता, पी०एल०,

- पटना म्यूज़ियम कैटलाॅग आॅफ ऐंटीक्वीटीज़, पटना, 1965.

गुप्ते, आर०एस०,

- आइकोनोग्रैफी आफ हिन्दू, बुद्धिस्ट ऐण्ड जैन्स, बम्बई, 1972.

धाल, यू०एन०,

गोडेस लक्ष्मी, ओरिजिन ऐण्ड डेवलेपमेन्ट-ए स्टडी आफ दी गोड्स आफ ब्यूटी ऐण्ड वेल्थ, नई दिल्ली, 1978.

घोसाल, एस०एन०,

- दी ऐटीच्यूड आफ दी निर्गन्थाज़ टूअर्ड्स अदर रेलिजस, सेक्ट्स ऐज़ ग्लीन्ड फ्राम दी यूवासगदसाज मन्थली बुलेटिन आफ दी एशियाटिक सोसायटी, जिल्द 8, अंक 5, मई 1979.

चम्पकलक्ष्मी, आर०,

- वैष्णव आइकोनोग्रैफी इन दी तमिल कंट्रीज, नई दिल्ली, 1981.

चन्द्र लोकेश,

- नीलकंठ लोकेश्वर ऐज़ दी बुद्धिस्ट एपोथियोसिस आफ हरि-हर, न्यू दिल्ली, 1979.

चन्द्र, जगदीश,

- बिब्लियोग्रैफी आँफ इंडियन आर्ट, हिस्ट्री ऐण्ड आर्क्यालॉजी, नई दिल्ली, 1978.

चन्द्र, मोती,

स्टोन स्कल्पचर्स इन दी प्रिंस आँफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई, 1974.

चन्द्र प्रमोद,

- स्टोन स्कल्पचर्स इन दी इलाहाबाद म्यूजियम, अमेरिकन इंस्टीट्यूट आँफ इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी, पब्लिकेशन सं0 2.

जोशी, एन0पी0,

- कैटलाॅग आँफ दी ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन दी स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ, भाग I , लखनऊ, 1972.

जेनास, ई0,

खजुराहो, हेग, 1960.

जैश, पी0,

- हिस्ट्री आँफ शैविज़्म, कलकत्ता, 1974.

- हिस्ट्री ऐण्ड इवोल्यूशन आँफ वैष्णविज़्म इन ईस्टर्न इण्डिया, कलकत्ता, 1982.

जायसवाल, सुवीरा,

- दी ओरिजन ऐण्ड डेवलेपमेण्ट आॅफ वैष्णविज़्म, 1967.

डेनेक, एम0एम0,

- इण्डियन स्कल्पचर; मास्टर पीसेज़ आॅफ इण्डियन, खमेर ऐण्ड चम्पा आर्ट, लंदन, 1963.

डाउजन, जे0,

- ए क्लैसिकल डिक्शनरी आॅफ हिन्दू माइथोलाॅजी ऐण्ड रेलिजन, ज्याॅग्रफी, हिस्ट्री ऐण्ड लिटरेचर, लन्दन, 1957.

ढाकी, एम0ए0,

- एन्साइक्लोपिडिया आॅफ इण्डियन टेम्पुल आर्किटेक्टर साउथ इण्डिया, लोअर द्रविड देश, दिल्ली, 1983.

तिवारी, एस0पी0,

- हिन्दू आइकोनोग्रैफी, नई दिल्ली, 1979.

थापर, डी0आर0,

- आइकन्स इन ब्रान्ज़, बम्बई, 1961.

ज़िमर, एच0,

- मिथ्स ऐण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड सिविलाइज़ेशन, न्यू आर्क, 1946.

देव, एस०बी०,

- 'सम अर्द्धनारी फार्म्स आफ विष्णु' भारती, 10-11, 1966-68.

देगुल्कर, जी०बी०,

- टेम्पुल आर्किटेक्चर ऐण्ड स्कल्पचर आफ महाराष्ट्र, नागपुर, 1974.

देसाई, कल्पना शरण,

- आइकोनोग्रैफी आफ विष्णु, नई दिल्ली, 1973.

दूबे, हरिनारायण,

- पुराण-समीक्षा, इण्टरनेशनल इंस्टीट्यूट फार डेवलपमेण्ट ऐण्ड रिसर्च, इलाहाबाद, 1984.

पाणिग्रही, के०सी०,

- आर्क्यालॉजिकल रिमेन्स ऐट भुवनेश्वर, कलकत्ता, 1961.

पाठक, वी०एस०,

- हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया फ्राम इंस्क्रिप्शंस, वाराणसी, 1960.

पाण्डे, दीनबन्धु,

- हिन्दू देव प्रतिमा-विज्ञान, वाराणसी, 1978.

पाण्डे, डी0बी0,

- नोट्स ऑन इण्डियन आइकोनोग्रैफी, वाराण्सी, 1978.

पाल, प्रतपादित्य,

- दी आर्ट ऑफ नेपाल, भाग 1, स्कल्पचर, 1974.
- वैष्णव आइकोनोलॉजी इन नेपाल, 1976.
- दी आइडियल इमेज़ेज, 1978.
- दी सेक्रेड ऐण्ड सेकुलर इन इण्डियन आर्ट सेलेक्टेड फ्रॉम दी लास ऐंजलस काउंटी म्यूज़ियम आफ आर्ट, कैलिफोर्निया, 1974.

पुसाल्कर, ए0डी0,

- स्टडीज इन दी एपिक्स ऐण्ड पुराणाज़, बम्बई, 1955.

बर्थ, ए0,

- दी रेलिजन्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1969.

बनर्जी, आर0डी0,

- ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑफ मेडिवल स्कल्पचर्स, न्यू दिल्ली, 1933.

बाजपेयी, के0डी0,

- हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर आफ मध्य प्रदेश, बी0जी0 इंस्टीट्यूट आफ लर्निंग ऐण्ड रिसर्च, अहमदाबाद, 1984.
- इण्डियन न्यूमिस्मेटिक स्टडीज़, अभिनव पब्लिकेशन्स, 1976.

- सागर थ्रू दी एजेज़, सागर, 1964.

- कल्चरल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पूना प्रकाशन, दिल्ली, 1985.

बनर्जी, जे०एन०,

- दी डेवलेपमेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, कलकत्ता, तृतीय संस्करण, 1974.

- रिलिजन इन आर्ट ऐण्ड आक्यालॉजी, लखनऊ, 1968.

- पौराणिक ऐण्ड तांत्रिक रेलिजन, कलकत्ता, 1966.

- दी सो-काल्ड त्रिमूर्ति आफ एलिफेण्टा, पेरिस, 11, 2.

बोस, निर्मल कुमार,

- कैनन्स आफ उड़ीसन आर्किटेक्चर, कलकत्ता, 1932.

भट्टाचार्य, बी०सी०,

- इण्डियन इमेजेज़, कलकत्ता, 1921, भाग 1.

- जैन आइक्नोग्रैफी, लाहौर, 1939.

भट्टाचार्य, बी०,

- इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, कलकत्ता, 1958.

- शैविज़्म ऐण्ड दी फैलिक वर्ल्ड, भाग 1, 2, 1975.

भण्डारकर, आर0जी0,

- वैष्णविज़्म, शैविज़्म ऐण्ड अदर माइनर रेलिजस सिस्टम, वाराणसी, 1965.

भट्टाचार्य, यू0सी0,

- कैटलॉग ऐण्ड गाइड टू राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर, जयपुर, 1960-61.

भट्टाचार्य, दि0च0,

- आइकोनोलॉजी ऑफ कम्पोजिट इमेज़ेज, नई दिल्ली, 1980.

- द कम्पोजिट इमेज ऑफ वासुदेव ऐण्ड लक्ष्मी, जनरल ऑफ दी एशियाटिक सोसायटी, 8, 1966.

- 'ब्राह्मणदेव-विष्णु : ए कम्पोजिट फॉर्म ऑफ विष्णु ऐण्ड कार्तिकेय' ज0ए0सी0, 17, 1-4, 1975.

- तांत्रिक, बुद्धिस्ट, आइकोनोग्रैफिक सोर्सेज़, नई दिल्ली, 1974.

- स्टडीज़ इन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रैफी, नई दिल्ली, 1978.

भट्टसाली, एन0के0,

- आइकोनोग्रैफी ऑफ बुद्धिस्ट ऐण्ड ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन दी ढाका म्यूजियम, वाराणसी, 1972.

मुखर्जी, प्रभात,

- दी हिस्टारिकल स्टडी आफ मेडिवल वैष्णविज़्म इन उड़ीसा, नई दिल्ली, 1981.

मूर्ति, शिवराम,

- एपिग्रैफिकल इकोज़ आफ कालिदास, मद्रास, 1944.

मकबूल अहमद,

- खजुराहो एरोटिक्स ऐण्ड टेम्पुल आर्किटेक्चर, दिल्ली, 1982.

मजूमदार, बी०,

- ए गाइड टू सारनाथ (द्वितीय संस्करण), नई दिल्ली, 1947.

मजूमदार, एन०जी०,

- ए गाइड टू दी स्कल्पचर्स इन दी इण्डियन म्यूज़ियम (भाग 1, 2) दिल्ली, 1937.

मजूमदार, आर०सी०,

- इण्डियन कल्चर इन साउथ-ईस्ट-एशिया, 1970.

- हिस्ट्री आफ बंगाल, जिल्द (हिन्दू पीरियड) पटना, 1970.

- हिन्दू कालोनीज़ इन फार ईस्ट, कलकत्ता, 1973.

मजूमदार, आर०सी० ऐण्ड पुसाल्कर ए०डी०,

- दी वैदिक एज्, भाग 1, लन्दन, 1950.
- दी एज् आफ इम्पीरियल यूनिटी, भाग 2, बम्बई, 1951
- दी क्लैसिकल एज्, भाग 3, बम्बई, 1954.
- दी एज् आफ इम्पीरियल कन्नौज, भाग 4, बम्बई 1955.
- दी स्ट्रगिल फार इम्पायर, भाग 5, बम्बई, 1957.

मनकद, डी०आर०,

- प्रतिमा-विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, 1972.

माथुर, वी०के०,

इण्डियन आर्ट, राष्ट्रीय संग्रहालय, 1983.

मार्शल, जे०ए०,

- गाइड टू तक्षशिला, कलकत्ता, 1918.
- ए गाइड टू साँची, कलकत्ता, 1955.

मिश्र, इन्दुमती,

- प्रतिमा-विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, 1972.

मित्रा, देवला,

- भुवनेश्वर, आ०स०इ०, नई दिल्ली, 1973.

- कोणार्क, आ०स०इ०, नई दिल्ली, 1976.

- खजुराहो, आ०स०इ०, नई दिल्ली, 1975.

मुकर्जी, आर०के०,

- द कास्मिक आर्ट आफ इण्डिया, बम्बई, 1965.

मुंशी, के०एम०,

- इण्डियन टेम्पुल स्कल्पचर्स, नई दिल्ली, 1956.

मित्रा, आर०एल०,

- बुद्ध गया, दिल्ली, 1972.

मैकडोनल, ए०ए०,

- दी वैदिक माइथालोजी, वाराणसी, 1963.

- हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, लन्दन, 1928.

- लेक्चरर्स इन कम्पेरेटिव रिलिजन, कलकत्ता, 1925.

मैकडॉनल ऐण्ड कीथ, ए०बी०,

- वैदिक इण्डेक्स, जिल्द 1, 2, वाराणसी, 1958.

मैक्समूलर, एफ0,

- हिस्ट्री आफ ऐंशेंट संस्कृत लिटरेचर, इलाहाबाद, 1926.

- ओरिजन ऐण्ड ग्रोथ आफ रेलिजन, लन्दन, 1978.

मोनियर, विलियम्स, एम0,

- ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, आक्सफोर्ड, 1956.

- रेलिजस लाइफ ऐण्ड थॉट इन इण्डिया, लन्दन, 1883.

यादव, बी0एन0एस0,

- सोसायटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन दी ट्वेल्फ्थ सेन्चुरी, इलाहाबाद, 1973.

राव, टी0ए0जी0,

- एलिमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्रैफी, मद्रास, 1914-16.

रासेनफील्ड, जे0एम0,

- दी डायनेस्टिक आर्ट आफ दी कुषाणाज़, कैलिफोर्निया, 1967.

रायचौधरी, एच0सी0,

- पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1982.

- मैटेरियल्स फार दी स्टडी आफ दी अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, 1936.

राय, यू0एन0,

- गुप्त सम्राट् और उनका काल बृहत्संस्करण इलाहाबाद 1986.

- प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन, इलाहाबाद, 1965.

राय, एस0एन0,

- पौराणिक, धर्म और समाज, इलाहाबाद, 1967.

वर्मा, रत्नेश कुमार,

- खजुराहो के जैन मन्दिरों की मूर्तिकला, पार्श्वनाथ विद्याश्र शोध-संस्थान, वाराणसी, 1984.

शाह, प्रियबाला,

- विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, जिल्द 1, 2, 1961

शिवराममूर्ति, सी0,

- इण्डियन स्कल्पचर, नई दिल्ली, 1961.

- नटराज इन आर्ट, थॉट ऐण्ड लिटरेचर, नई दिल्ली, 1974

- ए गाइड टू दी आर्क्यालॉजिकल गैलरिज ऑफ दी इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, 1954.

- संस्कृत लिटरेचर ऐण्ड आर्ट, मिरर्स ऑफ इण्डियन कल्चर, आ0स0इ0, 73.

शुक्ल, डी0एन0,

- हिन्दू कैननन्स आफ आइकोनोग्रैफी, लखनऊ, 1958.

सिद्धान्तशास्त्री, आर0के0,

- शैविज़्म थ्रू दी एजेज, नई दिल्ली, 1974.

स्मिथ, एच0डी0,

- वैष्णव आइकोनोग्रैफी, मद्रास, 1969.

स्मिथ, वी0ए0,

- ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इंडिया ऐण्ड सीलोन, बम्बई, 1969.

- क्वायन्स आफ ऐंशेंट इण्डिया, जिल्द 1, दिल्ली, 1972.

सरकार, ए0,

- शिव इन मेडिवल इण्डियन लिटरेचर, कलकत्ता, 1974.

सरकार, दि0च0,

- सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, जिल्द 1, 2, दिल्ली, 1882.

- लक्ष्मी ऐण्ड सरस्वती इन आर्ट ऐण्ड लिटरेचर, कलकत्ता, 1970.

सरस्वती, एस0के0,

- ए सर्वे आफ इण्डियन स्कल्पचर्स, नई दिल्ली, 1975.

- अर्ली स्कल्पचर्स आफ बंगाल, कलकत्ता, 1962.

सहाय, भगवंत,

- आइकोनोग्रैफी ऑफ माइनर हिन्दू ऐण्ड बुद्धिस्ट डीटीज, नई दिल्ली, 1975.

सिंह, शिव बहादुर,

- ब्रह्मैनिकल आइकन्स इन नार्दर्न इण्डिया, न्यू दिल्ली, 1977.

सेनगुप्ता, नीलिमा,

- कल्चरल हिस्ट्री ऑफ कपिशा ऐण्ड गांधार, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1984.

सौन्दर राजन के0वी0,

- आर्ट ऑफ साउथ इण्डिया, दक्कन, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1980.

श्रीवास्तव, बी0,

- आइकोनोग्रैफी ऑफ शक्ति, वाराणसी, 1978.

श्रीवास्तव, ए0के0,

- कैटलॉग ऑफ इण्डो-ग्रीक क्वायन्स इन दी स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, 1969.

वेंकटरमैया, एन0,

- रुद्र-शिव, मद्रास, 1941.

हेराम, एच0,

- दी प्राब्लेम आफ गणपति, नई दिल्ली, 1972.

हापकिन्स, ई0डब्लू0,

- एपिक माइथोलाजी, स्ट्रेसवर्ग, फ्रांस, 1915.

- दी रेलिजन्स आफ इण्डिया, बोस्टन, 1908.

हैवेल, ई0बी0,

- हैण्डबुक आफ इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1972.

- ऐंशेंट ऐण्ड मेडिवल आर्किटेक्चर आफ इण्डिया,

- आइडियल्स आफ इण्डियन आर्ट, लंदन, 1911.

- दी मैथेमेटिकल बेसिस आफ इण्डियन आइकोनोग्रैफी,
रूपम् संख्या 30 जनवरी, 1920.

डांडा, डी0,

- ओसियाँ, हिस्ट्री आर्क्यालोजी, आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर,
दिल्ली, 1984.

हार्ले, जे0सी0,

- गुप्त स्कल्पचर्स, आक्सफोर्ड, 1974.

हाज़रा, आर०सी०,

- स्टडीज़ इन दी पुराणिक रेकर्ड्स आॅन हिन्दू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स, नई दिल्ली, 1975.

- स्टडीज इन उपपुराणाज़, जिल्द 1, 2, कलकत्ता, 1902.

हेस्टिंग्स, जेम्स,

- इनसाइक्लोपीडिया आॅफ रिलिजन ऐण्ड एथिक्स, जिल्द 7, एडिनबर्ग, 1914.

## घ अनुसंधान-पत्रिकाओं के लेख

अग्रवाल, रत्न चन्द्र,

- ए न्यूली डिसकवर्ड पंच-गणेश फ्राम जयपुर, राजस्थान, जे०ओ०आई०, जिल्द 21, संख्या 1-2.

- "ए रेयर चतुर्मुख-लिंग फ्राम नन्द" पुरातत्त्व सं० 2.

- 'ए स्कल्पचर आॅफ सूर्यनारायण' ब्रह्मविद्या, जिल्द 26, दिसम्बर 1962.

- 'ऐन अनपब्लिश्ड स्कल्पचर आॅफ अर्द्धनारीश्वर इन झालावाड म्यूजियम' जे०आइ०एच०, जिल्द 36, जिल्द 2.

- 'हरिहर इन दी नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली, ईस्ट ऐण्ड वेस्ट (न्यू सीरीज) जिल्द 20, सं0 3.

- 'सम फरदर आॅब्जर्वेशन्स आॅन अर्ली इन्सक्रिप्शंस ऐण्ड स्कल्पच आॅफ राजस्थान डेपिक्टिंग कृष्ण ऐण्ड रामायण सीन्स, भारतीय विद्या, जिल्द 16, सं0 2.

- 'सम इण्टरेस्टिंग अर्ली मेडिवल स्कल्पचर्स इन दी झालावाड़ म्यूजियम' जर्नल आॅफ इण्डियन म्यूजियम, जिल्द 11, 195

- 'राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में अर्द्धनारीश्वर भाव की अभिव्यक्ति' (मरु-भारती, पिलानी, 6,2, 1966).

- "नागदा के सास-बहू मंदिरों की महत्वपूर्ण प्रतिमाएँ (शो पत्रिका, उदयपुर, वर्ष 14, अंक 3, 1963).

- 'राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में सूर्य-नारायण तथा मातृ भैरव प्रतिमाएँ' (शोध-पत्रिका 8, 4).

- 'राजस्थान की मूर्तिकला में गणपति' (मरु-भारती, 15,3)

- 'राजस्थान की मूर्तिकला में लिंगोद्‌भव'(मरु-भारती, 18,2)

अग्रवाल, वी0एस0,

- 'ए कैटलाॅग आॅफ ब्रह्मैनिकल इमेजेज इन मथुरा आर्ट' (ज0आ0यू0पी0हि0सो0, जिल्द 22, भाग 1).

अवस्थी, आर0,

- 'खजुराहो की हरि-हर-हिरण्यगर्भ-प्रतिमाएँ'
(ज0यू0पी0हि0सो0) , जिल्द 10, भाग 2.

कुमारस्वामी, ए0के0,

- 'अर्ली इण्डियन आइकोनोग्रैफी' ईस्टर्न आर्ट, जिल्द 1,
सं0 3.

डिस्कल्कर, डी0बी0,

- 'सम ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन दी मथुरा म्यूजियम,
(ज0यू0पी0हि0सो0, जिल्द 5 ), भाग 1.

पाल, पी0,

- 'नोट्स आफ फाइव स्कल्पचर्स फ्राम नेपाल' ब्रिटिश
म्यूजियम क्वाटरली, जिल्द 29, सं0 1-2.

पुरी, बी0एन0,

- 'गणेश ऐण्ड दी गणपति कल्ट इन इण्डिया ऐण्ड साउथ-ईस्ट
एशिया, ज0इ0हि0, जिल्द 48, भाग 2.

बैरट, डगलस,

- 'ऐन अर्ली चोल लिंगोद्भवमूर्ति' ब्रिटिश म्यूजियम क्वाटरली",
जिल्द 28, सं0 1-2.

बाजपेयी, के0डी0,

- 'मथुरा-कला में कृष्ण-बलराम की मूर्तियाँ", कलानिधि, 1-2.

बनर्जी, जे0एन0,

- 'द रिप्रजेंटेशन ऑफ सूर्य इन ब्रह्मैनिकल आर्ट' इण्डियन ऐंटिक्वरी, 1925.

भट्टाचार्य, बी0,

- 'मेडिवल हिन्दू इमेजेज इन दी कलेक्शन ऑफ प्रिंस प्रतापसिंह महाराज गायकवाड़' इण्डियन कल्चर, जिल्द 1, सं0 3-4

सिंह, एस0बी0,

- 'तिंकृटिक आइकन्स इन उत्तर-प्रदेश', <u>ईस्ट ऐण्ड वेस्ट</u>, जिल्द 23, सं0 3-4.

- 'विनायक गणपति ऐण्ड हिज आइकन्स इन उत्तर प्रदेश' <u>रूप-लेखा</u>, जिल्द 41, सं0 1-2.

-----::0::-----

## आकृति-सूची

## आकृति-सूची

| | | |
|---|---|---|
| 16. | हरिहर | कृष्ण-द्वारका मंदिर, गया (बिहार ) |
| 17. | हरिहर | भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (बंगाल) |
| 18. | हरिहर | भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (बंगाल ) |
| 19. | हरिहर | अजमेर संग्रहालय, अजमेर (राजस्थान ) |
| 20. | हरिहर | तुलसी संग्रहालय, रामबन सतना, (मध्य प्रदेश ) |
| 21. | हरिहर | राज्य संग्रहालय भरतपुर (राजस्थान) |
| 22. | हरिहर | रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर |
| 23. | हरिहर | रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर |
| 24. | हरिहर | केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर |
| 25. | हरिहर | केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर |
| 26. | हरिहर | नवादा संग्रहालय, नवादा (बिहार) |
| 27. | हरिहर | नवादा संग्रहालय, नवादा (बिहार) |
| 28. | हरिहर | शिवपुरी-संग्रहालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) |
| 29. | हरिहर | शिवपुरी-संग्रहालय, शिवपुरी ( मध्य प्रदेश ) |
| 30. | हरिहर | दुबेला-संग्रहालय, (मध्य प्रदेश) |
| 31. | हरिहर | गंडई, राजनन्द गाँव (मध्य प्रदेश) |
| 32. | हरिहर | रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0) |

| | | |
|---|---|---|
| 33. | हरिहर | गढ़, रीवा, (मध्य प्रदेश ) |
| 34. | हरिहर | प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, (बम्बई ) |
| 35. | हरिहर | मल्हार, बिलासपुर, मध्य प्रदेश ( हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय सागर संग्रहालय, सागर ) |
| 36. | हरिहर | राज्य-संग्रहालय, विदिशा (मध्य प्रदेश ) |
| 36 अ. | हरिहर | केन्द्रीय संग्रहालय, राजस्थान |
| 37. | अर्द्धनारीश्वर | राजकीय राज्य-संग्रहालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश ) |
| 38. | अर्द्धनारीश्वर | राज्य-संग्रहालय, लखनऊ( उत्तर प्रदेश ) |
| 39. | अर्द्धनारीश्वर | राज्य-संग्रहालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) |
| 40. | अर्द्धनारीश्वर | सूर्य मंदिर 1, सचियामाता, ओसियाँ (राजस्थान) |
| 41. | अर्द्धनारीश्वर | सत्यनारायण मंदिर ओसियाँ |
| 42. | अर्द्धनारीश्वर | लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो (मध्य प्रदेश) |
| 43. | अर्द्धनारीश्वर | लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो (मध्य प्रदेश) |
| 44. | अर्द्धनारीश्वर | वेताल देउल, भुवनेश्वर (उड़ीसा ) |
| 45. | अर्द्धनारीश्वर | ब्रह्मेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर ( उड़ीसा ) |
| 46. | अर्द्धनारीश्वर | मार्कण्डेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर ( उड़ीसा ) |
| 47. | अर्द्धनारीश्वर | राष्ट्रीय संग्रहालय, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश ( अलमोड़ा से प्राप्त) |

48. अर्द्धनारीश्वर कन्नौज-संग्रहालय, कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

49. अर्द्धनारीश्वर द्विवेदी-संग्रह, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

50. अर्द्धनारीश्वर केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

51. अर्द्धनारीश्वर हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर (मध्य प्रदेश)

52. अर्द्धनारीश्वर श्रीनगर, एस०पी०एस० संग्रहालय (जम्मू-काश्मीर)

53. अर्द्धनारीश्वर आशापुरी, बिरला संग्रहालय, भोपाल (रायसेन, मध्य प्रदेश)

54. अर्द्धनारीश्वर झालरापाटन, झालावाड़-संग्रहालय, झालावाड (राजस्थान)

55. अर्द्धनारीश्वर केन्द्रीय संग्रहालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

56. वासुदेव-कमलजा राष्ट्रीय संग्रहालय, (नई दिल्ली)

57. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, दूलादेव मंदिर, खजुराहो (मध्य प्रदेश)

58. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो (मध्य प्रदेश)

59. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, राज्य-संग्रहालय, गंधर्वपुरी (देवास) मध्य प्रदेश

60. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, सचियामाता मंदिर, ओसियाँ (राजस्थान)

61. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, सचियामाता मंदिर, ओसियाँ (राजस्थान)

62. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ, डोंगर-रासपाड़ा, बस्तर (मध्य प्रदेश)

63. त्रिमूर्ति शिव, ब्रह्मा एवं सूर्य सारनाथ-संग्रहालय, सारनाथ (~~मध्य~~ उत्तर प्रदेश)

64. त्रिमूर्ति (शिव, विष्णु एवं सूर्य) विक्रम कीर्ति मंदिर, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

65. त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) बिरला संग्रहालय भोपाल, (रायसेन, मध्य प्रदेश)

66. त्रिमूर्ति मार्कण्डेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर (उड़ीसा)

67. त्रिमूर्ति राज्य-संग्रहालय, चित्तौड़गढ़, (राजस्थान)

68. त्रिमूर्ति गुफा सं0 27, एलौरा, औरंगाबाद, (महाराष्ट्र)

69. विश्वरूप विष्णु राजकीय संग्रहालय, मथुरा, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

70. विश्वरूप विष्णु आर्क्यालॉजिकल संग्रहालय कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

71. विश्वरूप विष्णु ~~राजकीय~~ आर्क्यालॉजिकल संग्रहालय ~~मथुरा~~, ~~मथुरा~~ कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

72. विश्वरूप शिव, राजकीय संग्रहालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

73. एकस्थ देवमूर्तन हम्पी मैसूर राष्ट्रीय संग्रहालय, (दिल्ली)

| | | |
|---|---|---|
| 74. | एकस्थ देवमूर्तन | हम्पी ( मैसूर ) राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, ( दिल्ली |
| 75. | एकस्थ देवमूर्तन | सारनाथ संग्रहालय सारनाथ, वाराणसी ( उत्तर प्रदेश |
| 76. | पंचोपासना-विधि | ( शाहाबाद, जनपद हरदोई ) डा० जगदीश गुप्त संग्रह, इलाहाबाद । |

-----::0::-----

प्राचीन भारतवर्ष के युग्म एवं संघाट-विषयक
प्रमुख कला- केन्द्र
हिमगिरि
पूर्वापर तोयनिधि
1-अणहिलपाटन
2-मढेरा
3-झालरपाटन
4-कोटा
5-उदयपुर
6-ओसियाँ
7-धार
8-खजुराहो
9-मन्दसोर
10-मल्हार
11-महोबा
12-सारनाथ
13-कुर्किहार
14-गुर्गी
15-जमसोत
16-मथुरा
17-कोशाम्बी
18-कन्नौज
19-बोधगया
20-गया
21-भुवनेश्वर
22-रतनपुर
23-पहाड़पुर
24-त्रिपुरा
25-एहोड़े
26-बादामी
27-एलौरा
28-महाबलिपुरम
29-कांची
30-थंजाउर (तंजौर)
31-मदुराई (मदुरै)
68
72
76
80
84
88
92
40
36
32
28
24
20
16
12
8
4

1. अम्बिका

2. चक्रेश्वरी

3. हरिहर

4. हरिहर

5. हरिहर

6. हरिहर

7. हरिहर

8. हरिहर

९. हरिहर

10. हरिहर

११. हरिहर
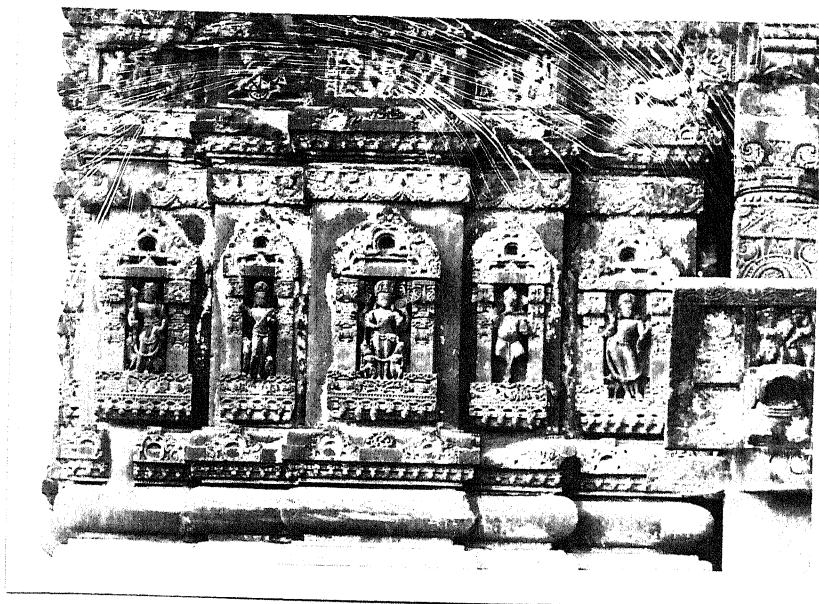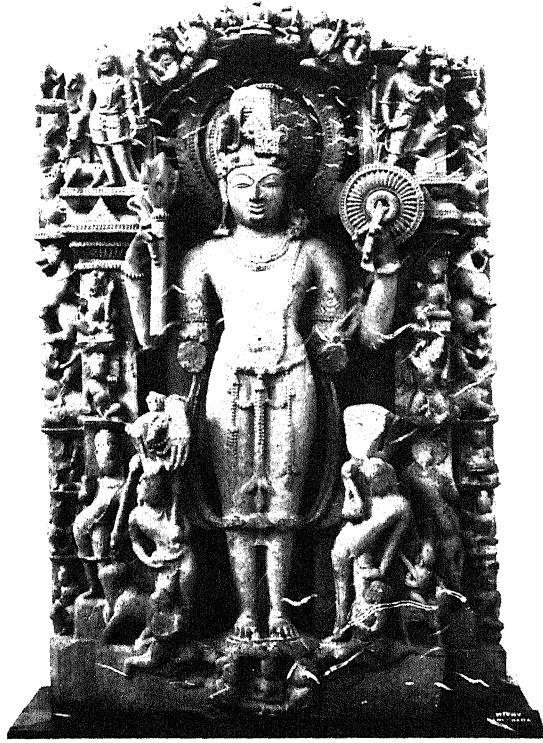
१२. हरिहर

13. हरिहर

14. हरिहर

15. हरिहर

16. हरिहर

17. हरिहर
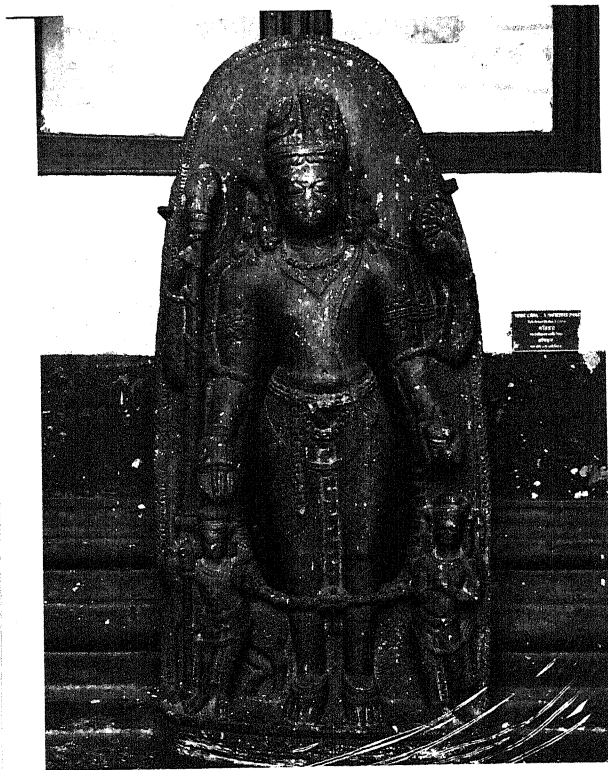
18. हरिहर

19. हरिहर

20. हरिहर

21. हरिहर

22. हरिहर

23. हरिहर
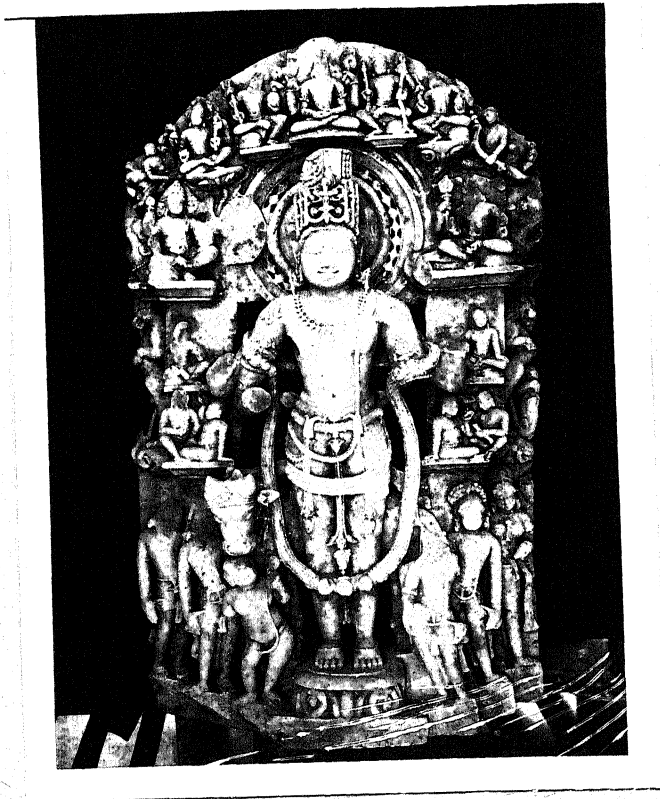
24. हरिहर

25. हरिहर
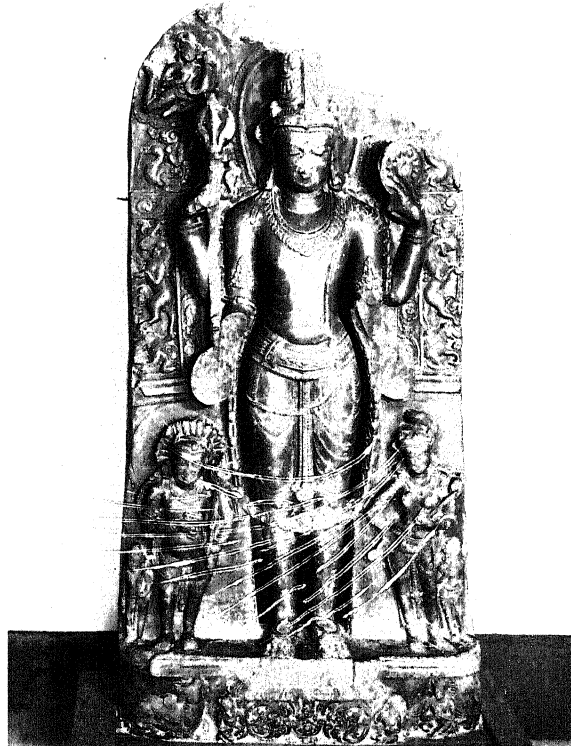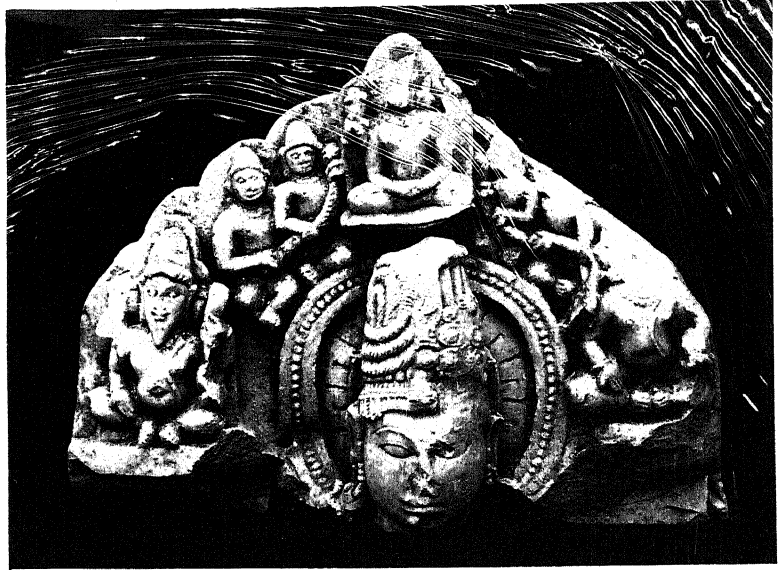
26. हरिहर

27. हरिहर
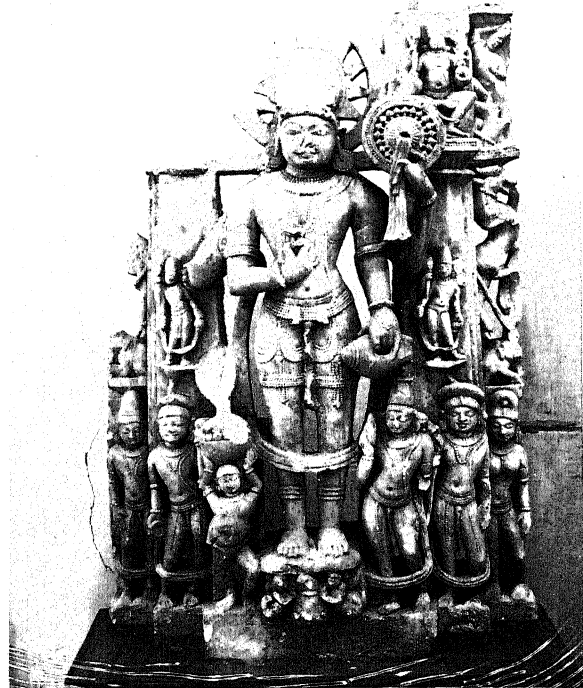
28. हरिहर

२९. हरिहर
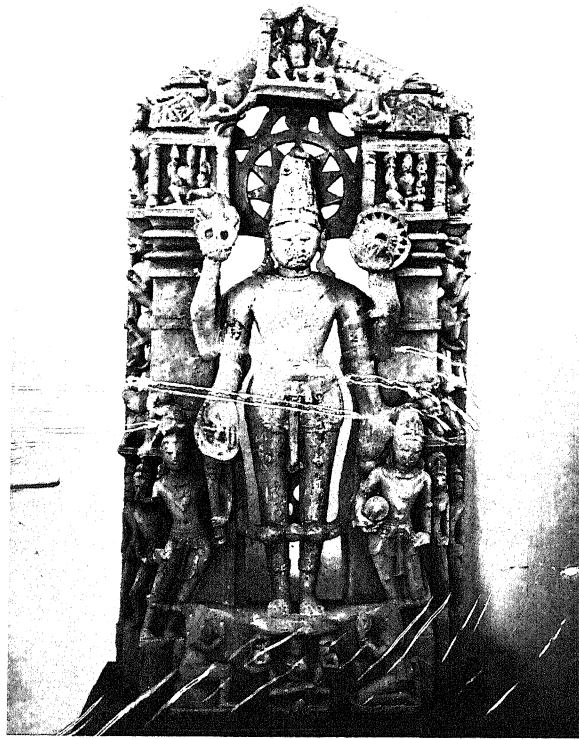
30. हरिहर

31. हरिहर
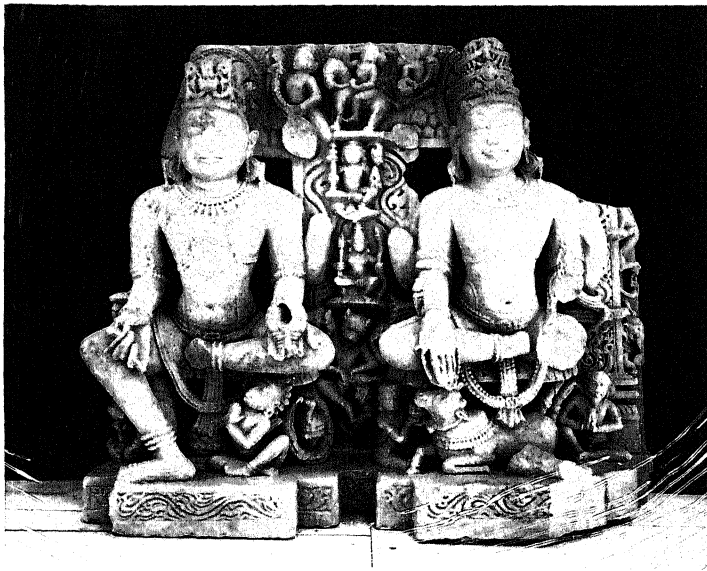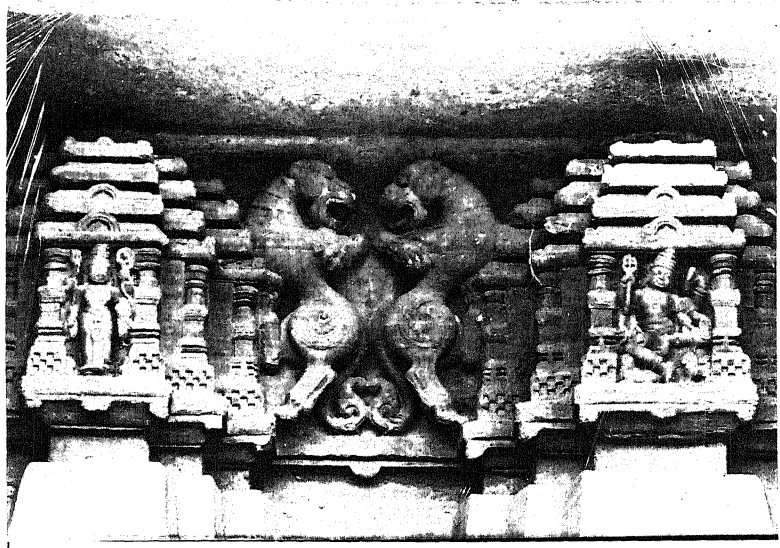
32. हरिहर

33. हरिहर

34. हरिहर

35. हरिहर
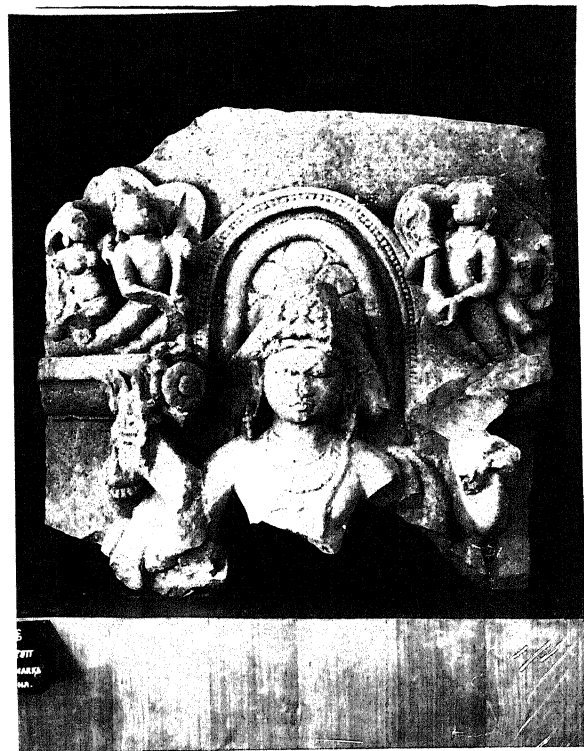
36. हरिहर

36 अ. हरिहर
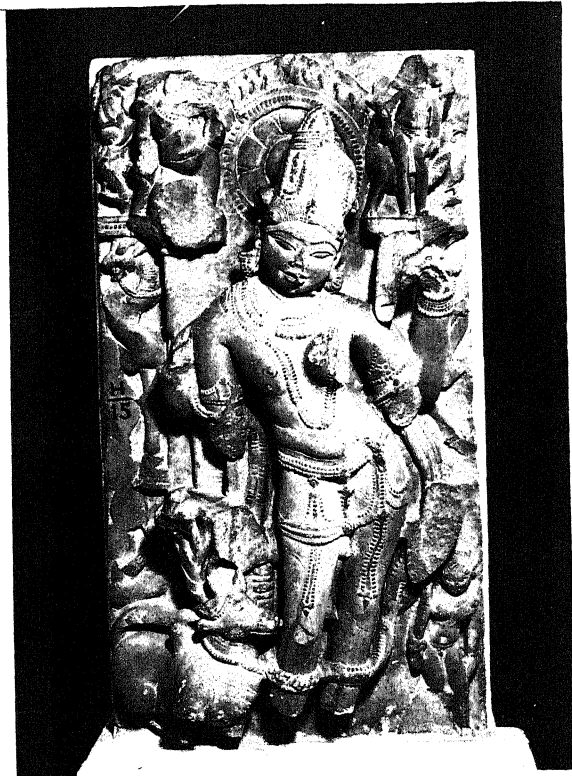
37. अर्द्धनारीश्वर

38. अर्द्धनारीश्वर

39. अर्द्धनारीश्वर

५०. अर्द्धनारीश्वर

५१. अर्द्धनारीश्वर

42. अर्द्धनारीश्वर
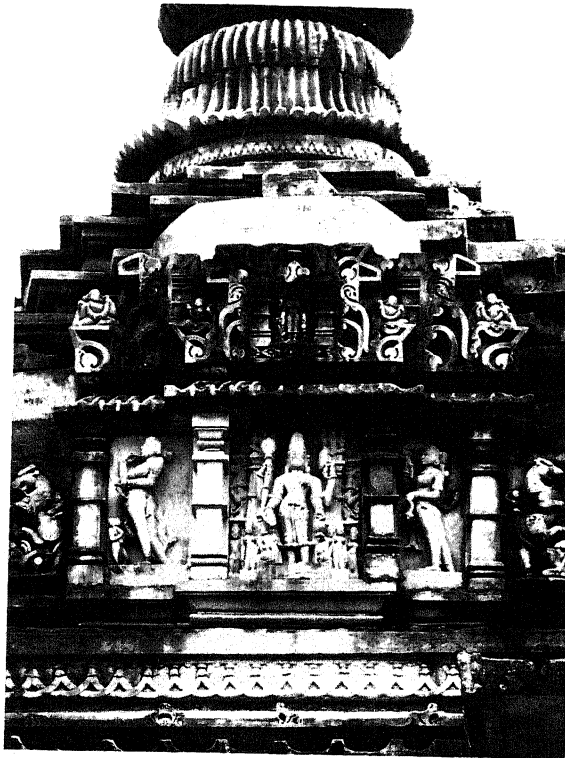
43. अर्द्धनारीश्वर

46. अर्द्धनारीश्वर

47. अर्द्धनारीश्वर

48. अर्द्धनारीश्वर

49. अर्द्धनारीश्वर

50. अर्द्धनारीश्वर
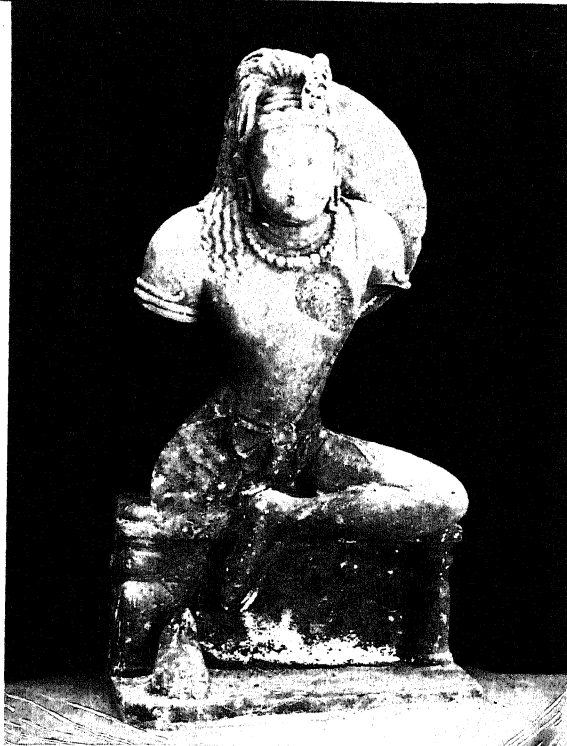
51. अर्द्धनारीश्वर

52. अर्द्धनारीश्वर

53. अर्द्धनारीश्वर

54. अर्द्धनारीश्वर

55. अर्द्धनारीश्वर

56. वासुदेव-कमलजा

57. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ
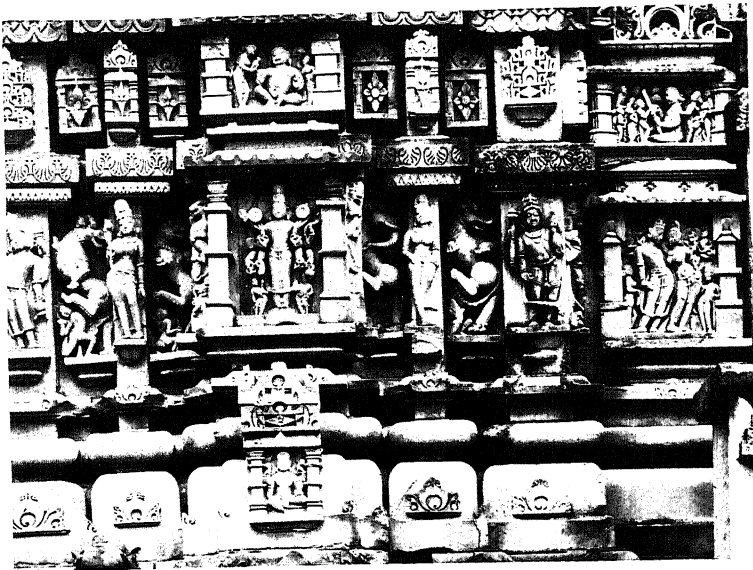
58. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ

59. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ
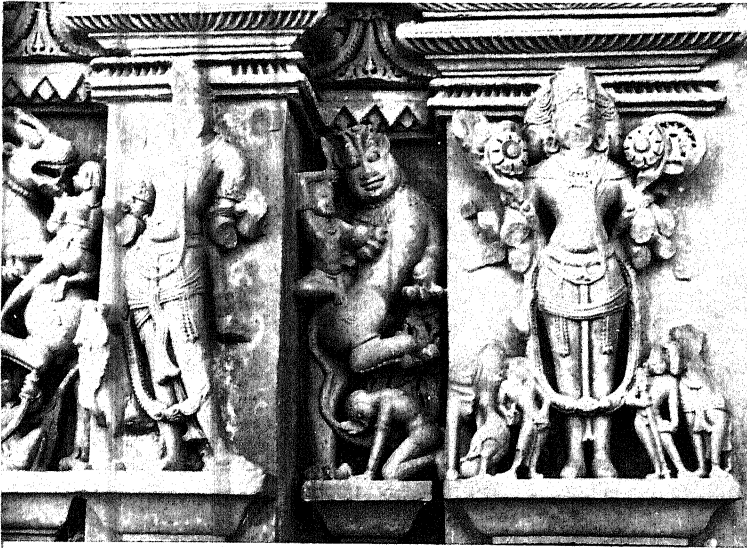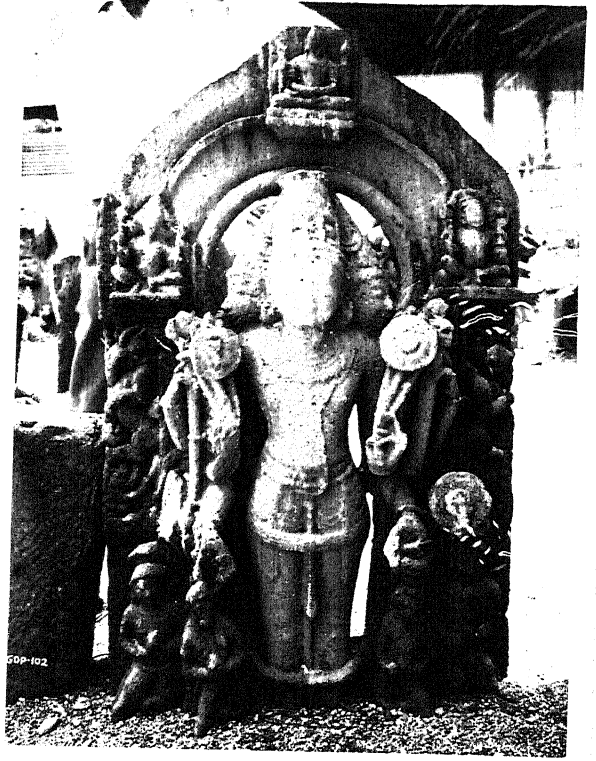
60. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ

61. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ
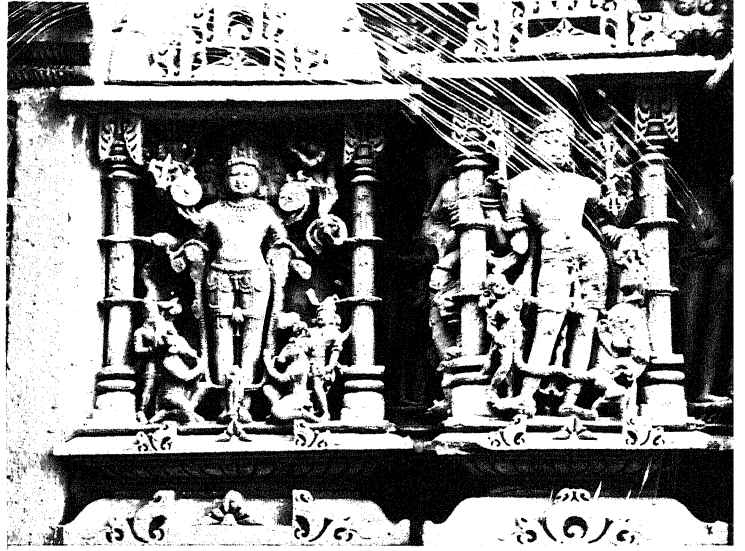
62. हरिहर-पितामह-हिरण्यगर्भ

63. त्रिमूर्ति
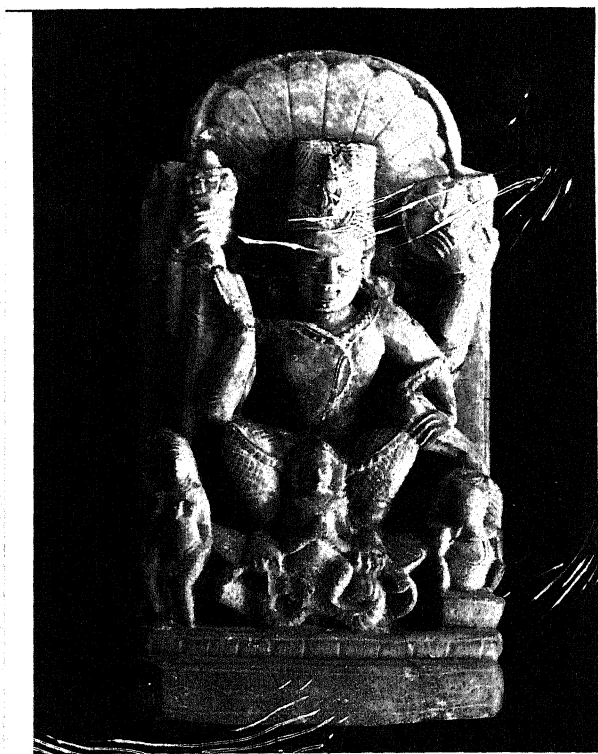
64. त्रिमूर्ति

65. त्रिमूर्ति
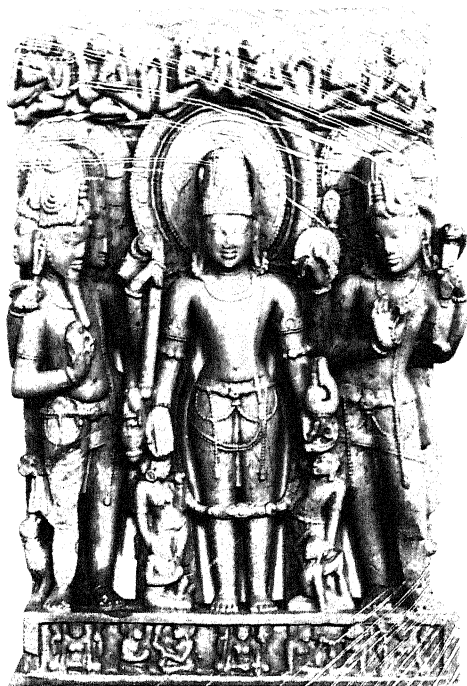
66. त्रिमूर्ति

67. त्रिमूर्ति
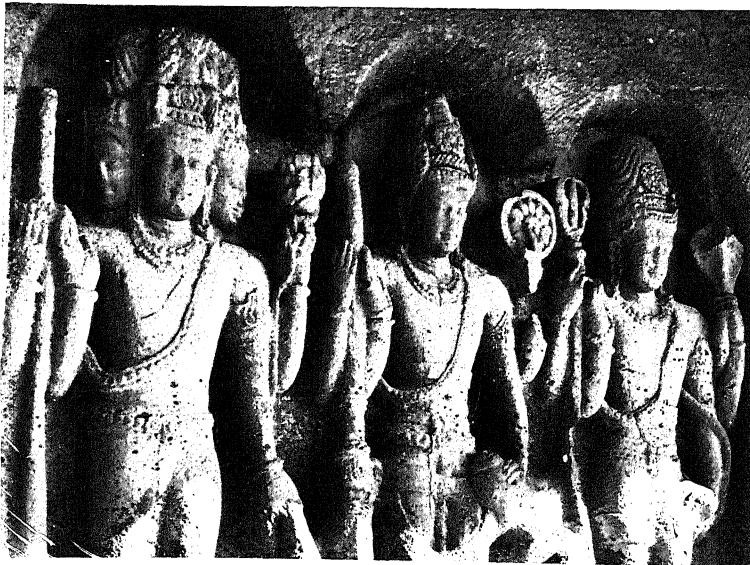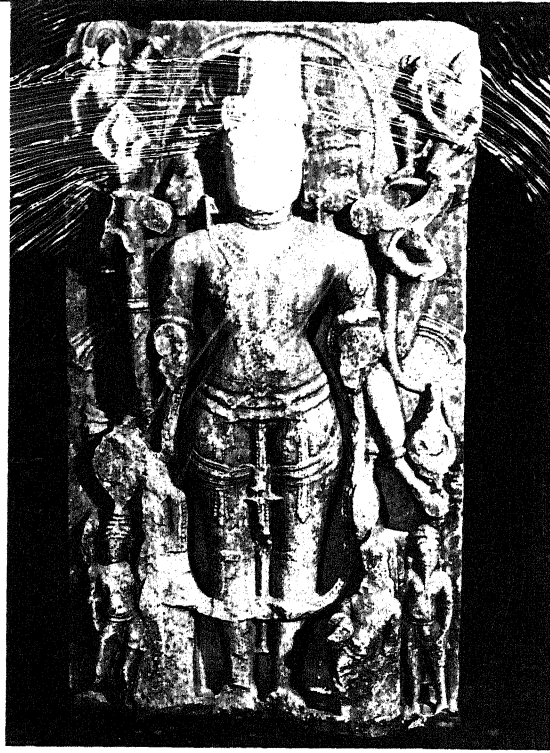
68. त्रिमूर्ति

69. विश्वरूप विष्णु
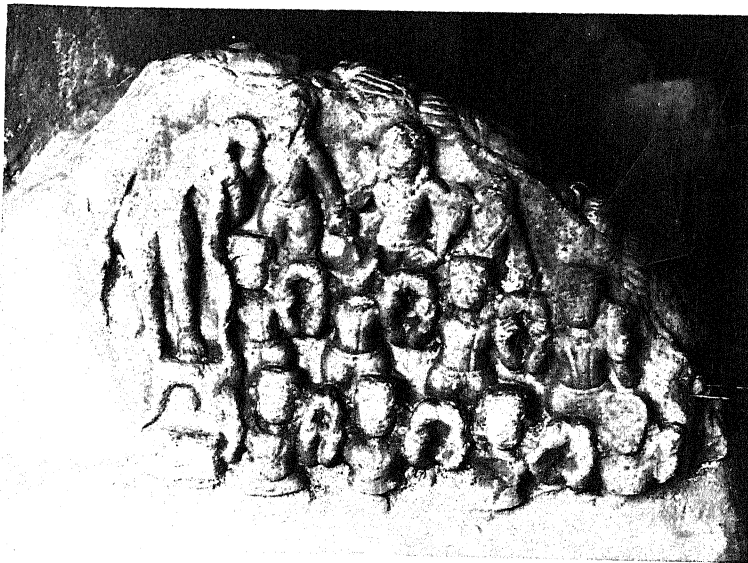
70. विश्वरूप विष्णु

71. विश्वरूप विष्णु

72. विश्वरूप शिव

73. एकस्थ देवमूर्तन

74. एकस्थ देवमूर्तन

75. एकस्थ देवमूर्तन

76. पंचोपासना-विधि